सामाजिक अध्ययन शिक्षण

Teaching of Social Studies

Paper-5&6

बी. एड.
B. Ed.

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक- 124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

इकाई–I: प्रत्यय, उद्देश्य तथा मूल्य

विद्यालयों में सामाजिक अध्ययन का अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व 5
आधुनिक भारतीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य 16
ब्लूम के उद्देश्यों का वर्गीकरण 28
सामाजिक अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखना 34
सामाजिक अध्ययन शिक्षण के मूल्य 42

इकाई–II: विषय वस्तु तथा उनका शैक्षणिक विश्लेषण

भारतीय सभ्यता का विकास, स्वर्णकाल 46
मुगल साम्राज्य तथा उसका भारतीय संस्कति पर प्रभाव 52
स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास 56
लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता तथा समाजवाद की धारणा 60
भारतीय संविधान–प्रस्तावना, मुख्य विशेषताएं व मौलिक कर्त्तव्य 65
भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले कारक 72
ग्लोब : ग्लोब के बारे में सामान्य जानकारी, अंक्षाश तथा देशान्तर रेखाएँ 76
भारतीय अर्थव्यवस्था का ढांचा 81
भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्मुख प्रमुख विचारणीय विषय 87
राष्ट्रीय प्रतीक 90
चालू पंचवर्षीय योजना 94
शैक्षणिक विश्लेषण 97

इकाई–III: अनुदेशनात्मक सामग्री का विकास/उपयोगिता

पाठ योजना का विकास 103
सामाजिक अध्ययन में पाठ्यक्रम का विकास एवं मूल्यांकन तथा पाठ्य पुस्तकें 121
स्व अनुदेशन नमूनों का विकास 139
स्व अनुदेशन सामग्री का विकास 152

इकाई–IV: शिक्षण विधियां तथा शिक्षण कौशल

भाग- 1: शिक्षण विधियाँ

कथात्मक विधि 180
प्रोजेक्ट विधि 185
समस्या विधि 192
आगमन तथा निगमन विधि 199

भाग-2: शिक्षण कौशल

प्रश्न कौशल 205
व्याख्या कौशल 210
दष्टांत कौशल 215
उद्दीपन परिवर्तन कौशल 219
मानचित्र अध्ययन कौशल 224

इकाई-V: मूल्यांकन

मूल्याकंन का अर्थ, आवश्यकता एवं उद्देश्य 228
मूल्याकंन के उपकरण 235

TEACHING OF SOCIAL STUDIES
PAPER–5&6
Group-D (Option-III)

Objectives

The students will be able to

1. Acquire knowledge of present Indian Civilization and economic conditions of India.
2. Understand the important concepts used in discipline.
3. Develop and critically evaluate existing school curriculum and text books.
4. Develop desirable social and economic attitude.
5. Become effective citizen and good consumer.
6. Prepare diagnostic tests and achievement tests, administer them. Analyses the result and provide remedial measures or guidance.
7. Prepare suitable teaching aids and use them effectively in the classroom.
8. Prepare unit plan and lesson plan for different classes.

THEORY

M.Marks : 100
Time : 3 Hrs.

Note: The examiner is requested to set 10 questions taking two questions from each unit. The candidate will be required to attempt five questions selecting at least one from each unit.

I. Concept, Objectives and Values

1. Meaning, scope and importance of social studies in schools.
2. Aims and objectives of teaching social studies with special reference to present Indian Condition.
3. Bloom's taxonomy of objectives.
4. Formulating specific objectives of social studies in behavioral terms.
5. Values of teaching social studies.

II. Content and their pedological analysis (upto Secondary level)

1. Evolution of Indian Civilization, golden period
2. Mugal dynasty and impact on Indian Culture
3. History of freedom movement
4. Concept of democracy, secularism and socialism
5. Constitution, Preamble, salient feature of Indian constitution, fundamental duties
6. Factors affecting Indian society
7. Globe: general information about globe, longitude and latitude
8. Structure of Indian economy
9. Major issues facing Indian economy today
10. National presumes
11. Current five year plan

Teacher will demonstrate pedagogical analysis of any one of the above topics. The students are expected to do pedagogical analysis of all the above topics. The examiner therefore can ask for pedagogical analysis of any one of the given topics.

Following points should be followed for pedagogical analysis:

1. Identification of concepts.
2. Listing behavioral outcomes
3. Listing activities and experiments
4. Listing evaluation techniques

III. Development/utilization of Instructional material

1. Development of Lesson Plan
2. Development and evaluation of curriculum and textbooks in social studies
3. Development of self-instructional modules
4. Development of self-instructional material
   - (a) Preparation of slides & transparencies
   - (b) Bulletin board (c) Maps (d) Charts
   - (e) Graphs (f) Models (g) Scrap books
   - (h) Application of Radio, Video, Computer & O.H.P. (i) Dramatization
   - (j) Use of Community resources (k) Designing of social studies lab

IV. 1. Methods of Teaching and Skills involved in teaching

- (a) Story telling Method (b) Project method
- (c) Problem method (d) Inductive and deductive method

2. Skill of Planning

- (a) Skill of questioning (b) Skill of Explaining (c) Skill of illustration with examples
- (d) Skill of stimulus variation (e) Skill of map reading

V. Evaluation

1. Meaning, need and objectives of evaluation
2. Evaluation devices:
   - (a) Oral test (b) Essay Type (c) Objective Type
   - (d) Diagnostic testing and remedial measures, observation (e) Interest inventory
   - (f) Rating scale

इकाई-I

विद्यालयों में सामाजिक अध्ययन का अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व

(Meaning, Scope and Importance of Social Studies in Schools)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि

- सामाजिक अध्ययन का अर्थ बता सके।
- सामाजिक अध्ययन की प्रकति का वर्णन कर सकें।
- सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र की व्याख्या कर सकें।
- सामाजिक अध्ययन के महत्व का वर्णन कर सकें।

संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 सामाजिक अध्ययन का अर्थ
1.3 सामाजिक अध्ययन तथा सामाजिक विज्ञान में अंतर
1.4 सामाजिक अध्ययन की प्रकति
1.5 सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र
1.6 विद्यालयों में सामाजिक अध्ययन का महत्व
1.7 सारांश
1.8 आदर्श उत्तर
1.9 मुख्य शब्द
1.10 सन्दर्भ पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानवीय इतिहास मानव जीवन के हजारों वर्षो की कहानी है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के बिना जिन्दा नहीं रह सकता। उसे समाज में रहकर जीवन यापन करना पड़ता है। वह सदैव समाज पर आश्रित रहता है। मानवीय समाज में समय के साथ परिवर्तन आया। मानव ने सामाजिक जीवन में प्रगति की। वह गुफाओं और कन्दराओं से निकल कर गाँव में रहने लगा, उसने जंगली जानवरों को मार कर खाना छोड़ दिया तथा उसने कन्द–मूल, फल पर भी निर्वाह करना छोड़

दिया। अब वह ईंट पत्थर के मकान बना कर रहने लगा। उसे कषि की जानकारी प्राप्त हुई। वह भूमि पर खेती करने लगा। इस प्रकार मनुष्य अनाज उत्पादक बन गया। शरीर को ढकने के लिये उसने कपड़े बनाने आरम्भ कर दिये। अब तक मनुष्य ने बहुत कुछ खोज लिया था। अपनी इस खोज को उसने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का प्रयास किया जिससे भाषा का अविष्कार हुआ। धीरे धीरे संस्कति का निर्माण हुआ। आज मानव जिस उन्नति तक पहुँचा है वह उसके पूर्वजों के कठिन एवं कठोर परिश्रम तथा लगन का परिणाम है। मानव एवं समाज दोनों एक दूसरे पर निर्भर करते है तथा एक दूसरे के पूरक हैं। सामाजिक अध्ययन से अभिप्रायः ऐसे विषय से है जो मानवीय सम्बन्धों की जानकारी प्रदान करता है। सामाजिक अध्ययन का जन्म अमेरिका में हुआ जिसमें भूगोल, इतिहास, राजनीति शास्त्र तथा अर्थशास्त्र का समावेश था। 1911 में कमेटी ऑफ टेन ने इसे समाज शास्त्र से जोड़कर सामाजिक अध्ययन बना दिया। धीरे धीरे यह विषय इंगलैंड तथा यूरोप के अन्य देशों में भी पूर्ण रूप से विकसित हो गया।

1.2 सामाजिक अध्ययन का अर्थ (Meaning of Social Studies)

सामाजिक अध्ययन का शाब्दिक अर्थ हैं – "मानवीय परिप्रेक्ष्य में समाज का अध्ययन।" यह एक ऐसा विषय है जिसमें मानवीय सम्बन्धों तथा समाज के विभिन्न दष्टिकोणों की जानकारी प्राप्त होती है। समाज में अनेक प्रकार के लोग रहते हैं जो अनेक क्रियाएं करते हैं। वह व्यवहार में भी भिन्न–भिन्न होते हैं। सामाजिक अध्ययन में हम ऐसे मनुष्यों की अनेक क्रियाओं का अध्ययन करते है। मनुष्य अपने आसपास के वातावरण के साथ सामजंस्य स्थापित करता है इसलिये मनुष्य तथा उसके वातावरण या पर्यावरण के सम्बन्धों का भी अध्ययन इसमें किया जाता हैं। सामाजिक अध्ययन में उन सभी विषयों का समावेश हैं जो मानव की सामाजिक कुशलता को विकसित करने में मदद करते हैं इसमें इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र और समाज शास्त्र की विषय वस्तु है। मानव समाज ने आवश्यकतानुसार विज्ञान तथा तकनीकी की सहायता से समाज को सुख–सुविधाओं से परिपूर्ण किया। मानव जीवन के विकास पथ की कहानी या वह सामग्री जो बच्चो ंकी सहायता के विकास पथ की कहानी या वह सामग्री जो बच्चो ंके सामाजिक विकास के लिये उपयोगी व आवश्यक हैं सामाजिक अध्ययन की विषय वस्तु हैं। समय के साथ–साथ विज्ञान तकनीकी के विकास से जहाँ मानव ने ऐश आराम की वस्तुऐं प्राप्त की वही उसे कई समस्याओं का भी सामना करना पड़ा। इन समस्याओं को विभिन्न दष्टिकोणों से समझने और इनके उचित समाधान के लिये सहयोग देने का प्रशिक्षण व्यक्ति को बचपन से ही प्राप्त होना चाहिए तभी वह समाज का उपयोगी सदस्य, सिद्ध हो सकता है। यही कारण हैं कि स्कूल विषयों में सामाजिक अध्ययन को सम्मिलित किया गया है। सामाजिक अध्ययन की धारणा को स्पष्ट करने के लिये कई विद्वानों ने इसकी परिभाषा देने का प्रयास किया हैं।

जे०एफ० फोरेस्टर के अनुसार, "सामाजिक अध्ययन, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट हैं, समाज का अध्ययन है और इसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को उस संसार को समझने में सहायता प्रदान करना है जिसमें उन्हें रहना हैं ताकि वे उसके उत्तरदायी सदस्य बन सकें। इसका ध्येय विवेचनात्मक चिन्तन तथा सामाजिक परिवर्तन की तत्परता को प्रोत्साहित करना, सामान्य कल्याण के लिये कार्य करने की आदत को विकसित करना, दूसरी संस्कतियों के प्रति प्रशंसात्मक दष्टिकोण रखना तथा यह अनुभव करना है कि सभी मानव तथा राष्ट्र एक दूसरे पर आश्रित है।"

वेस्ले के अनुसार, "सामाजिक अध्ययन उस विषय सामग्री की तरफ संकेत करता है जिसके तथ्य तथा उद्देश्य प्रमुख रूप से सामाजिक होते हैं।"

माइकेलिस के अनुसार, "सामाजिक अध्ययन, सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन है।"

एम०पी० मफात के अनुसार, "जीने की कला बड़ी सुन्दर कला है, सामाजिक अध्ययन द्वारा ही यह ज्ञान प्राप्त होता हैं।"

इस प्रकार हम कह सकते है कि सामाजिक अध्ययन भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक सम्बन्धों तथा अर्न्त सम्बन्धों का अध्ययन है। यह एक विशिष्ट विषय है जिसका आधार व्यापक और विस्तत हैं जिसमें निम्नलिखित तत्त्व हैंः–

(1) यह यथार्थ पर आधारित विषय हैं जो जीवन की वास्तविक स्थितियों में मानवीय अन्तक्रियाओं, सहयोग, सम्बन्धों, समस्याओं तथा कार्य–प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता हैं।

(2) सामाजिक अध्ययन मानव में विभिन्न सामाजिक तथ्यों के प्रति चेतना उत्पन्न करता है और चुनौतियों का सामना करने के लिए विवेकशील विश्लेषण करने की योग्यता प्रदान करता हैं।

(3) सामाजिक अध्ययन सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक उपयोगिताओं को सामने रखते हुए व्यक्ति को सम्पूर्ण एवं स्वस्थ सामाजिक जीवनयापन के लिये तैयार करता हैं।

(4) सामाजिक अध्ययन मानव का मानव के साथ पारस्परिक अर्न्तसम्बन्धों तथा वातावरण से सांमजस्य का अध्ययन हैं।

(5) यह विभिन्न सामाजिक विज्ञानों की सामग्री को एकत्रित करके सम्पूर्ण इकाई के रूप में विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करता हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक अध्ययन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैंः–

(1) मनुष्य का भौतिक एवं सामाजिक वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करता हैं।

(2) यह मानव विकास तथा संगठन से सम्बन्धित है।

(3) यह मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन हैं।

(4) यह सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन हैं।

(5) यह सामाजिक विज्ञानों के आधारभूत तत्वों का अध्ययन हैं।

(6) यह व्यक्तियों का सामाजीकरण करता हैं।

1.3 सामाजिक अध्ययन तथा सामाजिक विज्ञान में अंतर (Difference between Social Studies and Social Sciences)

प्रायः सामाजिक विज्ञान तथा सामाजिक अध्ययन का एक ही अर्थ समझ लिया जाता है परन्तु वास्तव में इन दोनों में अन्तर है। सामाजिक विज्ञान एवं सामाजिक अध्ययन दोनों ही मानव सम्बन्धों की चर्चा करते हैं किन्तु सामाजिक विज्ञान का सम्बन्ध अनुसंधान, खोज तथा नए प्रयोगों तक सीमित होता है, इसलिए कुछ विशिष्ट व्यक्ति ही इन्हें समझ सकते हैं। सामाजिक विज्ञान में मानव सम्बन्धों की विस्तत, क्रमबद्ध तथा तर्कसंगत चर्चा होती है। इनमें एक विशेष स्तर की विद्वता भी रहती है और इसलिए स्कूल के विद्यार्थी इन्हें आसानी से नहीं समझ सकते। इसके अतिरिक्त सामाजिक विज्ञान जहाँ ज्ञान के भण्डार होते हैं वहां समाजिक अनुसंधान के वैज्ञानिक साधन भी। एक समाज वैज्ञानिक सदा ही अपनी खोजों से मनुष्य के ज्ञान में वद्धि करना चाहता है।

सामाजिक विज्ञान के विपरीत सामाजिक अध्ययन की सामग्री का चयन प्रमुख रुप से स्कूलों में पढ़ाने के लिए किया जाता है। अतः इसमें सामाजिक विज्ञान के केवल वे ही भाग सम्मिलित होते हैं जो स्कूल के बालकों के लिए उपयोगी हों। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक अध्ययन सामाजिक विज्ञान का ही सरल एवं पुनर्गठित रूप है। यह मानव संबंधों का विवेचन प्रौढ़ स्तर की अपेक्षा बाल स्तर पर करता है इस प्रकार दोनों में स्तर की भिन्नता है। यह भी आवश्यक है कि सामाजिक विज्ञान की अपेक्षा सामाजिक अध्ययन सरल, रोचक, प्रभावपूर्ण एवं उपयोगी हो। सामाजिक विज्ञान में मानव सम्बन्धों को क्रियात्मक रूप दिया जाता है। उदाहरण के लिए – राजनीति विज्ञान (Pol. Sc.) एक उच्चकोटि का विद्वतापूर्ण विषय है जिसे स्नातक स्तर पर महाविद्यालयों में पढ़ाया जाता है और नागरिक शास्त्र (Civics) इसी का सरल रुप है जिसे स्कूलों में दसवीं कथा तक पढ़ाया जाता है।

दूसरे शब्दों में, सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत वे विषय आते हैं जो मानव–समाज के प्रारम्भ, संगठन तथा विकास से सम्बन्धित होते हैं और जिनमें मानव का दूसरे मानवों से सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है जबकि सामाजिक अध्ययन में ऐसे अनुभव आते हैं जिन्हें सामाजिक विज्ञान से ही स्कूल के बालकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निकाला जाता है। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन और सामाजिक विज्ञान में विषय सामग्री के कारण अधिक भिन्नता नहीं हैं अपितु इनके उद्देश्यों, सामग्री, संगठन और शिक्षण विधियों में भिन्नता है।

सामाजिक अध्ययन (Social Studies)	सामाजिक विज्ञान (Social Sciences)
1. सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य व्यक्तियों का अच्छे नागरिक के रूप में विकास करना है।	1. इसका उद्देश्य ज्ञान प्रदान करना है
2. इसका अध्ययन प्रत्येक के लिए आवश्यक है।	2. इसका अध्ययन केवल वे करते हैं जो विश्वविद्यालय स्तर पर इसका चयन करते हैं।
3. इसका क्षेत्र विस्तत है। यह मानव जीवन के सभी पक्षों को छूता है।	3. इसका क्षेत्र सीमित है क्योंकि यह केवल अपने ही क्षेत्र का अध्ययन करता है।
4. यह मानव जीवन के प्रायोगिक भाग से सम्बन्धित है।	4. यह मानव जीवन के सैद्धान्तिक भाग से सम्बन्धित है।
5. यह एक एकीकृत विषय है।	5. यह विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न ज्ञान प्रदान करता है।

1.4 सामाजिक अध्ययन की प्रकति (Nature of Social Studies)

सामाजिक अध्ययन दो शब्दों के मेल सामाजिक+अध्ययन से बना हैं। इसमें सभी सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इससे तात्पर्य हैं समाज का, समाज के लिये, समाज द्वारा अध्ययन। अध्ययन शब्द से तात्पर्य हैं प्राप्त ज्ञान को व्यावहारिक रूप से जीवन में प्रयुक्त करना। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक अध्ययन मानव के सभी दष्टिकोणों का सम्पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करता हैं जो मानव सभ्यता के विकास की श्रंखला समझा जाता हैं। इसका स्वरूप जटिल, विशाल तथा व्यापक हैं। इसमें सभी सामाजिक संस्थाओं व संगठनों के विकास का अध्ययन किया जाता है। इसमें मानव जीवन के भूत, वर्तमान तथा भविष्य का अध्ययन किया जाता हैं। इसमें सभी विषय राजनीति–शास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र इतिहास, भूगोल के आधारभूत सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है।

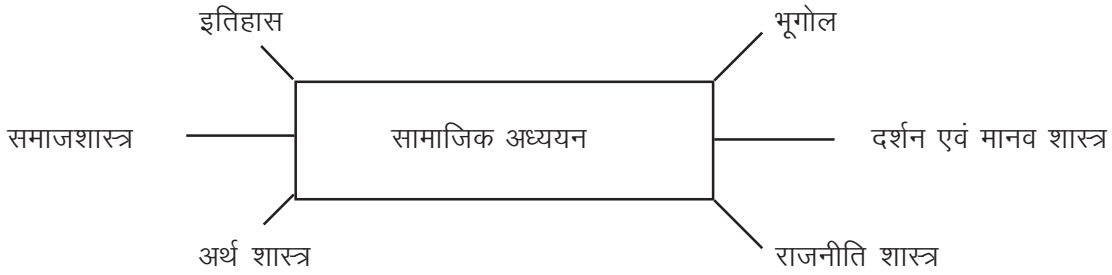

सामाजिक अध्ययन विभिन्न विषयों का मिश्रण नहीं बल्कि एक अलग विषय है जो मानवीय सम्बन्धों तथा वातावरण के सांमजस्य की जानकारी देता है। यह लोकतान्त्रिक नागरिकों का निर्माण करता है, देश प्रेम की भावना को विकसित करता है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास करता है। यह एक स्वतन्त्र विषय है। इस प्रकार यह एक अनुशासित विषय है जिसकी सामग्री मानव ज्ञान व अनुभवों पर आधारित है।

अपनी प्रगति जांचिए -1

(i) सामाजिक अध्ययन का क्या अर्थ है?

(ii) सामाजिक अध्ययन की प्रकति के बारे में बताईये?

1.5 सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र (Scope of Social Studies)

सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र भी विस्तत तथा व्यापक है। इसकी विषय वस्तु का निर्माण विभिन्न सामाजिक विज्ञान करते हैं जिसमें भूगोल, इतिहास, नागरिक शास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, दर्शन शास्त्र, नीति शास्त्र आदि हैं। इन सभी

विषयों के आधारभूत तत्व मिलकर सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम निर्धारित करते हैं। यह मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक को स्पर्श करता है। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र विशाल तथा व्यापक है। इसमें विविधता है जो मानव को अनुभव ग्रहण करने में मदद करता है। माइकल्स के शब्दों में, ''सामाजिक अध्ययन का कार्यक्रम इतना विशाल होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के अनुभव मिल सके व उनका ज्ञान विस्तत हो सके।" सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र सम्पूर्ण मानव जीवन के भौतिक एवं सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित है, इसीलिये यह विस्तत हैं। इसे दो प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है।

(1)

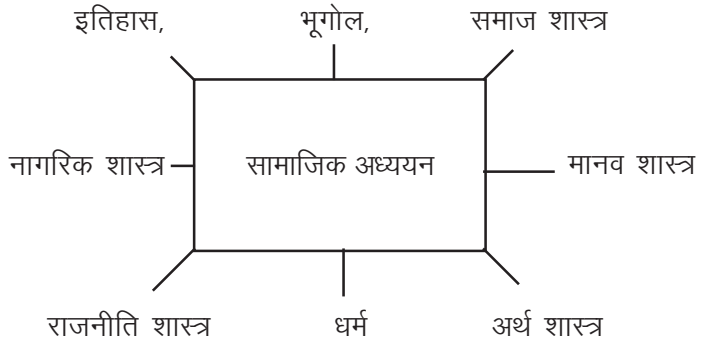

(2)

'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त के अनुसार मानव परिवार से विश्व परिवार का सदस्य है, इसीलिए मनुष्य का मनुष्य के साथ गहरा सम्बन्ध है। मानवीय जीवन के वह सभी पहलू या पक्ष जो मानव के विकास के लिए आवश्यक है सामाजिक अध्ययन की विषयवस्तु के अन्तर्गत आते हैं। इन पहलूओं से सम्बन्धित विषयों की जानकारी हम सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत करते हैं। इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि सभी विषय इसके क्षेत्र की सीमा में आते हैं क्योकि यह सभी विषय भूत, वर्तमान तथा भविष्य के मध्य सम्बन्ध स्थापित करते हैं:–

1. समाज का अध्ययन (Study of society)

सामाजिक अध्ययन समाज से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन हैं, इसमें सम्पूर्ण समाज का अध्ययन किया जाता है। मानव का समाज में रहकर योगदान, समाज का निर्माण, मानव के लिये समाज की उपयोगिता आदि सभी पहलुओं को आरम्भ से लेकर वर्तमान तक स्पर्श किया जाता हैं। इसके अन्तर्गत प्रारम्भिक मनुष्यों के रीति रिवाजों से लेकर वर्तमान समय तक के सामाजिक रीति–रिवाजों तथा सभ्यता को सम्मिलित किया जाता हैं।

2. सामयिक घटनाओं का अध्ययन (Study of contemporary events)

सामाजिक अध्ययन से देश विदेश में होने वाली तत्कालीन घटनाओं का अध्ययन किया जता है। आज की इस भाग दौड़ भरी जिन्दगी मे ये घटनाएँ वर्तमान तथा भूतकाल को समझने में सहायता करती है। हर नई घटना का आधार भूतकाल होता है। इन घटनाओं का पूर्ण अध्ययन सामाजिक अध्ययन में किया जाता हैं। आज के नागरिक के लिये दैनिक घटनाओं से परिचित होना आवश्यक हैं वह चाहे देश की हो या विदेश की।

3. मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन (Study of human relations)

मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन सामाजिक अध्ययन का केन्द्र बिन्दु माना जाता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है वह समाज के बिना जिन्दा नहीं रह सकता। उसका सम्पर्क स्थानीय समुदाय से आगे राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गया है। आज मानव आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक रूप से आत्म निर्भर होकर भी दूसरों पर निर्भर करता हैं। अकेले जीवनयापन करना मानव के लिये असम्भव है। अतः मानवीय सम्बन्धों को बनाये रखने के लिए सामाजिक अध्ययन को पढ़ना–पढ़ाना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हो गया हैं।

4. कला तथा प्राकतिक विज्ञान का अध्ययन (Study of Arts and Natural Sciences)

यद्यपि सामाजिक विज्ञान तथा प्राकतिक विज्ञान दोनों अलग–अलग विषय हैं लेकिन यह आपस में सम्बन्धित है। विज्ञान तथा तकनीकी की उन्नति ने मानव जीवन को प्रभावित किया है। आज संसार संचार के नवीन

साधनों से बहुत निकट आ गया है। इसलिये देश विदेश की सभ्यता तथा संस्कति का अध्ययन करना जरूरी हैं। ड्राईंग, नत्य, रेखाचित्र, नाट्यकला आदि ऐसी ललित कलाएँ हैं जो उसके भावी जीवन में काम आती हैं। सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान, तथा भौतिक विज्ञान, का व्यवहारिक अध्ययन किया जाता हैं। सामाजिक अध्ययन तथा प्राकतिक विज्ञान में गहरा सम्बन्ध हैं। विज्ञान तथा तकनीकी ने दुनिया के रंग–रूप को ही बदल दिया हैं। औषधि विज्ञान, वास्तुकला, गणित तथा नक्षत्रों व ग्रहों के क्षेत्र में हुए आविष्कारों का सामाजिक अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान हैं।

5. सामाजिक वातावरण का अध्ययन (Study of Social Environment)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके लिए सामाजिक वातावरण का ज्ञान आवश्यक है, अतः सामाजिक अध्ययन में वे सभी विषय आते हैं जिनसे सामाजिक वातावरण को समझने में सहायता मिलती हैं तथा विद्यार्थी कें सामाजिक चरित्र का विकास होता हैं। सामूहिक जीवनयापन की उसे जानकारी प्राप्त होती हैं सामूहिक आदर्शो को वह समझ सकता है। इस प्रकार वह एक अच्छा नागरिक बन सकता हैं।

6. भौतिक वातावरण का अध्ययन (Study of Physical Environment)

मानव के लिये समाज में रहकर अपने आस पास के परिवेश की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हैं, क्योंकि भौतिक परिवेश सामाजिक परिवेश का निर्माण करता हैं और अपने दैनिक जीवन से बालक जो अनुभव प्राप्त करता है उससे वह शीघ्र सीख जाता है। यह ज्ञान स्थाई तथा प्रभावशाली समझा जाता हैं। भौतिक वातावरण देश की भूमि, जलवायु, मिट्टी, वर्षा तथा फसल आदि से सम्बन्धित होता हैं यह सभी सामाजिक अध्ययन की विषय वस्तु हैं।

7. अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास (Development of International understanding)

सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र विशाल हैं इसमें न केवल मनुष्य तथा समाज का अध्ययन किया जाता हैं अपितु सम्पूर्ण विश्व की जानकारी प्रदान की जाती है। वैज्ञानिक उन्नति ने समय व स्थान की दूरी को समाप्त कर दिया है। एक देश की समस्या दूसरे देश के हितों को प्रभावित करती है, इसलिये आज का मानव अपने या अपने से सम्बन्धित राष्ट्रहित को नहीं देखता, अपितु वह पूरे विश्व के हितों को ध्यान में रखता है। इसके अध्ययन से विश्वबंधुता के भावों को प्रोत्साहित किया जाता है तथा राष्ट्रों के स्वरूप, संस्कति, दर्शन, रीतिरिवाज के बारे में जानकारी देकर अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को बढ़ाया जाता है।

8. उचित दष्टिकोण का विकास (Development of proper attitude)

सामाजिक अध्ययन सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए छात्रों को सामाजिक अनुभव देता है, इन्हीं अनुभवों के आधार पर विद्यार्थी सामाजिक कौशलता प्राप्त करके सामाजिक ज्ञान की वद्धि करते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर बच्चों में उचित अभिवतियों का विकास किया जाता है। ये अभिवतियाँ बौद्धिक व भावात्मक दोनों प्रकार की हो सकती हैं जैसे प्रेम, भाईचारा, सहयोग, सहनशीलता, सत्य, दूसरों का आदर करना आदि। इससे सफल प्रजातांत्रिक नागरिकों का निर्माण किया जाता है।

9. व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना (Imparting practical knowledge)

सामाजिक अध्ययन में अन्य साधनों जैसे चरित्र–निर्माण, राजनैतिक अधिकार, सामाजिक व्यवहार, सांस्कतिक कार्यक्रम, सामुदायिक साधनों का प्रयोग, समाज सेवा कार्य आदि की भी शिक्षा दी जाती है। समय–समय पर बच्चों को ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कतिक तथा शैक्षिक स्थानों पर ले जाकर भी उन्हें व्यावहारिक एवं वास्तविक ज्ञान प्रदान करवाया जा सकता है।

10. स्रोतों की व्यावहारिक जानकारी (Practical knowledge of Sources)

सामाजिक अध्ययन पढ़ाने के लिए अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों को सांस्कतिक, आर्थिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, महत्त्व के स्थानों पर भ्रमण करवाये जाते हैं। यहां विद्यार्थी कलात्मक वस्तुओं, मुद्राओं, भवनों, सामाजिक संस्थानों, पुस्तकालयों, रेलवे स्टेशनों, बस स्टैंड आदि विभिन्न सूत्रों को देखकर नवीन अनुभव प्राप्त करता है। कभी–कभी यह जानकारी विद्यार्थी अभिनय तथा वाद–विवाद के माध्यम से भी प्राप्त करता है।

सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र असीम तथा व्यापक है। सामाजिक अध्ययन का विषय सामाजिक विज्ञानों तक ही सीमित नहीं है, अपितु इसमें साहित्य, भौतिक विज्ञान, धर्म, कला, मनोवैज्ञानिक तथा दर्शनशास्त्र सभी से व्यावहारिक ज्ञान लिया गया है। सामाजिक अध्ययन का शिक्षण इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र आदि अलग–अलग विषयों के शिक्षा की अपेक्षा अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। प्रो० वी०आर० तनेजा ने ठीक कहा है कि वे लोग गलती पर हैं जो इतिहास के किसी टुकड़े, भूगोल के किसी हिस्से, नागरिक शास्त्र की कुछ बातें तथा अर्थशास्त्र से सम्बन्धित कुछ सामाजिक सन्दर्भों को केवल एकत्रित कर देने को सामाजिक अध्ययन मानते हैं, परन्तु वास्तव में इन विषयों का शिक्षण अलग–अलग करते हैं।''

सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र व्यापक और विशाल है लेकिन यह सीमाओं से बंधा हुआ है। इसमें सम्पूर्ण मानव जाति के वर्तमान सामाजिक जीवन का अध्ययन किया जाता है जो सभी विषयों की व्यावहारिक तथा आवश्यक ज्ञान की सीमाओं से बंधा हुआ है। सभी विषयों से उतनी ही विषय–वस्तु ली जाती है जिनका बच्चों के दैनिक जीवन में व्यावहारिक महत्त्व है।

1.6 विद्यालयों में सामाजिक अध्ययन का महत्व (Importance of Social Studies in Schools)

समाज तथा व्यक्ति का चोली दामन का साथ है। प्राचीन काल में बच्चों को घर–परिवार में विभिन्न क्रियाओं द्वारा मानव तथा मानव के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त हो जाता था जिससे उन्हें समाज तथा समुदाय की भी जानकारी प्राप्त हो जाती थी। वह अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करता था और समाज की आवश्यक जानकारी उसे अपने आस पास प्राप्त हो जाती थी। समाज में परिवर्तन आया, विज्ञान तथा तकनीकी ने उन्नति की, मानव सभ्यता का विकास हुआ, समाज में जटिलताओं का बोलबाला होने लगा। विभिन्न सम्बन्धों की जानकारी जो बालक को घर परिवार या दैनिक क्रिया कलापों से संयुक्त परिवार में प्राप्त होती थी, का आभाव हो गया। यह सारा ज्ञान आज स्कूल को देना पड़ता है। ऐसा करने के लिये स्कूल को ऐसी सामग्री का चयन करना पड़ेगा जो ऐसे कार्यक्रम का निमार्ण करे जिससे बच्चा अतीत की परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त कर ले, वर्तमान काल में उस ज्ञान का उपयोग कर सके तथा अपनी दैनिक जीवन की समस्याओं को निपटाने के योग्य बन सके। यही कारण है कि आज (3R) तीन आर की शिक्षा की अपेक्षा (4H) चार ऐच की शिक्षा को महत्त्व दिया जाता हैं जो समाज की जटिलता और व्यक्ति के सम्बन्धों के स्पष्टीकरण के लिये आवश्यक हैं। यही कारण है कि शिक्षा शास्त्रियों ने सामाजिक अध्ययन की शिक्षा को आवश्यक ही नही अनिवार्य भी माना है।

सामाजिक अध्ययन का जन्म एक स्वतन्त्र – क्षेत्र के रूप हुआ क्योंकि आज के बालक को भूतकाल की अपेक्षा अपने सामाजिक वातावरण तथा सम्बन्धों की अधिक जानकारी की आवश्यकता है। यह जानकारी उन्हें इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, व समाज शास्त्र आदि भिन्न–भिन्न विषयों द्वारा नही जा सकती। इतना ही नही विज्ञान एवं तकनीकी के विकास ने भी मानव समाज में महान् परिवर्तन ला दिये है इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मानवीय समाज तथा मानवीय सम्बन्धों में भी जटिलता आ गई है जिसे जानना व समझना आवश्यक है। आज संसार सिमट कर छोटा हो गया हैं, विश्व शान्ति आवश्यक हैं। ऐसे समय में सामाजिक अध्ययन एक अनिवार्य विषय के रूप में शिक्षा का अभिन्न अंग बन गया हैं। डा० राधाकष्णन् ने कहा हैं कि हम भूतकाल को याद रखें, वर्तमान के प्रति सजग रहें तथा ह्रदय में साहस तथा आत्मविश्वास के साथ भविष्य का निर्माण करे।" सामाजिक अध्ययन की आवश्यकता मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा शैक्षिक दष्टिकोण से भी हैं। इसके लिये हम निम्नलिखित अनेक तर्क दे सकते हैं।

मुख्यतया सामाजिक अध्ययन के महत्व को हम दो भागों में विभक्त करते हैं:–

1. व्यक्तिगत महत्व के कारण
2. सामुदायिक महत्व के कारण

1. व्यक्तिगत महत्व के कारण (Reasons for Individual Importance)

व्यक्तिगत कारणों में सामाजिक अध्ययन से हमारा तात्पर्य उन कारणों से हैं जिसमें मानव अपना चरित्र निर्माण करता हैं जो कि समाज के प्रति सहयोग, सहभागिता, व सामाजिक न्याय के प्रति वफादार होता हैं। मानव अपनी आदतों व कुशलताओं का निर्माण करता हैं। अपनी मानसिक शक्तियों का निर्माण करता हैं। मनुष्य समाज मे

समस्याओं का सामाजिक तरीके से समाधान ढूंढता हैं। इन सब कारणों की वजह से सामाजिक अध्ययन का बड़ा महत्व हैं।

व्यक्तिगत महत्व के कारणों को निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं।

(क) मनोवैज्ञानिक कारण

(ख) शैक्षिक कारण

(क) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Reasons)

मनोवैज्ञानिक कारणों से हमारा तात्पर्य उन महत्वों से है जो मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करने में सर्वाधिक सहायक होते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व मनुष्य का सब कुछ निर्धारित करता हैं। उसका सामाजिक वातावरण उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता हैं। मानव अपने आसपास के वातावरण को समझकर उसके अनुरूप कार्य करने की कौशिश ही नहीं करता बल्कि उसे जानकर उसकी व्याख्या भी करना चाहता हैं। भूतकाल में मनुष्यों का व्यक्तित्व का विकास हु–ब–हु अपनी पहली पीढ़ी का प्रतिरूप होता था परन्तु आजकल मनुष्य के व्यक्तित्व को बाह्य तत्व भी प्रभावित करते हैं। अब जबकि हमारे घरेलू व सामाजिक प्रभाव बच्चों को उतना प्रभावित नही करते हैं और न ही हमारे पास ऐसी कोई व्यवस्था हैं कि बालकों का व्यक्तित्व निर्माण अपने आप हो, तो यह भार भी अब स्कूलों पर आ गया हैं कि वह मनुष्य के व्यक्तित्व विकास में अपना सहयोग दे। स्कूल के बाकि सभी विषयों में सामाजिक अध्ययन ही एक ऐसा विषय हैं जो कि मानव व उसके वातावरण का पूर्ण रूप से अध्ययन करता हैं।

हम सभी जानते हैं कि आज का युग एक मनोवैज्ञानिक युग हैं। आज एक व्यक्ति का व्यवहार दूसरे के व्यवहार को प्रभावित करता है। हम सब जानते हैं कि हम अपनी सभी समस्याओं का समाधान मनोवैज्ञानिक तरीके से कर सकते हैं तथा हमें यह विश्वास हैं कि हमें सबके लिए एक विशेष प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता होती हैं। सामाजिक अध्ययन हमें वह सब सिखाता हैं जिससे हमारा मनोवैज्ञानिक आधार बनता हैं।

(ख) शैक्षिक कारण (Educational Reasons)

शैक्षिक कारणों में हम अपने उन उद्देश्यों को लेते हैं जिसके लिए हम शिक्षा ग्रहण करते हैं! वैसे तो समाज की अलग–अलग विचारधाराओं के अलग–अलग विचार हैं। माता–पिता का दष्टिकोण यह है कि बच्चों की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो उसके जीवन निर्वाह में सहायक हो! उनके दष्टिकोण से शिक्षा का व्यावसायिक महत्व ज्यादा हैं। कुछ अन्य शिक्षा के सांस्कतिक महत्व पर ज्यादा बल देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा द्वारा मनुष्य की सभी शक्तियों का पूर्ण विकास होना चाहिये। परन्तु इससे मनुष्य का पूर्ण सामाजिक विकास नहीं हो पाता।

आज का वातावरण ऐसा भी नहीं है कि युवक–युवतियों को उनके माता–पिता व समाज पर ही छोड़ दिया जाए तो उन्हें अपनी व समाज की सभी समस्याओं की आवश्यक जानकारी भी हो जाए और यह मुमकिन नही कि समाज की अवहेलना करके हम अपने राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। हमारा प्रजातांत्रिक ढांचा कुछ ऐसा हैं कि राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक समस्याएं इतनी जटिल हैं जिनके बारे में हमारी जानकारी अतिआवश्यक हैं। यह हमारी सामाजिक शिक्षा के लिए अति आवश्यक हो जाता हैं कि बालक अपनी भौतिक व सामाजिक वातावरण को जाने व उसमें अपना समावेश कर सकें। सामाजिक जीवन व अच्छी नागरिकता के लिए यह आवश्यक हैं कि शिक्षा उनमें सत्य, ईमानदारी, सहनशीलता, व सहयोग के गुणों का विकास करें। नई–नई आवश्यकताओं के मध्य नजर पाठन सामग्री व पाठन विधियों में परिवर्तन किया जाना चाहिये। आधुनिक पाठन विधियों में, तारंबेतार, दब्य–श्रव्य साधन, चलचित्र, योजना विधि व क्रियाविधि का उपयोग उल्लेखनीय है। इन सभी आधुनिक विधियों के लिए एक सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का होना अति आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन आज के विकासशील विश्व के साथ विकासशील बच्चों के सम्बन्धों के समन्वय का आधार है। इसलिए सामाजिक अध्ययन मनुष्य की शिक्षा का मुख्य आधार हैं।

2. सामुदायिक महत्व के कारण (Reasons for Community Importance)

(क) सामाजिक कारण (Social Reasons)

सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य बच्चों के सामुहिक जीवन के बारे में जानकारी देना हैं तथा बच्चों को इस

लायक बनाना है कि वे समाज में हो रहे व्यवहार में रुचि ले ताकि उनके सामाजिक चरित्र का विकास हो। बच्चों में सकारात्मक व्यवहार उत्पन्न करने में सामाजिक रुचि का होना अति आवश्यक हैं इससे उनमें यह भावना जागत होती हैं कि समाज की भलाई में ही उनकी अपनी भलाई हैं।

सामाजिक अध्ययन में हम समाज के ढांचे व उसके स्वरुप का अध्ययन करते हैं और यह जानने की कोशिश करते है कि यह स्वरुप उसे कैसे प्राप्त हुआ हैं। सामाजिक अध्ययन में यह भी देखा जाता हैं कि किस प्रकार मनुष्य अपने आप को उस भौतिक वातावरण में ढालता है जिसमें उसे अपना जीवन व्यतीत करना हैं या वह उस वातावरण को बदलने का प्रयास करता हैं और एक नई दिशा को जन्म देता हैं। अतः सामाजिक अध्ययन ऐसे नागरिक के निर्माण में सहायक है जो समाज को इस योग्य बनाता हैं कि वो अपनी समस्याओं का निदान करें या समस्या हल करने को हमेशा तत्पर रहें।

(ख) व्यावहारिक कारण (Behavioural Reasons)

सामाजिक अध्ययन के व्यावहारिक महत्व के कारण से हमारा उन तत्वों से है जिसमें समाजिक अध्ययन से मानव में गुण तथा आदर्शो का विकास होता हैं और मनुष्य समाज के प्रति व्यवहार कुशल होता हैं। वही व्यक्ति जीवन में अधिक सफलता प्राप्त करता हैं जो अति व्यवहार कुशल होता है। आधुनिक काल में सामाजिक व्यवहार व चेतना का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया हैं। व्यवहारिक कारणों में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैंः–

(i) अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना

(ii) यातायात तथा संचार व्यवस्था में प्रगति

(iii) पारिवारिक जीवन में बदलाव

(iv) नागरिक उत्तरदायित्व

(v) प्रजातांत्रिक उत्तरदायित्व

(vi) औद्योगिक प्रगति

(vii) विज्ञान तथा तकनीकी विकास

(i) अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना (International Understanding)

गांधी जी के अनुसार, "यदि सत्य, प्रेम और अहिंसा की शिक्षा घर तथा स्कूल से होती हुई संसार के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक संगठनों तक नहीं पहुंचती तो हिंसा और घणा से भरा संसार कभी का नष्ट हो गया होता। यदि हम संसार को बदलना चाहते हैं तो बाहरी संसार के साथ–साथ मानव मन तथा भावनाओं के आंतरिक संसार को भी बदलना होगा।"

आज मनुष्य चारों तरफ के वातावरण के कारण अपने आपको सुरक्षित देखता हैं। वर्तमान समय में शिक्षा के लिए यह अहम चुनौती हैं कि किस प्रकार यह आपस में सहयोग, राष्ट्रो में सद्भावना, विभिन्न समूहों में उदारता तथा भौतिक व सांस्कतिक मेल–मिलाप को बनाए रखनें में अपना सहयोग दें।

आज परिस्थितियां इतनी जटिल हैं कि मनुष्य अपने उन आदर्शो को खो रहा है जो कि उसे विरासत में उन महान आत्माओं से मिले थे जिन्होंने एक आदर्श जीवन के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। सामाजिक अध्ययन उन सभी आदर्शो को जिन्दा रखने की कौशिश करता हैं तथा इन आदर्शो को एक आम आदमी तक पहुँचाने में अपना अहम रोल अदा करता हैं।

(ii) यातायात व संचार व्यवस्था में प्रगति (Progress in Transport and Communication)

आज का युग संचार का युग हैं। आज दूरियां सिमट रही है। मनुष्य के जीवन में संचार तथा यातायात के साधनों ने एक तूफान ला दिया है। सभी प्रकार की प्राकतिक बाधाओं पर मनुष्य ने विजय पा ली हैं। बढ़ते यातायात के सरल साधन व संचार के माध्यम से एक दूसरे की सांस्कतिक भेद, साम्राज्यवादी व व्यापारिक होड़ को पीछे छोड़ा जा रहा हैं। इसलिए सामाजिक अध्ययन का महत्व और भी बढ़ जाता हैं जिससे

कि हम दूसरों के सामाजिक जीवन का अध्ययन करके अपना तथा अपने समाज का नव निर्माण कर सकते हैं तथा विभिन्न समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं।

(iii) पारिवारिक जीवन में बदलाव (Change in Family Life)

आज के आधुनिक समय में परिवारों के परिदश्य बदल गए हैं। पहले संयुक्त परिवार प्रणाली हुआ करती थी जो आज काफी पीछे छूट गई हैं। संयुक्त परिवार प्रथा में मनुष्य का जीवन स्थायी व सुरक्षित रहता था। सभी सदस्य मिलजुल कर रहते तथा खेलते, कार्य करते और अपनी रुचि के अनुसार कार्य अपनाकर परिवार का भला करते थे। परन्तु आज की परिस्थितियां भिन्न होने के कारण बहुत सी नई सामाजिक समस्याओं का जन्म हुआ है। तेजी से शहरीकरण हो रहा हैं। लोग एकल परिवार को अधिक बढ़ावा दे रहे हैं जिसमें बच्चे का सामाजिक व सांस्कतिक विकास संभव नहीं हो पाता है। सामाजिक अध्ययन में इन सब समस्याओं का अध्ययन किया जाता हैं तथा इनका उपचार ढूंढने का प्रयास किया जाता है।

(iv) नागरिक उत्तरदायित्व (Responsibilities of Citizens)

समाज में रहने के लिए समाज के कुछ उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना अति महत्वपूर्ण होता है। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद तथा प्रजातन्त्र को बनाए रखने के लिए इनका उद्देश्य आजकल स्कूलों पर आ गया हैं और स्कूलों में खासकर यह सामाजिक अध्ययन पर निर्भर करता हैं। अतः नागरिक उत्तरदायित्वों के पालन करनें के लिए बच्चों को उसी के अनुरूप तैयार करने में सामाजिक अध्ययन का बड़ा महत्व हैं।

(v) प्रजातान्त्रिक उत्तरदायित्व (Democratic Responsibilities)

आज का युग प्रजातंत्र का युग है। साम्राज्यवाद का अब बोलबाला नहीं रहा हैं। आज अधिकतर राष्ट्र प्रजातंत्र का पालन कर रहें हैं। इस कारण आम आदमी के अपने उत्तरदायित्वों में और वद्धि हुई हैं। प्रजातंत्र के कारण यह जानना हमारा दायित्व बनता हैं कि हमारा समाज के प्रति कैसा उत्तरदायित्व हैं और उनके साथ हमारा कैसा संबंध है। दूसरे समाज को भी व्यक्ति के प्रति अपने उत्तदायित्वों का पालन करना चाहिये।

आज विद्यालयों का यह कर्त्तव्य बनता हैं कि बच्चों को उनके प्रजातांत्रिक उत्तरदायित्वों के बारे में खुलकर अनुभव प्रदान करें ताकि वे अपनी जीवन पद्धति को उसी अनुसार ढाल सकें और यह कार्य सामाजिक अध्ययन के इलावा कोई भी विषय इतने प्रभावशाली ढंग से नही कर सकता। इसलिए इस विषय के अध्ययन की आवश्यकता और भी बढ़ जाती हैं।

(vi) औद्योगिक प्रगति (Industrial Progress)

औधोगिक क्रांति के कारण आज जीवन में अनेक तरह की जटिलताएं घर कर गई हैं। विज्ञान ने सामाजिक जीवन में परिवर्तन किया हैं जिससे हमारे सरल समाज में कुछ जटिलताएं आ गई हैं। विज्ञान के असर से ग्रामीण परिवेश भी अछूता नहीं रह गया हैं और इसने हमारे ग्रामीणों को भी अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क में ला दिया हैं।

गाँवों में आज बिजली, ट्यूबवैल, नई खादें, व नई प्रणाली का प्रयोग होने लगा है। आज का ग्रामीण सिर्फ अपने गाँव तक ही सीमित नहीं रहना चाहता वह अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का ज्ञानी भी होना चाहता है। वैज्ञानिक युग ने मनुष्य को ध्वंस की और धकेल दिया है और इसका उदाहरण दो विश्वयुद्ध आपके सामने हैं। विश्व को ध्वंस से बचाने के लिए सामाजिक शिक्षा का होना बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि सामाजिक अध्ययन ही आपसी संबंध व लगावों का ज्ञान देता हैं।

(vii) विज्ञान तथा तकनीकी विकास (Development of Science and Technology)

आज विज्ञान व तकनीकी का एक नया रूप उभरकर सामने आया हैं। पहले कषि विकास, फिर औधोगिक विकास उसके बाद वाणिज्य विकास हुआ। पर आज का समय 'हाइटैक जमाना' बन गया हैं जिसमें हमारें सामाजिक मूल्यों का बड़ी तेजी से ह्रास हुआ हैं। उन्हीं सामाजिक मूल्यों को बचाने के लिए सामाजिक

अध्ययन का बड़ा महत्व हैं क्योंकि एक अच्छी सामाजिक शिक्षा ही देश के नैतिक मूल्यों के पतन को रोककर एक सुसांस्कतिक, व्यवहार कुशल व सद्भावना युक्त समाज का निर्माण करती हैं।

इस तरह हम कह सकते हैं कि हमारे समाज में जागति हालांकि कई तत्व लेकर आई हैं। इसमें विज्ञान, उद्योग, यातायात, संचार इत्यादि तत्त्व मुख्य हैं परन्तु इनसे जो सामाजिक सद्भावना का जो ह्रास हुआ हैं उसे बचाने के लिए सामाजिक अध्ययन की शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण हैं।

अपनी प्रगति जांचिए - 2

(i) सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र बताईये।

(ii) सामाजिक अध्ययन के महत्त्व के कितने भाग है?

1.7 सारांश (Summary)

मानव एक सामाजिक प्राणी है तथा उसे समाज में रहकर जीवन यापन करना पड़ता है। आज मानव जिस शिखर पर पहुंचा है, यह उसके पूर्वजों के कठिन एवं कठोर परिश्रम तथा लगन का परिणाम है। मानव तथा समाज एक दूसरे के पूरक है। सामाजिक अध्ययन के द्वारा हम मनुष्यों की अनेक क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने के लिये अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि उसे स्कूल में सामाजिक अध्ययन का अध्ययन करवाया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वह समाज का उपयोगी नागरिक बन सके। सामाजिक अध्ययन विषय में राजनीति शास्त्र, अर्थ शास्त्र, इतिहास व भूगोल के आधारभूत सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है।

1.8 आदर्श उत्तर

1. (i) छात्र इस प्रश्न के उत्तर के लिये इसी अध्याय के भाग 1.2 को देखें।

   (ii) इस प्रश्न के उत्तर के लिए इसी अध्याय के भाग 1.4 को देखें।

2. (i) छात्र इस प्रश्न के उत्तर के लिये इसी अध्याय के भाग 1.5 को देखें।

   (i) व्यक्तिगत महत्व के कारण

   (ii) सामुदायिक महत्व के कारण

1.9 मुख्य शब्द

सामाजिक अध्ययनः समाज का, समाज के लिए तथा समाज के द्वारा अध्ययन है। यह मनुष्य तथा उसकी सामाजिक, भौतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनैतिक वातावरण से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन है।

1.10 सन्दर्भ पुस्तकें

Bining, A.C. and Bining, D.H. - "Teaching the Social Studies in Secondary Schools", Mc Graw Hill Book Company, New York, 1952

Kochar, S.K. - "The Teaching of Social Studies", University Publishers, Delhi

Gupta Rainu - "Teaching of Social Studies", Jagdmba Publishers Delhi.

इकाई–I

आधुनिक भारतीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य

(Aims and Objectives of Teaching Social Studies with Special Reference to Present Indian Conditions)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

– लक्ष्यों एवं उद्देश्यो में अंतर कर सकें।

– उद्देश्यों के महत्त्व का वर्णन कर सकें।

– आधुनिक शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्यों की व्याख्या कर सकें।

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 लक्ष्य एवं उद्देश्यों में अन्तर

2.3 लक्ष्यों तथा उद्देश्यों का महत्व

2.4 विभिन्न शिक्षा स्तरों पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्य

2.5 सारांश

2.6 आदर्श उत्तर

2.7 मुख्य शब्द

2.8 सन्दर्भ पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी कार्य को सुचारू रुप से करने के लिये आवश्यक है कि उसके उद्देश्य व लक्ष्य निर्धारित किए जाए। उद्देश्य क्रिया को निश्चित दिशा प्रदान करते हैं। शिक्षण विधियां और पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों पर निर्भर करते हैं। उद्देश्य निश्चित करके कार्य को आरम्भ किया जाता है। संसार मे जितनी भी क्रियाएं होती है वे किसी लक्ष्य की और उन्मुख होती हैं। जब कोई भी व्यक्ति किसी कार्य को करता है तो वह सोचकर करता हैं कि इसका अन्त भी है। इसलिये कोई भी क्रिया लक्ष्यविहीन नही की जा सकती। वैज्ले ने ठीक ही कहा हैं, "उद्देश्यों के ज्ञान के बिना अध्यापक उस नाविक के समान है जिसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं है तथा छात्र उस पतवार विहीन नौका के समान है जो समुद्र की लहरों में थपेडे खाती तट की ओर बह रही है।" क्या पढ़ाएं पाठ्यक्रम में आता हैं, कैसे पढ़ाएं शिक्षण विधियों की जानकारी से सम्बन्धित है तथा क्यों पढ़ाए शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करते हैं। इस अध्याय में आप आधुनिक भारतीय परिस्थितियों में सामाजिक अध्ययन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का अध्ययन करेंगें।

2.2 लक्ष्य तथा उद्देश्यों में अंतर (Difference between Aims and objectives)

उद्देश्य इच्छित लक्ष्य होते हैं, जबकि निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार शिक्षा देने के कारण प्राप्त होने वाले परिणाम हैं। उद्देश्य आदर्शवादी हैं, जबकि लक्ष्य व्यावहारिक है। लक्ष्य का अर्थ स्पष्ट करने के लिये कार्टर, वी० गुड ने लिखा हैं, "लक्ष्य पूर्व निर्धारित साक्ष्य होता हैं जो किसी कार्य या क्रिया का मागदर्शन करता है।" उद्देश्य में दूरदर्शिता होती है, साथ ही इसमें आदर्शवादिता होती है।

जब हम किसी उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं तो उसके लिए हमें जिन छोटी–छोटी बातों को ध्यान में रखना पड़ता हैं उन्हें उस उद्देश्य के प्राप्य उद्देश्य कहते है। प्राप्य उद्देश्य वह मानदण्ड या लक्ष्य हैं जिसको छात्र द्वारा विद्यालय क्रिया को पूर्ण करके प्राप्त किया जाता हैं। इसके अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हुए गुड ने आगे लिखा है, "प्राप्य उद्देश्यछात्र के व्यवहार में वह इच्छित परिवर्तन है जो विद्यालय द्वारा पथप्रदर्शित अनुभव का परिणाम होता है। इस प्रकार प्राप्य उद्देश्य में व्यावहारिकता अधिक होती है।

लक्ष्य तथा उद्देश्य में निम्न अन्तर हैं

	लक्ष्य		उद्देश्य
1.	लक्ष्य का क्षेत्र व्यापक होता है।	1.	उद्देश्य का क्षेत्र सीमित होता है।
2.	लक्ष्य एक सामान्य कथन है।	2.	उद्देश्य एक निश्चित कथन है।
3.	लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण विद्यालय–कार्यक्रम, समाज तथा राष्ट्र उत्तरदायी होता है।	3.	उद्देश्य लक्ष्य या उद्देश्य की छोटी–छोटी शाखाएँ होती है। अतः इनकी प्राप्ति का दायित्व शिक्षक तथा पाठ विशेष की विषयवस्तु पर होता है।
4.	लक्ष्य में आदर्शवादिता होती है। अतः इसे पूर्ण रुप में प्राप्त करना संभव नहीं हैं। इसकी प्राप्ति हो भी सकती हैं।	4.	उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव हैं क्योंकि इसमें व्यवहारिकता होती है। दूसरे शब्दों में प्राप्य उद्देश्य प्राप्यनीय हैं।
5.	लक्ष्य की प्राप्ति में अधिक समय लगता है।	5.	उद्देश्य की प्राप्ति में अधिक समय नहीं लगता हैं।
6.	ये अविविष्ट होता हैं	6.	ये विशिष्ट होते हैं।
7.	यह कक्षा–कक्ष की शिक्षण रणनीति को निर्धारित करने में सहायक नहीं हैं।	7.	ये कक्षा–कक्ष की शिक्षण रणनीति को निर्णित करने में सहायता प्रदान करते हैं।
8.	यह सीखने वालों को स्पष्ट शिक्षा–निर्देश प्रदान नहीं करते हैं।	8.	ये सीखने वालों या छात्रों को निश्चित एवं स्पष्ट निर्देश प्रदान करते हैं।

2.3 लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का महत्व (Importance of Aims and Objectives)

लक्ष्य व उद्देश्य शिक्षा के कुशल प्रशासन तथा प्रबन्धन मे मदद करते हैं अध्यापक का मार्गदर्शन करते है तथा विद्यार्थी को पढ़ने के लिये प्ररेणा प्रदान करते हैं। मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष तथा दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया की सफलता

के लिये उद्देश्यों का होना नितान्त आवश्यक हैं जिसके निम्न कारण हैं:–

1. उद्देश्य मार्गदर्शक हैं, यह अध्यापक को रास्ते से भटकनें नहीं देते।
2. यह पाठ्यक्रम के आधार पर शिक्षण विधियों के चयन में सहायक होते हैं।
3. शिक्षण में प्रयुक्त सहायक सामग्री एवं साधनों के चयन में सहायक है।
4. यह विद्यार्थी को कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं और मन से उसे दढ़ निश्चयी बनाते हैं।
5. यह शिक्षा के मूल्यांकन में भी सहायक सिद्ध होते हैं।

सामाजिक अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :–

1. व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास (Alround Development of Personality)

सामाजिक अध्ययन विषय का उद्देश्य बच्चों का सर्वागीण विकास करना है। मानव ने इस सष्टि पर जीवन कैसे आरम्भ किया, उसका भौतिक, सांस्कतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक वातावरण क्या था। इसका ज्ञान बालकों को देना आवश्यक है, क्योंकि तभी उन्हें अपने अस्तित्व की जानकारी प्राप्त होगी। बच्चों को यह जानकारी देनी आवश्यक है कि भिन्न–भिन्न प्रकार की संस्थाओं का जन्म कैसे हुआ।

2. वांछित अभिवतियों का विकास (Development of Desired Attitudes)

ज्ञान के साथ–साथ उचित अभिवतियों का विकास भी आवश्यक हैं। उचित अभिवतियाँ अच्छे व्यवहार का आधार है। यह अभिवतियाँ बौद्धिक तथा भावनात्मक दोनों प्रकार की होती है। बालक का व्यवहार इन्हीं अभिवतियों पर निर्भर करता है। भावनात्मक अभिवतियाँ पूर्वाग्रह, ईर्ष्या तथा आलस्य के आधार पर निर्मित होती हैं जबकि बौद्धिक अभिवतियाँ तथ्यों को अधिक महत्व देती हैं। सामाजिक अध्ययन के अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह बालकों में बौद्धिक अभिवतियाँ का विकास करे। उनके अन्दर कुछ सामाजिक गुण जैसे आत्मसंयम, धैर्य, सहानुभूति तथा आत्म सम्मान को विकसित करें।

3. ज्ञान प्रदान करना (Providing Knowledge)

स्कूल बालकों को अच्छा नागरिक बनाना चाहता हैं तो उन्हें ज्ञान प्रदान करना आवश्यक है। ज्ञान स्पष्ट चिन्तन व उचित निर्णय के लिए बहुत आवश्यक है। छात्रों को समाज के अनेक रीति रिवाजों, रहन–सहन, संस्कति, सभ्यता तथा नियम आदि से परिचित कराना बहुत आवश्यक हैं। इस प्रकार के ज्ञान से छात्र अपने भविष्य के जीवन को सफल बना सकता हैं।

4. अच्छी नागरिकता का विकास (Development of Good Citizenship)

प्रजातन्त्र की सफलता के लिये नागरिकों में नागरिकता के गुणों का विकसित करना आवश्यक हैं। औद्योगिक क्रान्ति के कारण सामाजिक संगठन पर भी प्रभाव पड़ा हैं। इसने परिवार, धर्म, समुदाय को छिन्न–भिन्न करके रख दिया है। नगरों मे अनेक व्यवसाय पनपने लगे हैं, गाँव में सीमित भूमि होने के कारण और जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण लोगों ने घरों को छोड़कर नगरों में रहना आरम्भ कर दिया हैं। जिससे नगरों में भी आवास की समस्या हो गई हैं। तनाव बढ़ रहे है। इसलिये सामाजिक अध्ययन में अच्छी नागरिकता की शिक्षा देने का महत्त्व बढ़ गया हैं।

5. मानव समाज की व्याख्या करना (Explaination of Human Society)

मानव समाज जटिलताओं से भरा हुआ हैं। इसमें पूर्वाग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, अपनत्व की भावना के कारण पारस्परिक संघर्ष सष्टि के प्रारम्भ से चले आ रहे हैं इसलिए बच्चों को यह जानकारी प्रदान करनी आवश्यक हैं कि जिस वातावरण में वह रहते हैं वह अस्तित्व में कैसे आया। व्यक्ति एवं समाज एक दूसरे को किस सीमा तक प्रभावित करते हैं। संसार की विभिन्न संस्थाओं का विकास कैसे हुआ। समय के साथ बदलती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामाजिक संस्थाएँ कैसे विकसित हुई तथा उनमें परिवर्तन कैसे आया।

6. मानवीय जीवन का विकास (Development of Human Life)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण का विशिष्ट उद्देश्य मानवीय समाज की व्याख्या करना हैं मानव ने इस सष्टि पर जीवन कैसे आरम्भ किया, आदि मानव से आज के मानव मे जो परिवर्तन आयें, उनका रहन सहन, खान पान, भाषा, व्यवहार, सभ्यता एवं सस्कति में आये बदलाव की कहानी कितनी पुरानी हैं। मानवीय व्यवहार से मानवीय प्रवतियों में सांमजस्य की स्थापना की आवश्यकता ने कैसे अविष्कारों को जन्म दिया। मानव को इस आधुनिक रुप की जानकारी होना आवश्यक हैं क्योंकि यही जानकारी उन्हें 'वसुधैवकुटुम्बकम' के सिद्धान्त को मानने के लिये तैयार करेगी जिससे मानव को युद्ध के विनाश से बचाया जा सकेगा।

7. विद्यार्थियों का सामाजीकरण (Socialization of Students)

सामाजिक अध्ययन बच्चो में सामाजिक आदतों का विकास करता हैं। उनमें सहयोग, सहकारिता, सहनशीलता, सहानुभूति, सहिष्णुता जैसे गुणों को विकसित किया जाता हैं। उनमें विश्लेषण एवं निष्कर्ष, निरूपण जैसे गुणों को विकसित किया जाता हैं। विद्यार्थी तथ्य संग्रह करना सीखते हैं। सार्थक रूप से लिखना, पढ़ना सीखते हैं। समूह तथा समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व निभाना सीखते हैं। इस प्रकार अनेक सामाजिक गुण सामाजिक अध्ययन द्वारा ही सीखे जाते हैं जिससे उनका सामाजिक जीवन सुखी बन सकता हैं।

8. परस्पर निर्भरता की भावना का विकास (Development of feeling of Interdependence)

स्वस्थ एवं सन्तुलित सामाजिक जीवन के लिए मनुष्य को मानवीय प्रकति तथा भौतिक वातावरण को समझना पड़ता हैं। यन्त्रीकरण, श्रम के विभाजन और बड़े पैमाने पर उद्योगों के कारण आज की सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गई है। आज हर मानव एक दूसरे पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर है। व्यक्ति ही नहीं, विश्व के सभी राष्ट्र एक दूसरे पर निर्भर हैं। यह निर्भरता, आर्थिक, सामाजिक, एवं राजनैतिक सभी क्षेत्रों में है। इसलिये सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य छात्रों में परस्पर निर्भरता की भावना का विकास करना भी हैं।

9. तर्क तथा चिन्तन शक्ति को विकसित करना (Development of logical thinking)

सामाजिक अध्ययन छात्रों के सामने अनेक ठोस तथ्यों को प्रस्तुत करता हैं। इन तथ्यों से प्रेरित होकर छात्र उन तथ्यों के सम्बन्ध में चिन्तन तथा मनन करते हैं जिससे उनकी चिन्तन शक्ति बढ़ती हैं जो कि उनके भावी जीवन में भी काम आती हैं। आगे चलकर ये जीवन से सम्बन्धित हर समस्या पर सोच–विचार एवं चिन्तन करके उसका समाधान करने की कोशिश करते हैं।

10. अन्तर्राष्ट्रीय विवेक का विकास (Development of International Understanding)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के कारण आधुनिक युग एक कुटुम्ब के रूप में विकसित हो रहा हैं। आज कोई भी देश दूसरे देशों से अलग नहीं रह सकता है। सभी देश किसी न किसी रूप में एक दूसरे पर निर्भर हैं। इसके साथ–साथ सभी देशों पर तीसरे विश्वयुद्ध की तलवार भी लटक रही हैं। सभी दार्शनिक विचारक तथा वैज्ञानिक बार–बार इस बात पर बल दे रहें हैं कि विश्वयुद्ध से बचने के लिए विद्यार्थियों में अन्तर्राष्ट्रीय विवेक जागत करना अत्यन्त आवश्यक हैं। सामाजिक अध्ययन इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करता हैं।

11. सामाजिक एव भौतिक वातावरण का अध्ययन (Study of Social and Physical Environment)

सामाजिक एवं भौतिक वातावरण का ज्ञान भी सामाजिक अध्ययन द्वारा मिलता हैं। व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए वातावरण का ज्ञान आवश्यक हैं। उसके चारों तरफ का वातावरण कैसा हैं, उसमें और सुधार करें जिससे वह अधिक उत्तम बन सके। वातावरण का उचित ज्ञान होने पर ही विधार्थी अपने आपकों बदलते हुए समाज के अनुकूल समायोजित करके उपयोगी नागरिक बन सकता हैं।

12. अच्छी आदतों तथा कौशलों का विकास (Development of good habits and skills)

सामाजिक अध्ययन में आदतों तथा कौशलों का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं। आदत किसी कार्य को करने की

सामान्य प्रवति हैं। कौशल साधारण आदतों की उच्च अवस्था का नाम हैं। सामाजिक अध्ययन में हमारा उद्देश्य विद्यार्थियों में अध्ययन सम्बन्धी उचित आदतों का निर्माण, भावनाओं पर नियंत्रण, परिश्रम करने की आदतों का निर्माण करना हैं। इसी प्रकार सामाजिक अध्ययन विद्यार्थियों को कुछ उपयुक्त कौशलों का प्रशिक्षण भी दे सकते हैं जैसे रूप रेखाएँ, चार्ट, ग्राफ तथा मॉडल आदि का निर्माण।

13. प्रजातान्त्रिक गुणों को विकसित करना (Development of Democratic attributes)

आज हम लोकतन्त्र में सांस ले रहे हैं। लोकतन्त्र द्वारा प्रदत्त चिन्तन एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को कोई भी व्यक्ति खोना नहीं चाहता। प्रजातन्त्र की सफलता के लिए कुशल तथा जागरूक नागरिकों का होना आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य शूरु से बच्चों मे उन सब गुणों को विकसित करना हैं जो प्रजातन्त्र के लिये आवश्यक हैं। सामाजिक अध्ययन द्वारा छात्रों में प्रेम, भाईचारा, त्याग, सहनशीलता जैसे गुणों को विकसित करके उन्हें उत्तरदायी नागरिक बनाया जाता है। सामाजिक अध्ययन द्वारा छात्रों को जनतन्त्र के आदर्शों व मूल्यों की जानकारी दी जाती हैं, जिससें प्रजातान्त्रिक नागरिकता का विकास हो सके और प्रजातन्त्र सुदढ़ बन सके।

14. बन्धुत्व की भावना का विकास (Development of feeling of Brotherhood)

भारतवर्ष में अधिकांश लोगों का जीवन असन्तोष से भरा हुआ है जिसके अनेक कारण हैं जैसे आर्थिक, सामाजिक, भावनात्मक, देश में गरीबी और बेरोजगारी। रूढ़िवादिता अभी भी देशभर में व्याप्त हैं। तोड़–फोड़, मारपीट, दंगे फसाद चारों ओर व्याप्त हैं। आगजनी, घेराव, तालेबन्दी, हड़ताल, रास्ता रोकों, बन्द नित्य का काम बन गया हैं। ऐसे समय में बच्चों में अपनत्व की भावना विकसित करना आवश्यक हैं। मानवीय सम्बन्धों की विस्तत जानकारी, तथ्यों की सही व्याख्या, मनुष्य की एक दूसरे पर निर्भरता की जानकारी देकर इस भावना को विकसित किया जा सकता हैं और यही भावना अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को विकसित करती हैं।

15. ठीक आचरण का प्रशिक्षण (Training of Proper conduct)

प्राचीन काल से घर तथा धार्मिक संस्थाएँ बालक को आचरण का प्रशिक्षण देती थी। परन्तु वर्तमानकाल में इन दोनों का महत्व कम हो गया हैं। संयुक्त परिवार प्रथा समाप्त होती जा रही हैं। धर्म में विश्वास कम होता जा रहा हैं। ठीक आचरण की शिक्षा, शिक्षा द्वारा ही सम्भव है और शिक्षा में भी यह कार्य सामाजिक अध्ययन द्वारा ही सम्भव हैं।

16. सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों का विकास (Development of Social and Moral Values)

आज चारों ओर सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों में निरन्तर गिरावट आ रही हैं। भ्रष्टाचार व चोर बाजारी का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। सामाजिक अध्ययन द्वारा छात्रों में स्वतन्त्र रूप से विचार करने, निर्भरता बढ़ाने की जानकारी देने, सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक चेतना का विकास करके नैतिक मूल्यों को विकसित किया जाता है। उन्हें दिन प्रतिदिन की घटनाओं से अवगत कराया जाता है तथा उनके सामाजिक व भौतिक मूल्यों का विकास किया जाता हैं।

17. समन्वित ज्ञान प्राप्त करना (Providing Integrated Knowledge)

ज्ञान अखण्ड है। ज्ञान एक ईश्वर हैं। सामाजिक अध्ययन विभिन्न विषयों नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास भूगोल का समन्वित विषय हैं। सामाजिक अध्ययन द्वारा बच्चों को सभी विषयों के समन्वित रूप से सरल एवं स्पष्ट ज्ञान दिया जाता हैं।

18. आधुनिकीकरण का विकास (Development of Modernization)

सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य छात्रों का आधुनिकीकरण करना हैं। जिसका अर्थ हैं व्यक्तियों के सोचने एवं कार्य करने के ढंग में परिवर्तन करना। सामाजिक अध्ययन की शिक्षा द्वारा छात्रों में जिज्ञासा की उत्पत्ति की जाती हैं, उनमे उचित रुचियों के प्रति आकर्षण का विकास किया जाता हैं तथा छात्रों में स्वतन्त्र चिन्तन तथा निर्णय लेने की योग्यता का भी विकास किया जाता हैं।

19. अवकाश काल का सदुपयोग (Proper Use of Leisure Time)

वैज्ञानिक उन्नति के कारण आज मनुष्य को पर्याप्त अवकाश काल मिलने लगा हैं। व्यक्ति में अवकाश काल का सदुपयोग करने का कौशल विकसित करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं और सामाजिक अध्ययन इस उद्देश्य की पूर्ति में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता हैं। सामाजिक अध्ययन व्यक्ति में ऐतिहासिक, साहित्यक, भौगोलिक, दार्शनिक भ्रमाणात्मक रूचियों को विकसित करता हैं। यही रूचियाँ उसे अवकाश काल के सदुपयोग में सहायक सिद्ध होती हैं। अतः सामाजिक अध्ययन शिक्षण का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्ति में ऐसी रुचियाँ विकसित करना भी है जो उसे अवकाश काल में सहायक सिद्ध हो।

आर० सी० एडविन ने सामाजिक अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य बताये हैं :–

1. बच्चों को सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से परिचित कराना।
2. व्यक्ति व समाज के सम्बन्ध तथा राज्यों व राष्ट्र सम्बन्धी समस्याओं को समझाना।
3. बच्चों को आदिकाल से लेकर वर्तमान युग तक की सामाजिक प्रगति, संस्कति व परम्पराओं से परिचित कराना।
4. जागरूक एवं उत्तरदायी नागरिकों का निर्माण करना।
5. प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों तथा मूल्यों के अनुसार कार्य करने की क्षमता उत्पन्न करना।
6. देश भक्ति, साहस, सहयोग तथा सहनशीलता की आदत डालना।
7. बालकों को अन्य लोगों के दष्टिकोणों को समझने में सहायता देना।
8. बालकों में कौशलों का विकास करना जो सामाजिक जीवन में प्रभावपूर्ण योगदान के लिए आवश्यक हैं।
9. विद्यार्थियों में तर्कपूर्ण चिन्तनशक्ति का विकास करना।
10. भौगोलिक परिस्थितियों एवं व्यवसायिक क्रियाओं को समझने में सहायता करना।

इस प्रकार उपरोक्त उद्देश्यों के आधार पर यदि सामाजिक अध्ययन का शिक्षण दिया जाए तो आर्दश समाज का निर्माण होगा।

अपनी प्रगति जांचिए-1

(i) लक्ष्य तथा उद्देश्य में क्या अन्तर हैं?

(ii) सामाजिक अध्ययन के उद्देश्य क्या हैं?

2.4 विभिन्न शिक्षा स्तरों पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्य (Objectives of Teaching Social Studies at Different Levels)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उपर्युक्त उद्देश्य एक ही बार प्राप्त नहीं हो जाते इसके लिए सतत प्रयास की आवश्यकता है। यह प्रयास तभी से आरम्भ हो जाना चाहिए जब बच्चा स्कूल में प्रवेश प्राप्त करना हैं और तब तक चलते रहना चाहिए जब तक वह अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर लेता।

विद्यालय की शिक्षा को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

1. प्राथमिक शिक्षा (Primary Education)

2. माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)

अब प्राथमिक शिक्षा को ऐलिमेन्टरी (elementary) शिक्षा के नाम से जाना जाता है। यह पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक चलती है। 9वीं तथा 10वीं कक्षा को माध्यमिक शिक्षा में शामिल किया जाता है।

सामाजिक अध्ययन का विषय प्रायः पहली कक्षा से ही प्रारम्भ हो जाता हैं तथा यह माध्यमिक स्तर तक पढ़ाया जाता

है। इसी अवधि के दौरान सामाजिक अध्ययन के उद्देश्यों को बच्चों के बौद्धिक व मानसिक स्तर के अनुसार ही आगे बढ़ाना चाहिये। इसे संभव बनाने के लिए प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्य सुनिश्चित होने चाहियें?

अब हम देखेंगें कि विभिन्न स्तर पर 'सामाजिक अध्ययन शिक्षण के क्या उद्देश्य हैं।

(क) प्राथमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्य ! (Objectives of Teaching Social Studies at Primary Level)

(1) समाज के प्रति दष्टिकोण (Attitude Towards Society)

बच्चा सामाजिक जीवन की कुछ अनुभूति जो कि वह अपने परिवार व आस पास के वातावरण से प्राप्त करता हैं उसे लेकर स्कूल में प्रवेश करता हैं। इसी सामाजिक ज्ञान को आधार बनाते हुए उसे यह समझाना चाहिये कि मनुष्य एक सामाजिक जीव हैं। उसे समाज की अवस्था व उसके क्षेत्र विशेष की जानकारी देनी चाहिये। बच्चे को यह बताना चाहिये कि मनुष्य के समाज के प्रति कुछ कर्तव्य होते हैं जिनका उसे पालन करना पड़ता हैं। इस तरह बच्चें का समाज के प्रति अपना दष्टिकोण बनता हैं। उसमें अपनत्व की भावना का विकास होता है।

(2) विकास प्रक्रिया (Process of Development)

बच्चों को इस बात का ज्ञान प्राथमिक स्तर पर ही देना चाहिये कि विकास की प्रक्रिया एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया हैं। उन्हें यह बता देना चाहिये कि आगे चलकर उन्हें भी इसी विकास प्रक्रिया में अपनी–अपनी भूमिका निभानी हैं। विकास की भावना विकसित होकर उन्हें भविष्य के प्रति आशान्वित करेगी और उन्हें समाज का उपयोगी सदस्य बनने की प्ररेणा प्रदान करेगी।

(3) सामाजिक एवं भौतिक वातावरण का ज्ञान (Knowledge of Social and Physical Environment)

व्यक्ति को अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने सामाजिक व भौतिक वातावरण पर पर्याप्त रूप से निर्भर रहना पड़ता हैं और मनुष्य की क्रियाएं इसी वातावरण से जुड़ी रहती हैं। यह सब ज्ञान बच्चें को प्राथमिक स्तर पर ही सामाजिक अध्ययन शिक्षण के दौरान बता देना चाहिये।

(4) भौतिक संसाधनों का ज्ञान (Knowledge of Physical resources)

बच्चों को प्राथमिक स्तर पर ही इस बात से अवगत करा देना चाहिये कि हमारे यहाँ कुछ मौलिक साधन हैं और उनके सतत प्रयोग से ही हमारा जीवन संभव हैं। उन्हें बताना चाहिये कि धरती,पानी, मिट्टी, वन, पहाड़, खनिज पदार्थ आदि प्राकतिक साधनों का हमारे जीवन में कितना महत्व हैं और किस प्रकार हमें इनका संरक्षण एवं उपयोग करना हैं।

(5) संयुक्त संस्कति की भावना का विकास (Development of Composite Culture)

बचपन मे ही बच्चों को यह ज्ञान प्रदान कर देना चाहिये कि हमारा देश एक उच्च एवं संयुक्त संस्कति का देश रहा हैं। इसे समद्ध बनाने में अनेक धाराओं तथा विचारों का योगदान रहा है। अपनी संस्कति को जानने हेतू हमें इन विचार तथा धाराओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ताकि हम अपने देश की सांस्कतिक धरोहर से भली–भाँति परिचित हो सकें व इसे आगे बढ़ाने में अपना सहयोग दे सकें।

(6) कार्य के प्रति दष्टिकोण (Attitude towards Work)

प्राथमिक स्तर पर ही विद्यार्थियों को यह बता देना चाहिये कि जीवन में श्रम का कितना महत्व हैं क्योंकि श्रम के बगैर हम किसी भी साधन का वांछित लाभ नहीं उठा सकते। काम से ही हमारा विकास व समद्धि संभव

है। इसलिए काम के प्रति बच्चों का प्रशंसात्मक दष्टिकोण होना चाहिये और यह सामाजिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिये।

(7) लोकतन्त्र तथा सामाजिक समता की भावना का विकास (Development of Feeling of Democracy and Social Equality)

बच्चों को शुरू से ही जनतांत्रिक मूल्यों तथा सामाजिक समता के लिए तैयार करना चाहिये भारत एक लोकतांत्रिक देश हैं। यहाँ पर सब रंग, लिंग, जाति, वर्ग, धर्म के लोग एक ही शासन प्रणाली के अधीन अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं। यहाँ पर किसी भी तरह का कोई भेदभाव नहीं हैं। यहाँ पर सभी परस्पर सहयोग व सद्भावना से रहते हैं। यहाँ का जीवन पूरी तरह सुखी है और हम सभी राष्ट्र को उन्नति व समद्धि के मार्ग पर अग्रसर करते हैं।

(8) राष्ट्रीयता की भावना का विकास (Development of feeling of Nationalism)

प्राथमिक स्तर पर ही बच्चों में राष्ट्रीय भावना की नींव डाल देनी चाहिये उन्हें यह भली–भाँति समझा देना चाहिये कि हमारी राष्ट्रीयता क्या हैं और इसका हमारे लिये कितना महत्व है। उन्हें बता दें कि भारत विभिन्नताओं से भरा एक ऐसा देश हैं जिसमें एकता, कूट–कूट कर भरी हुई है। यहाँ पर विभिन्न भाषाएं बोली जाती हैं। लोगों के पहनावे व रीति–रिवाजों में अन्तर हैं। यहाँ विभिन्न धर्मो के लोग रहते हैं। परन्तु इन सबके बावजूद भी भारत एक राष्ट्र है और आपसी भेदभाव से ऊपर उठकर राष्ट्रसेवा करना प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य होना चाहिये। इस भावना का विकास प्राथमिक स्तर पर ही बच्चों में करना चाहिये।

(9) अंतर्राष्ट्रीय भावना का विकास (Development of feeling of Internationalism)

पांचवी छठी तक पहुँचते–पहुँचते बच्चों में इतनी समझ हो जाती है कि वे अपने आस–पास के वातावरण व देश के बारे में पूरी तरह जानने लगते हैं तथा फिर वे देश के बाहर भी सोचने लगते हैं। इस अवस्था में हम उन्हें यह समझा सकते हैं कि सभी देश आज एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक दूसरे पर कई क्षेत्रों में निर्भर करते हैं। सभी देश मानव कल्याण के विकास में अपना–अपना सहयोग देते हैं। विश्व को एक कुटुम्ब के रुप में रहना चाहिये। आपस में सद्भावना व सहयोग के लिए विभिन्न विचारकों व दार्शनिकों ने अपनी –अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। इस प्रकार प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के बारे में सिखा देना चाहिये।

भारत में हम इन उद्देश्यों की पूर्ति निम्नलिखित रुप में कर सकते हैं:–

(i) प्रचलित त्यौहार व उत्सवों के बारे में जानकारी होनी चाहिए।

(ii) महापुरुषों से संबन्धित जीवनी व गाथाओं की जानकारी।

(iii) भारत के विभिन्न प्रकार की लोगों की जीवन कला व जीवन से संबन्धित तथ्यों की जानकारी।

(iv) पांरपरिक तथ्य जैसे प्रसिद्ध संगीत, स्मारक, भवन, लोकनत्य, नत्य, धर्म, मेले एवं अनेक सांस्कतिक कार्यक्रमों की जानकारी।

(v) ग्लोब तथा विश्व के मानचित्र की जानकारी जिससे उनमें अन्तर्राष्ट्रीय समझ उत्पन्न हो सके।

(vi) विश्व के महान पुरुषों आदि के परिचय व उनके जीवन के बारे में जानकारी जैसे अशोक, महात्मा बुद्ध, सुकरात, लिंकन, लेनिन, गांधी आदि।

(vii) विश्व के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के विषय में जानकारी।

(viii) विश्व की विभिन्न संस्थाएँ जो कि मानव व उसके कल्याण से सीधी जुड़ी हैं के बारे में जानकारी होनी चाहिये जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनिसैफ, यूनैश्कों, विश्व स्वास्थ्य संघ, विश्व श्रम संघ आदि।

(ix) राष्ट्रीय प्रतीकों का परिचय तथा उनके प्रति हमारे दायित्व क्या हैं। उनकी हमें कितनी श्रद्धा व आस्था की आवश्यकता हैं।

(x) हमारी प्रशासन विधि का परिचय तथा विभिन्न स्तरों–गांव, राज्य, देश आदि की शासन प्रक्रिया की जानकारी।

(xi) मौलिक अधिकार व कर्तव्यों का परिचय आदि।

(ख) माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्य (Objectives of Teaching Social Studies at Secondary Level)

प्राथमिक शिक्षा के बाद विद्यार्थियों को सामाजिक अध्ययन में सम्मिलित विभिन्न विषयों का ज्ञान देना चाहिये जिससे उनकी बुद्धि इतनी विकसित हो सके कि वे इन विषयों को समझ सकें। सामाजिक अध्ययन में विभिन्न विषयों का तालमेल ऐसा हो जिससे सामाजिक अध्ययन का ढांचा सुरक्षित रहे। कहने का तात्पर्य यह हैं कि सामाजिक अध्ययन में इतिहास, भूगोल व नागरिक शास्त्र के ऐसे प्रकरण चुने जिनका परस्पर संबंध हो और जिनसे सामाजिक अध्ययन का सामान्य ढांचा सुरक्षित रहे। इन प्रकरणों का चयन करते समय निम्नलिखित उद्देश्यों को प्रमुखता देनी चाहिये :–

(1) लोकतंत्र की आवश्यकता (Need of Democracy)

इस स्तर पर विद्यार्थियों को यह बता देना चाहिये कि व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास के लिए लोकतन्त्र अति आवश्यक होता हैं। आज विश्व के लगभग सभी देशों में लोकतन्त्र ही चलता हैं क्योंकि लोकतन्त्र एक शासन व्यवस्था ही नही अपितु एक जीवन विधि भी है। लोकतन्त्र में मानवधिकार सुरक्षित रहते हैं उनका विकास होता हैं। लोकतन्त्र के विकास के लिए विद्यार्थियों में विभिन्न गुणों–जैसे सहयोग, सहनशीलता, सद्भावना, धर्म निरपेक्षता, सामाजिक एवं आर्थिक समता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, रचनात्मक आलोचना आदि की ओर जागरुक करना चाहिये।

(2) परिवर्तन प्रक्रिया की जानकारी (Knowledge of Process Change)

माध्यमिक स्तर पर बच्चों को जीवन की परिवर्तन प्रक्रिया के बारे में ज्ञान प्रदान कर देना चाहिय। उन्हें इस बात से अवगत कराना चाहिये कि परिवर्तन जीवन–प्रक्रिया का शाश्वत नियम है। आज के आधुनिक युग तक पहुँचते – पहुँचते मानव समाज अनेक परिवर्तनों से गुजर चुका हैं बच्चों को यह बता देना चाहिये कि उन्हें भी इस परिवर्तन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी हैं।

(3) विभिन्न संस्कतियों के प्रति प्रशंसात्मक दष्टिकोण (Appreciative attitude towards various Cultures)

आज का युग एक देश, एक जाति विशेष नहीं हैं! वर्तमान मानव संस्कति आज जिस मुकाम पर पहुँची है उसमें विभिन्न संस्कतियों का सहयोग है। इसमें विभिन्न संस्कतियों का समावेश है। इसी बात को आधार मानते हुए बच्चों को यह सिखाना चाहिये कि सभी संस्कतियों का मिश्रण ही आधुनिक संस्कति का जन्मदाता है और इसके प्रति उनका द ष्टिकोण सकारात्मक होना चाहिये ताकि वे दूसरी संस्कतियों से कुछ सीख लें।

(4) मानव सभ्यता की एकता का ज्ञान (Knowledge of Integration of Human Civilization)

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों का बताया जाना चाहिये कि सभी सभ्यताएं देखने में अलग अलग हो सकती हैं मगर उनमें एक बुनियादी एकता विद्यमान रहती है। यही बुनियादी एकता विश्व को एक परिवार बनाने में अपनी भूमिका अदा करती हैं।

(5) देश की शासन प्रणाली का ज्ञान (Knowledge of nation's Government)

माध्यमिक स्तर पर बच्चों में राष्ट्रीय भावना का विकास किया जाता है तथा उनकी मानसिकता को अनेकता में एकता के मार्ग की और अग्रसर किया जाता हैं। माध्यमिक स्तर पर बच्चों में भावनात्मक एकता को बढ़ावा दिया जाता हैं तथा उन्हें देश की शासन व्यवस्था से अवगत कराया जाता है जिससे, वे देश की प्रशासनिक गतिविधियां विभिन्न राजनैतिक एवं नागरिक संस्थाओं की कार्य प्रणाली को भली–भाँति समझ सकें। इससे विद्यार्थियों में देश की शासन व्यवस्था की जानकारी होगी तथा वे इसमें होने वाले परिवर्तनों से भी अवगत रहेंगे।

(6) अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास के प्रति दायित्व (Responsibility towards development of Internationalism)

विज्ञान एवं तकनीकी ने आज विश्व को इतना छोटा कर दिया हैं कि सभी देश एक दूसरे से किसी ना किसी रूप में जुड़ गए है। आज एक दूसरे पर निर्भरता भी बढ़ गई है। आज अर्न्तसंबन्धों की अनिवार्यता अन्तर्राष्ट्रीयता के

विकास से सभी देशों में परस्पर मधुर सम्बन्धों का प्रसार होगा और विश्व में शांति बनी रह सकेगी। इसलिए इस स्तर पर विद्यार्थियों में अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रति दायित्वों के निर्वाह की जरुरत सामाजिक अध्ययन शिक्षण का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं।

(7) भौगोलिक ज्ञान की आवश्यकता (Need of Geographical knowledge)

विद्यार्थियों को विश्व के भौगोलिक क्षेत्रों का ज्ञान देना ही काफी नहीं बल्कि उन्हें यह भी बताना चाहिये कि कैसे विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परस्पर निर्भर है। यह निर्भरता आज समाज को एक दूसरे से जोड़े रखती हैं जिससे मानव कल्याण का विकास तथा मानवीय संवेदना का विकास होता है। माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को बताया जाना चाहिये कि विभिन्न क्षेत्रों में लोगों का जीवन उनकी भौगोलिक परिस्थितियों से बहुत प्रभावित होता हैं। भौगोलिक परिस्थितियां मानव के सांस्कतिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी प्रकार के जीवन को प्रभावित करती हैं तथा उनमें समय–समय पर परिवर्तन करती हैं तथा उनमें समय – समय पर आने वाले परिवर्तन भी आते रहते हैं। इसलिए बच्चों को भौगोलिक ज्ञान व इसकी अवधारणाओं से परिचित करवा देना चाहिये।

इस स्तर पर इन सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय जरूरी हैं :–

(1) सांस्कतिक पक्ष (Cultural Aspect)

(i) युनानियों, मुसलमानों तथा ईसाइयों का भारतीय सभ्यतां एवं संस्कति पर प्रभाव।

(ii) आधुनिक संस्कति के विकास में विभिन्न प्रवतियों एवं संस्कतियों का योगदान।

(iii) विभिन्न सभ्यताओं की संस्कति का जन्म एवं विकास।

(2) ऐतिहासिक पक्ष (Historical Aspect)

(i) आदिमानव का जीवन के लिए संघर्ष एवं उसका विकास।

(ii) विभिन्न जातियों का जीवन–साधनों की तलाश में विभिन्न स्थानों पर बस जाना।

(iii) आर्यो का वास्तविक स्थान व इस सभ्यता का विकास।

(iv) विभिन्न सभ्यताओं का जन्म तथा विकास।

(3) भौगोलिक पक्ष (Geographical Aspect)

(i) ग्रहों की स्थिति तथा उन ग्रहों में पथ्वी की स्थिति का ज्ञान।

(ii) जलवायु परिवर्तन तथा मौसम परिवर्तनों की जानकारी।

(iii) जलवायु परिवर्तन तथा मौसम का विभिन्न लोगों के जीवन पर प्रभाव का ज्ञान।

(iv) विश्व के प्राकतिक खण्ड तथा उनकी भौगोलिक अवस्थाओं का लोगों के जीवन पर प्रभाव।

(v) भारतीय भौगोलिक विशेषताओं का ज्ञान।

(vi) भारतीय संचार प्रणाली तथा परिवहन व्यवस्था के बारे में जानकारी।

(4) आर्थिक पक्ष (Economic Aspect)

(i) भारतीय कषि तथा इसका आधुनिकीकरण कैसे हुआ इसका ज्ञान होना चाहिये।

(ii) भारतीय उद्योग–उनमें विद्यमानविज्ञान एवं तकनीकी विकास तथा उसका योगदान का ज्ञान।

(iii) योजनाओं का ज्ञान खासकर पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा विकास कैसे हुआ।

(iv) जनसंख्या तथा जनसंख्या वद्धि का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ा हैं।

(v) अन्य देशों के साथ भारत के आर्थिक सम्बन्ध।

(vi) विभिन्न देशों में भारत की आत्मनिर्भरता।

(viii) विश्व के देशों की आर्थिक दष्टिकोण से अन्तनिर्भरता।

(5) राजनैतिक पक्ष (Political Aspect)

(i) सामुदायिक जीवन का गठन एवं इनका विभिन्न गठनों के साथ आपसी संबंध।

(ii) शासन पद्धति के बारे में ज्ञान कि किस स्तर पर कैसी शासन प्रणाली होती है।

(iii) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के विभिन्न अंग तथा उनका आपसी सम्बन्ध क्या होता है कैसे वे मिलकर कार्य करती हैं।

(iv) बहु–उद्देश्य योजनाएं उनकी सफलता तथा विकास

(v) लोकतंत्र की उपलब्धियां तथा उससे सम्बन्धित समस्याएं

(vi) जन संचार साधनों का विकास तथा जनकल्याण में वे कितने सहायक हैं।

इस प्रकार प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन के जिन उद्देश्यों का हमने विवरण दिया हैं वे पूरी तरह अन्तिम नहीं हैं क्योकि समाज में समय समय पर परिवर्तन आने के कारण यह विषय एक गतिशील विषय हैं जिससे इसके उद्देश्यों में परिवर्तन सापेक्ष है। आवश्यकता इस बात की है कि विद्यार्थियों को अपने देश की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कतिक स्थिति से अवगत कराया जाए तथा उन्हें विवेकपूर्ण लोकतन्त्रात्मक नागरिकता के लिए तैयार किया जाए। उनमें राष्ट्रीय भावना के साथ –साथ अन्तर्राष्ट्रीय भावना का भी विकास किया जाए। इन व्यापक उद्देश्यों को लेकर हम विभिन्न शिक्षा स्तरों पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित कर सकते हैं तथा उनकी प्राप्ति के लिए उचित विषय सामग्री तथा शिक्षण विधियों का प्रयोग कर सकते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए- 2

1. प्राथमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के क्या उद्देश्य है?

2. माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने के क्या उपाय हैं?

2.5 सांराश (Summary)

संसार में जितनी भी क्रियाऐं होती हैं वे किसी लक्ष्य को लेकर होती हैं। जब कोई भी कार्य आरम्भ होता हैं तो उसका अन्त भी आवश्यक होता हैं। किसी भी कार्य को करने के लिये लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है तथा फिर क्रियाओं के द्वारा हम उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं।

2.6 आदर्श उत्तर

(i) लक्ष्य तथा उद्देश्य मे निम्न मुख्य अन्तर हैं :–

	लक्ष्य	उद्देश्य
1.	क्षेत्र व्यापक हैं।	क्षेत्र सीमित है।
2.	एक सामान्य कथन है।	एक निश्चित कथन है।
3.	आदर्शवाद होते हैं।	व्यावहारिक होते हैं।
4.	समय अधिक लगता है।	समय कम लगता हैं।
5.	शिक्षा निर्देश स्पष्ट नहीं होते।	शिक्षा निर्देश स्पष्ट होते हैं।

(ii) इस प्रश्न के उत्तर के लिये छात्र भाग 2.3 देखें।

2. (i) इस प्रश्न के उत्तर के लिये छात्र भाग 2.4 देखें।

(ii) निम्न उपाय जरुरी हैं :–

1. सांस्कतिक पक्ष
2. ऐतिहासिक पक्ष
3. भौगोलिक पक्ष
4. आर्थिक पक्ष
5. नागरिक व राजनैतिक पक्ष

2.7 मुख्य शब्द

लक्ष्यः एक पूर्व निर्दिष्ट अंत, जो किसी क्रिया को दिशा प्रदान करता है।

प्राप्य उद्देश्यः वह मानदण्ड, जिसे छात्र द्वारा विद्यालय क्रिया को पूर्ण करके प्राप्त किया जाता है। छात्र के व्यवहार में इच्छित परिवर्तन है।

2.8 सन्दर्भ पुस्तकें

Bining, A.C. and Bining, D.H. - "Teaching the Social Studies in Secondary Schools", Mc Graw Hill Book Company, New York, 1952

Kochar, S.K. - "The Teaching of Social Studies", University Publishers, Delhi

इकाई-I

ब्लूम के उद्देश्यों का वर्गीकरण

(Bloom's Taxonomy of Objectives)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि :–

– ब्लूम द्वारा प्रतिपादित उद्देश्यों के वर्गीकरण की व्याख्या कर सकें।

– ज्ञानात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों को वर्गीकत कर सकें।

– भावात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों को वर्गीकत कर सकें।

– क्रियात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों को वर्गीकत कर सकें।

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 ब्लूम का वर्गीकरण

3.3 सारांश

3.4 आदर्श उत्तर

3.5 मुख्य शब्द

3.6 सन्दर्भ पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

शैक्षिक प्रणाली का लक्ष्य विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करना हैं। कक्षा अध्यापक के लिये व्यावहारिक रुप में इन लक्ष्यों की पूर्ण प्राप्ति लगभग असम्भव सी हैं यदि वह इन लक्ष्यों का विश्लेषण नहीं कर लेता। सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थी को सामाजिक व्यवहार में पांरगत करना है। अतएव इस विषय के अध्यापक के लिये यह जानना आवश्यक है कि उद्देश्यों में क्या विशेषताऐं होती हैं, वह कितनी प्रकार की हैं? उद्देश्य की तीन विशेषताऐं होती हैं।

1. किसी अन्तिम लक्ष्य के लिये की जाने वाली क्रिया को यह दिशा प्रदान करते हैं।
2. किसी क्रिया द्वारा नियोजित परिवर्तन लाया जाता है।
3. इनकी सहायता से क्रियाओं की व्यवस्था की जाती हैं।

हॉसटन के अनुसार, "व्यावहारिक रुप से शैक्षिक उद्देश्य वह योग्यता या कौशल हैं जिसे छात्र द्वारा सन्तोषजनक शिक्षण–अधिगम स्थितियों में ग्रहण तथा विकसित किया गया हों।

शैक्षिक लक्ष्य सामान्य कथन होते हैं। इनकी प्रकति दार्शनिक होती हैं, अतः इनका स्वरुप अधिक व्यापक होता है। यह शिक्षण को दिशा प्रदान नहीं करते। शिक्षण उद्देश्यों की प्रकति मनोवैज्ञानिक होती है। शिक्षण की युक्तियों तथा व्यूह रचना के लिये इनका अधिक महत्व होता हैं। बी०एस० ब्लूम की निम्नलिखित परिभाषा से शैक्षिक उद्देश्यों का अर्थ अधिक स्पष्ट रुप में समझा जा सकता हैं।

शैक्षिक उद्देश्यों की सहायता से केवल पाठ्यक्रम की रचना और अनुदेशन के लिये निर्देशन ही नहीं दिया जाता अपितु ये मूल्यांकन की प्रविधियों के विशिष्टीकरण में भी सहायक होते हैं।"

उद्देश्य दो प्रकार के होते हैं :–

1. शैक्षिक उद्देश्य

2. शिक्षण उद्देश्य

शैक्षिक उद्देश्य अधिक व्यापक होते हैं यह पूर्णता की उस स्थिति का बोध कराते हैं जिस तक पहुँचना संभव भी हो सकता हैं और असम्भव भी। इसके विपरीत शिक्षण या अधिगम उद्देश्य संकुचित व विशिष्ट होते है। ये पूर्व निर्धारित होते हैं और इनका निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि निश्चित अवधि वाले एक निर्धारित कालांश में सामान्य कक्षा शिक्षण सम्पन्न करते समय आसानी से प्राप्त किये जा सकें। इसीलिये यह अनुदेशनात्मक उद्देश्य कहलाते हैं।

3.2 ब्लूम के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Bloom's Taxonomy of Instructional Objectives)

'टैक्सोनोमी' शब्द से हमारा अभिप्राय ऐसी प्रणाली से हैं जिसमें वर्गीकरण किया जाता है। यद्यपि विभिन्न शिक्षाविदों एवं विद्वानों द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का अलग अलग वर्गीकरण किया गया हैं परन्तु जो सबसे अधिक प्रचलन में आता है वे बैंजाभिन एस० ब्लूम' एवं उसके सहयोगी हैं।

1949 में अमेरिकन कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों के परीक्षकों ने एक टैक्सोनोमी ग्रुप को संगठित किया तथा चार वर्षो तक विभिन्न दष्टिकोण लेकर संगोष्ठियां आयोजित की तथा फिर शैक्षिक उद्देश्यों का एक विस्तत वर्गीकरण किया। इसी वर्गीकरण को 'शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण' के नाम से जाना गया। यह वर्गीकरण 'मूल्यांकन' प्रतिमान का अभिन्न अंग हैं। टैक्सोनोमी के अन्तर्गत समस्त उद्देश्यों का मानकीकरण कर दिया गया हैं जिसके फलस्वरुप विश्व के सभी देशों में इसको मान्यता मिली। इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त एवं सराहनीय कार्य प्रोफेसर ब्लूम एवं उसके सहयोगियों ने किया।

उन्होंने उद्देश्यों को व्यवहार के संदर्भ में निर्मित करके इनकी उपयोगिता पर बल दिया तथा अनेक विद्वान मेगर लिण्डवाल, क्राथव्होल, गेगने तथा दोपहम ने, इन वर्गीकरणों को बढ़ावा दिया। इस टैक्सोनोमी के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:–

ब्लूम् के शैक्षिक उद्देश्यों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। सीखने का उद्देश्य मुख्य रुप से छात्रों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन से हैं और व्यवहार परिवर्तन तीन प्रकार के होते हैं :–

(1) ज्ञानात्मक पक्ष

(2) भावात्मक पक्ष

(3) क्रियात्मक या मनोपेशीय पक्ष

ब्लूम के अनुसार सीखने के उद्देश्य भी तीन प्रकार के होते हैं।

(1) ज्ञानात्मक उद्देश्य, (2) भावात्मक उद्देश्य, (3) क्रियात्मक या मनोपेशीय उद्देश्य।

ब्लूम् तथा उनके सहयोगियों ने शिकागों विश्वविद्यालय में इन तीन पक्षों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया हैं। ज्ञानात्मक पक्ष को ब्लूम ने (1956) भावात्मक पक्ष का ब्लूम क्राथव्हील तथा मसीआ ने (1964) तथा क्रियात्मक या मनोपेशीय पक्ष का सिम्पसन ने (1969) में वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इस वर्गीकरण की सहायता से अध्यापक अपने शिक्षण तथा सीखने के उद्देश्यों का निर्धारण आसानी से कर सकता हैं।

ब्लूम ने स्वयं इस वर्गीकरण का उपयोग परीक्षण की रचना में यह जानने के लिए किया है कि विशिष्ट उद्देश्यो ंकी प्राप्ति के लिए प्रश्न का स्वरुप क्या होना चाहिये? उसने परीक्षण को उद्देश्य केन्द्रित बनाने का प्रयास किया हैं।

ज्ञानात्मक पक्ष वर्ग	भावात्मक पक्ष वर्ग	क्रियात्मक या मनोपेशीय पक्ष वर्ग
1. ज्ञान	1. आग्रहण	1. उद्दीपन
2. बोध	2. अनुक्रिया	2. कार्य करना
3. प्रयोग	3. आंकलन	3. नियन्त्रण
4. विश्लेषण	4. संप्रत्यीकरण	4. समायोजन
5. संश्लेषण	5. संगठन या व्यवस्थापन	5. स्वाभावीकरण
6. मूल्यांकन	6. मूल्यविशिष्टीकरण	6. आदत निर्माण

3.2.1 ज्ञानात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्य (Educational objectives of Cognitive Domain)

ब्लूम् ने अपनी पुस्तक "ज्ञानात्मक शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण" में ज्ञानात्मक पक्ष को छः वर्गो में विभाजित किया है। इन्हें मानसिक प्रक्रिया की जटिलता तथा पदानुक्रमिता के अनुसार विकसित किया गया हैं। यह प्रणाली सरल से जटिल तथा मूर्त से अमूर्त है। ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत शैक्षिक उद्देश्यों को छः वर्गो में बांटा गया हैं। ये वर्ग निम्नलिखित हैं :–

(1) ज्ञान (Knowledge)

ज्ञान में हम विशिष्टताओं का ज्ञान, शब्दावली का ज्ञान, विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान, परम्पराओं का ज्ञान, प्रचलन तथा तारतम्य का ज्ञान, पद्धति, सार्वभौतिकता, तथ्यों तथा सामान्यीकरण, सिद्धान्तों तथा संरचनाओं का ज्ञान लेते हैं।

(2) बोध (Understanding)

बोध में हम अनुवाद, अर्थापन एवं बर्हिवेशन को लेते हैं।

(3) प्रयोग (Application)

वास्तविक परिस्थितियों में प्रत्ययों, तथ्यों एवं सामान्यीकरण का प्रयोग करना।

(4) विश्लेषण (Analysis)

इसमें तत्वों का विश्लेषण, सम्बन्धों का विश्लेषण, तथा व्यवस्थित सिद्धान्तों का विश्लेषण आता हैं।

(5) संश्लेषण (Synthesis)

इसमें तत्वों को नई संरचना मे संगठित किया जाता हैं। विशेष सम्प्रेषण की उत्पत्ति, योजना का निर्माण, अमूर्त सम्बन्धों के विन्यास द्वारा व्युत्पति आदि लेते हैं।

(6) मूल्यांकन (Evaluation)

इसमें विशिष्ट उद्देश्य के लिए संदर्भ सामग्री का मूल्य निर्धारण करते हैं। इसमे आंतरिक प्रमाण के संदर्भ में निर्णय तथा वाह्य प्रमाण के संदर्भ में निर्णय लिया जाता हैं।

3.2.2 भावात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्य (Educational objectives of Affective Domain)

भावात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण में मुख्य योगदान ब्लूम, क्रांथव्होल एवं सहयोगियों का है भावात्मक पक्ष को निम्न रुप में प्रस्तुत करते हैं :–

(1) आग्रहण (Receiving or Attending)

भावात्मक दष्टि से सबसे पहले मूल्यों की अनुभूति करानी होती है। यह वर्ग अधिगम कर्ता की उपलब्ध प्रेरकों के प्रति संवेदनशीलता को प्रदर्शित करता हैं। इसके अन्तर्गत संवेंदना ग्रहण करने की इच्छा तथा नियंत्रित तथा चयनित ध्यान सम्मलित हैं। भावात्मक पक्ष का यह निम्नतम् स्तर हैं।

(2) अनुक्रिया या प्रतिक्रिया (Response)

यह दूसरे स्तर का प्रतिनिधित्व करता हैं। इसके लिए ध्यान का आकर्षण होना जरुरी हैं। विद्यार्थियों में जब विभिन्न मानवीय मूल्यों को ग्रहण करने की इच्छा जागत होती हैं तभी वे संबन्धित शैक्षिक, गतिविधियों में भाग लेना शुरु करते हैं तथा तभी उनमें अनुक्रिया करने की इच्छा जागत होती हैं इसके अन्तर्गत स्वीकार, इच्छा तथा संतोष निहित हैं।

(3) आकलन (Valuing)

प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार को व्यक्तिगत तथा सामाजिक मूल्य प्रभावित करते हैं। इस वर्ग के लिए उपर्युक्त दोनों ही वर्ग आग्रहण और अनुक्रिया आधार का कार्य करती हैं। इसमें अनुक्रिया विचार बहुत मूल्यवान होते हैं, जिनसे वह अपने प्रयोजन की पूर्ति का साधन बनाता हैं। इस वर्ग में मूल्यों की स्वीकति, प्राथमिकता एवं मूल्यव्यवस्था का संगठन आता हैं।

(4) संगठन या व्यवस्थापन (Organisation)

इस वर्ग में मूल्यों का व्यवस्थीकरण उसमें आपसी सम्बन्धों का निश्चयीकरण तथा मूल्यों की प्रमुखता का निर्धारण आवश्यक होता हैं। कोई भी व्यक्ति किसी विचार या मूल्य की तरफ आकर्षित होकर उसके प्रति अनुक्रिया व्यक्त करता हैं। इसी तरह व्यक्ति तथा सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति होती हैं मूल्यों के आपसी टकराव को रोकने के लिए इन मूल्यों के स्वरुप तथा संप्रत्यय का ज्ञान होना अति आवश्यक हैं।

(5) मूल्य प्रणाली का चरित्रीकरण (Characterization of Value System)

भावात्मक पक्ष के इस वर्ग के लिए पूर्व वर्णित चारों वर्ग आधार का कार्य करते हैं यह भावात्मक पक्ष का उच्चतम स्तर हैं। इस स्तर पर अधिगम कर्ता के व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों के समन्वय से एक मूल्यप्रणाली का निर्माण हो चुका होता हैं तथा यह स्तर अपेक्षाकत स्थायी एवं वैयक्तिक होता हैं। इसके माध्यम से छात्र में एक विशिष्ट जीवन शैली, विश्वास, अभिरुचियों, एवं रुचियों का संगठन होता हैं।

इस प्रकार से शिक्षा में बालक के व्यवहार के भावात्मक पक्ष विकास करने के लिए इन सभी स्तरों के क्रमिक ढंग से गुजरना पड़ता है।

3.2.3 क्रियात्मक या मनोपेशीय पक्ष के शैक्षिक उद्देश्य (Educational objective of Psychomotor Domain)

क्रियात्मक पक्ष में वे शैक्षिक उद्देश्य सम्मिलित होते हैं जिनका संबंध शारीरिक तथा क्रियात्मक कौशलों से रहता हैं। ब्लूम तथा क्राथव्होल की परिपाटी पर सिंपसन (1966), हैरो (1972), तथा किवलर (1970) ने इस पक्ष के उद्देश्यों को व्यवस्थित ढंग से वर्गीकरण करने का प्रयास किया था। यह टैक्सोनोमी विभिन्न पेशीय क्रियाओं के मध्य सामंजस्य पर आधारित हैं। ब्लूम और अनेक सहयोगियों द्वारा दिए गए इस पक्ष के उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्नलिखित हैं :–

(1) प्रत्यक्षीकरण (Perception)

प्रत्यक्षीकरण ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वाह्य वस्तुओं के सम्बन्ध में रुचि तथा प्ररेणा के आधार पर जागरुक होने की प्रक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया हैं जिसमें कार्यों की श्रंखला शामिल होती हैं। इसके तीन स्तर होते हैं।

(i) वर्णनात्मक

(ii) संक्रमण काल की स्थिति

(iii) व्याख्यात्मक

(2) व्यवस्था (Set)

प्रारम्भिक समायोजन में विशिष्ट प्रकार की क्रियाओं तथा अनुभवों को लिया जाता है जो कि व्याख्या से सम्बन्धित होता हैं। इसके प्रमुख तत्व शारीरिक, मानसिक व संवेंगात्मक होते हैं।

(3) निर्देशात्मक अनुक्रिया (Guided Response)

निर्देशात्मक अनुक्रिया क्रियात्मक कौशल के विकास में प्रथम चरण हैं। निर्देशात्मक अनुक्रिया द्वारा जटिल कौशलों के भाव वाली योग्यताओं पर बल दिया जाता हैं।

(4) कार्य प्रणाली (System)

यह वह स्तर हैं जिस पर किसी छात्र में कार्य करने में एक निश्चित आत्मविश्वास और कौशल की मात्रा उत्पन्न हो जाती हैं।

(5) जटिल प्रत्यक्ष अनुक्रिया (Complex overt Response)

यह क्रियात्मक पक्ष का उच्चतम स्तर होता हैं। इस स्तर पर छात्र में इतनी कुशलता एवं कौशलों का विकास हो जाता हैं कि वह जटिल से जटिल कार्य को कम समय व तथा कम शक्ति बगैर पूर्ण कर सकता हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्लूम तथा सहयोगियों द्वारा दिए गए अनुदेशनात्मक तथा शैक्षिक उद्देश्यों को हम तीन भागों में वर्गीकत करते हैं जो कि शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करनें में छात्र तथा शिक्षक दोनों की सहायता करता हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) ब्लूम द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण के बारे में बताओं।

(ii) क्रियात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्य क्या है?

3.3 सारांश (Summary)

डा० बी० एस० ब्लूम ने शिक्षण उद्देश्यों/प्राप्य उद्देश्यों/अनुदेशात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण किया। ब्लूम के अनुसार व्यवहार के तीन पक्ष हैं :– ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति या बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना है। इस आधार पर शैक्षिक उद्देश्य मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं – ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक उद्देश्य। ज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों के छः स्तर होते हैं – ज्ञान, बोध, प्रयोग, संश्लेषण, विश्लेषण एवं मूल्यांकन। इनमें से ज्ञान सबसे निम्न स्तर है और मूल्यांकन उच्चतम स्तर है। भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों के पांच स्तर हैं – आग्रहण, प्रतिक्रिया, आकंलन, संगठन तथा मूल्यप्रणाली का चरित्रीकरण। क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्यों को भी पांच स्तरों – प्रत्यक्षीकरण, व्यवस्था, निर्देशात्मक अनुक्रिया, कार्यप्रणाली एवं जटिल प्रत्यक्ष अनुक्रिया आदि में वर्गीकत किया जा सकता है।

3.4 आदर्श उत्तर

(i) ब्लूम का शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्नलिखित हैं।

शैक्षिक उद्देश्य

ज्ञानात्मक उद्देश्य	भावात्मक उद्देश्य	क्रियात्मक उद्देश्य
ज्ञान	आग्रहण	प्रत्यक्षीकरण
↳ बोध	↳ प्रतिक्रिया	↳ व्यवस्था
↳ प्रयोग	↳ आकंलन	↳ निर्देशात्मक अनुक्रिया

→ संश्लेषण → मूल्य–प्रणाली का चरित्रीकरण → कार्य प्रणाली

→ मूल्यांकन → जटिल प्रत्यक्ष अनुक्रिया

(ii) → क्रियात्मक पक्ष के निम्न शैक्षिक उद्देश्य हैं :

1. प्रत्यक्षीकरण
2. व्यवस्था
3. निदेशालय अनुक्रिया
4. कार्य प्रणाली
5. जटिल प्रत्यक्ष अनुक्रिया

3.5 मुख्य शब्द

टैक्सोनोमी – टैक्सोनोमी से अभिप्राय ऐसी प्रणाली जिसमें वर्गीकरण किया जाता है।

शैक्षिक उद्देश्य – वह योग्यता या कौशल जिसे छात्र द्वारा संतोषजनक शिक्षण अधिगम स्थितियों में ग्रहण किया गया हो। ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्म।

3.6 सन्दर्भ पुस्तकें

Bloom, B.S. et al; 'Taxonomy of Educational objectives',

The Classification of Educational Goals, New York, 1956

Bossing, N.L, "Teaching in Secondary Schools," American Publishing Co. Pvt. New Delhi, 1970.

(ii) छात्र 'बंगाल विभाजन' के कारणों की व्याख्या कर सकता हैं। – बोध उद्देश्य

(iii) छात्र 'बंगाल विभाजन' के सम्बन्ध में तर्क कर सकता हैं। – प्रयोग उद्देश्य

(iv) छात्र में 'बंगाल विभाजन' के तथ्यों का विश्लेषण करने की क्षमता हैं। – सजनात्मक उद्देश्य

आर०सी०ई०एम०विधि की सीमाएं (Limitations of R.C.E.M. Approach)

(i) मानसिक योग्यताओं को केवल 17 रूपों मे विभाजन करना पर्याप्त नहीं माना जा सकता।

(ii) विभिन्न उद्देश्यों के लिए मानसिक क्रियाओं का कोई सन्तुलन नहीं हैं।

(iii) तीनों उद्देश्यों के लिए एक ही प्रारुप का प्रयोग करना भी उचित नहीं हैं। ये केवल ज्ञानात्मक पक्ष के लिए अधिक उपयोगी हैं।

(iv) यह निर्णय लेना थोड़ा कठिन हैं कि पाठ्यवस्तु को किन–किन मानसिक क्रियाओं में रखा जाए।

4.6 उद्देश्यों को व्यावहारिक रुप में लिखने के लाभ (Advantages of writing objectives in behavioural terms)

(1) उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने से उद्देश्यों के विस्तार में सहायता मिलती है तथा अधिगम कर्ता को अधिगम में ज्यादा सुविधाएँ मिलती है।

(2) शैक्षिक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने से शिक्षण तथा अधिगम में संतुलन बनाए रखने में सहायता मिलती हैं।

(3) इससे विभिन्न शिक्षण क्रियाएं सीमित तथा सुनिश्चित हो जाती हैं।

(4) उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने से अनुभवों की विशेषताओं का निर्धारण होता हैं तथा इसका मापन भी संभव होता हैं।

(5) इससे विभिन्न प्रकार की दश्य–श्रव्य सामग्री के उपयुक्त चुनाव एवं प्रयोग में सहायता मिलती हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने की विभिन्न विधियों के नाम बताओ।

(ii) आर.सी.एम. विधि की व्याख्या करो।

4.7 सारांश (Summary)

अनुदेशात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने की मुख्य तीन विधियां हैं – राबर्ट मेगर विधि, राबर्ट मिलर विधि, आर.सी.ई.एम.। राबर्ट मेगर एवं राबर्ट मिलर ने अनुदेशात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने के लिए ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण को आधार माना है। राबर्ट मेगर ने ज्ञानात्मक एवं भावात्मक उद्देश्यों से सम्बन्धित कार्य सूचक क्रियाएं दी हैं जिनका उपयोग करके उद्देश्यों को व्यावहारपरक शब्दावली में लिखा जा सकता हैं।

आर०सी०ई०एम० विधि भारतीय परिस्थितियों में क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर द्वारा विकसित की गई है। इसमें चार वर्गों से सम्बन्धित उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए 17 मानसिक योग्यताएं प्रस्तुत की गई हैं। 'ज्ञान' स्तर से सम्बन्धित मानसिक योग्यताएं अभिज्ञान, प्रत्यास्मरण करना तथा 'बोध' स्तर से सम्बन्धित 7 मानसिक योग्याताएं–सम्बन्ध देखना, उदाहरण देना, भेद करना, वर्गीकरण करना, व्याख्या करना, पुष्टि करना एवं सामान्यीकरण हैं। प्रयोग स्तर में 5 सजनात्मकता में तीन मानसिक योग्यताओं को रखा गया हैं।

इकाई–I

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के मूल्य

(Values of Teaching Social Studies)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :–

– सामाजिक अध्ययन के उद्देश्यों व मूल्यों में अन्तर कर सके।

– सामाजिक अध्ययन शिक्षण के मूल्यों का वर्णन कर सकें।

संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य एवं मूल्य में अन्तर

5.3 सामाजिक अध्ययन शिक्षण के मूल्य

5.4 सारांश

5.5 आदर्श उत्तर

5.6 मुख्य शब्द

5.7 सन्दर्भ पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा एक उद्देश्य मूलक कार्य हैं इसका उद्देश्य विद्यार्थियों का व्यवहार परिवर्तन करना है। इस प्रक्रिया द्वारा मनुष्य को एक सामाजिक व्यवहार कुशल नागरिक बनाना हैं, उसका सर्वांगीण विकास करना है। इसलिये शिक्षा का कोई न कोई लक्ष्य अवश्य होता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में बहुत से अनुभव प्राप्त होते हैं। इन प्राप्त अनुभवों या परिणामों को मूल्य कहते हैं।

5.2 उद्देश्यों एवं मूल्यों में अन्तर (Difference between objectives and values)

संक्षेप में इन दोनों के अन्तर को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता हैं :-

	उद्देश्य		मूल्य
(1)	उद्देश्य आदर्शवादी होते हैं	(1)	मूल्य व्यावहारिक होते हैं।
(2)	उद्देश्य दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक हैं।	(2)	मूल्य वास्तविक होते हैं।
(3)	उद्देश्य इच्छित लक्ष्य होते हैं।	(3)	जबकि मूल्य लक्ष्यों से प्राप्त होने वाले हैं।
(4)	उद्देश्य एक हो सकता हैं।	(4)	जबकि एक उद्देश्य से अनेक मूल्य प्राप्त हो सकते हैं।

(5)	उद्देश्य प्राप्ति के लिए साधन सामग्री जुटानी पड़ती हैं।	(5)	जबकि मूल्य स्वाभाविक रूप से प्राप्त हो जाते हैं।
(6)	उद्देश्य चाहे प्राप्त न हो।	(6)	परन्तु मूल्य अवश्य प्राप्त हो जाते हैं।
(7)	उद्देश्य विषय को पढ़ाने से पहले ही निर्धारित कर लिए जाते हैं।	(7)	जबकि मूल्यों का पता पढ़ने तथा पढ़ाने के पश्चात मालूम होता हैं।

5.3 सामाजिक अध्ययन शिक्षण के मूल्य (Values of Teaching Social Studies)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के सामान्यतः निम्नांकित मूल्य हैं।

1. अनुभवों द्वारा ज्ञान (Knowledge through Experiences)

सामाजिक अध्ययन ज्ञान के साथ साथ अनुभव भी प्रदान करता हैं। क्रियाओं द्वारा 'अधिगम' के लिए स्थितियो का निर्माण किया जाता हैं। बालकों को केवल पुस्तकी ज्ञान प्रदान नहीं किया जाता, क्योंकि इस प्रकार के ज्ञान को पाकर भी वे वास्तविक सत्य को समझ नहीं पाते। इसलिए वास्तविक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं ताकि बालक क्रिया तथा अनुभव से ज्ञान प्राप्त करे। उदाहरण के लिए यदि विद्यार्थियों को सफाई के बारे में ज्ञान देना हैं, तो यह ज्ञान उन्हें दो प्रकार से दिया जा सकता हैं।

(i) भाषण देकर या पुस्तक में से पढ़ने के लिए कहकर।

(ii) विद्यार्थियों को स्कूल या उसके समीप के कुछ क्षेत्रों का अवलोकन और सफाई के लिए कहा जाये। दूसरी विधि अधिक अच्छी हैं, क्योंकि इसमें क्रिया द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं।

2. बौद्धिक विकास (Intellectual Development)

बच्चे अध्ययन के लिए सामग्री स्वयं ही एकत्रित करते हैं, इसलिए उनका बौद्धिक विकास होता हैं। यहाँ विद्यार्थियों को सभी प्रश्नों के बने बनाए उत्तर नहीं दिये जाते बल्कि नई समस्याओं के प्रति एकाग्रता से मन लगाकर उनके समाधान को ढूंढने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया जाता हैं।

3. सहकारिता की भावना का विकास (Development of feeling of Co-operation)

सामाजिक अध्ययन द्वारा छात्रों को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कक्षा के अन्दर या बाहर मिल जुलकर कार्य करने का प्रशिक्षण दिया जाता हैं। छात्रों में सहयोग, सहानुभूति, सहनशीलता तथा सहकारी भावना का विकास करके सामाजीकरण की प्रक्रिया को सरल बनाया जाता हैं। छात्रों को सिखाया जाता हैं कि मिल जुलकर काम करना कितना आवश्यक हैं।

4. समायोजन की भावना का विकास (Development of feeling of Adjustment)

वर्तमान समय में समाज का ढाँचा काफी जटिल होता जा रहा हैं। परिवार टूट रहे हैं। तनाव बढ रहा हैं। छात्र अपने आपको इस वातावरण के साथ व्यवस्थित करने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं। सामाजिक अध्ययन द्वारा बच्चों को स्कूलों में सामाजिक व भौतिक वातावरण से परिचित कराया जाता हैं, जिससे वे भावी जीवन में अपने आपको हर प्रकार समाज से समायोजित कर सकें।

5. समाजोपयोगी नागरिक गुणों का विकास (Development of socially useful civic attributes)

सामाजिक अध्ययन द्वारा सभी नागरिकों में गुणों का विकास करके ऐसे व्यक्तित्व का विकास किया जाता हैं जो हर दष्टिकोण से समाजोपयोगी होगा। ऐसे व्यक्तित्व वाला छात्र परिवार, समाज, देश तथा राष्ट्र सभी के लिए उपयुक्त होगा।

6. अध्यापक तथा बच्चों के बीच नए संबंध (New relations between teacher and students)

उपलब्धियाँ क्रियाओं के द्वारा होती हैं, इसलिए अध्यापक और विद्यार्थियों में एक नए प्रकार का सम्बन्ध स्थापित होता हैं। दोनों इकठ्ठें काम की योजना बनाते हैं। क्रियाओं का आयोजन अनौपचारिक ढंग से किया जाता हैं। विद्यार्थी को बिना किसी रूकावट के हर बात पर विचार–विमर्श करने की स्वतन्त्रता हैं।

7. विस्तत दष्टिकोण का विकास (Development of Broad outlook)

सामाजिक अध्ययन द्वारा 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना विकसित करके व्यापक दष्टिकोण का निर्माण किया जाता हैं। छात्र सारे विश्व को अपना परिवार समझेंगे। संकुचित विचारों को छोड़कर व्यापक दष्टिकोण अपनाएंगे। वे समझ जायेंगे कि विश्व के अन्य राष्ट्र हमारे दैनिक जीवन को कैसे प्रभावित करते हैं तथा अन्य देशों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक अवस्था का हमारे लिए क्या महत्त्व है। इस प्रकार सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति उचित व विशाल दष्टिकोण विकसित करेंगे।

8. उचित अभिवत्तियों का विकास (Development of Proper Attitude)

सामाजिक अध्ययन द्वारा छात्रों में उचित अभिवत्तियों का विकास किया जाता हैं। छात्रों में विभिन्न घटनाओं, विचारों तथा व्यक्तियों के प्रति वैज्ञानिक दष्टिकोण की भावना विकसित करके कर्त्तव्य परायणता व आदर्शवादिता की भावना विकसित की जाती हैं।

9. अच्छी आदतों का विकास (Development of Good Habits)

सामाजिक अध्ययन के द्वारा छात्रों में अच्छी व स्वस्थ आदतों का विकास किया जाता हैं। छात्रों को बड़ो का आदर करना, छोटों से प्यार करना, स्वास्थ्य नियमों का पालन करना, नियम कानून व रीति रिवाज के अनुसार आचरण रखना आदि अच्छी आदतों का विकास किया जाता हैं, जो सुयोग्य नागरिक बनाने में सहायक हैं।

10. निर्णय व विश्लेषण शक्ति का विकास (Development of decision and Analytical power)

किशोर बालक के लिए वर्तमान समाज की जटिलता का समझना काफी कठिन है। वे यह नहीं समझ पाते कि क्या करें, क्या न करें। इसी मानसिक तनाव में उलझें रहने के कारण उनका व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाता। सामाजिक अध्ययन द्वारा छात्रों को घटना विशेष का विश्लेषण करना व निर्णय शक्ति पर पहुँचना सिखाया जाता हैं जिससे वे भावी जीवन की समस्याओं का विश्लेषण करके उचित निष्कर्ष पर पहुँच सकें।

11. व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास (Development of feeling of Personal and social responsibility)

सामाजिक अध्ययन द्वारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया जाता हैं। आधुनिक समाज में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको ढ़ालने के लिए वर्तमान समाज के ढाँचे तथा उसके प्रति उत्तदायित्व को समझना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत जिम्मेदारी तो होती ही हे।, समाज को ऊँचा उठाने में व्यक्ति की सामाजिक जिम्मेवारी भी बहुत होती हैं।

12. पिछड़े हुए बालकों के लिए सहायक (Helpful for Backward Children)

मन्दबुद्धि व पिछड़े बालक सामान्य बच्चों के मुकाबले में पढ़ाई तथा अन्य गतिविधियों में पीछे होते हैं। पुराने तरीकों से एकत्रित समुचित ज्ञान ऐसे विद्यार्थियों की समझ से बाहर होता हैं। सामाजिक अध्ययन में अध्यापक समय समय पर विभिन्न प्रकार की सहायक सामग्री का प्रयोग करके ऐसे विद्यार्थियों के लिए ज्ञान को सरल बना देता हैं। जिससे वे आसानी से अपनी रूचि तथा कुशलता के आधार पर ज्ञान प्राप्त कर सकें।

13. चयन कुशलता (Selection Ability)

सामाजिक अध्ययन अध्यापक तथा विद्यार्थी दोनों को बुद्धिमतापूर्ण चुनाव करने का अवसर देता है। वैज्ञानिक प्रगति के कारण वर्तमान समाज का ढाँचा अत्यन्त जटिल बनता जा रहा हैं। आज के व्यस्त जीवन में अनेक प्रकार

की वस्तुओं व परिस्थितियों में से बुद्धिमतापूर्ण चुनाव करने की योग्यता आवश्यक हैं। अध्यापक यह निर्णय करता है कि पाठ्यक्रम में कौन से विषय पहले पढ़ाने है, कौन से बाद में। इसी प्रकार विभिन्न विधियों व साधनों मे से विद्यार्थी समयानुकूल चुनाव करना सीखते हैं, यह प्रशिक्षण उनके भावी जीवन मे काम आता हैं।

14. मिलजुल कर काम करने का प्रशिक्षण (Training in group Dynamics)

स्कूल हो या समुदाय, हर स्थान पर व्यक्तिवादी दष्टिकोण देखने को मिलता हैं। स्कूल में बालक स्कूल के कार्य को मिल–जुलकर नहीं करते और समुदाय में हर व्यक्ति केवल अपने ही लाभ के लिए सोचता है। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा दष्टिकोण बड़ा खतरनाक हैं। इसलिए सामाजिक अध्ययन द्वारा कक्षा के कमरे के भीतर और बाहर सहयोगपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न करके मिल–जुलकर काम करने का प्रशिक्षण दिया जाता हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) उद्देश्य तथा लक्ष्यों में विभेद करें।

(ii) सामाजिक अध्ययन शिक्षण के मूल्य क्या हैं?

5.4 सारांश (Summary)

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को कुशल नागरिक बनाना हैं। प्रत्येक शिक्षा का कोई न कोई लक्ष्य अवश्य होता है। उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में काफी अनुभव प्राप्त होते है। इन अनुभवों को मूल्य कहा जाता है। उद्देश्य और मूल्य में अन्तर होता हैं।

5.5 आदर्श उत्तर

(i) उद्देश्य तथा मूल्य में निम्न भेद हैं :–

1. उद्देश्य आदर्शलपी होते हैं लेकिन मूल्य व्यवहारिक होते हैं।
2. उद्देश्य दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक होते हैं जबकि मूल्य वास्तविक होते है।
3. उद्देश्य एक हो सकता है जबकि एक उद्देश्य से कई मूल्य प्राप्त हो सकते हैं।
4. उद्देश्य शिक्षा से पहले निर्धारित किये जाते है।

(ii) उत्तर भाग 5.3 में देखें।

5.6 मुख्य शब्द

मूल्यः वे परिणाम अथवा अनुभव जो लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में प्राप्त होते हैं।

उद्देश्यः इच्छित लक्ष्य जो किसी प्रकार के परिवर्तन को प्रस्तावित करता हैं।

5.7 संदर्भ पुस्तकें

Bloom, B.S. et al - "Taxonomy of Educational objectives",

The Classification of Educational Goals, New York, 1956

Bossing, N.L. - "Teaching in Secondary Schools," American Publishing Co. Pvt., New Delhi, 1970

Kochar, S.K. -"The Teaching of Social Studies", University Publishers, Delhi.

इकाई-II

भारतीय सभ्यता का विकास, स्वर्णकाल

(Evolution of Indian Civilization, Golden Period)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :–

– भारतीय सभ्यता के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कर सकें।

– स्वर्णकाल में हुए विकास को बता सकें।

संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 भारतीय सभ्यता का विकास

1.3 स्वर्णकाल

1.4 सारांश

1.5 आदर्श उत्तर

1.6 मुख्य शब्द

1.7 सन्दर्भ पुस्तकें

1.2 भारतीय सभ्यता का विकास (Evolution of Indian Civilization)

मानव एक सामाजिक प्राणी है उसने समय के साथ साथ चलते हुए सामाजिक जीवन सीखा है। मानव की कहानी लगभग दस लाख वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होती है। पेड़ों पर रहने वाले लंगूरों ने धीरे धीरे अपने दो पैरों पर चलना सीखा। केवल तीस–चालीस हजार वर्ष पूर्व ही 'होमोसेपियन्स' या 'ज्ञानी मानव' का धरती पर अविर्भाव हुआ।

आग की खोज किस प्रकार हुई यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। संभवतः मनुष्य ने ज्वालामुखी पर्वत देखा हो, जंगलों को जलते देखा हो या फिर पत्थरों की रगड़ से आग उत्पन्न हुई हो। आग से आदि मानव को अनेक सुविधाएं मिली। अब वह आग जलाकर जंगली जानवरों से अपनी रक्षा कर सकता था। रात्रि में आग से प्रकाश मिलता था। कच्चे मांस के स्थान पर अब मानव भुना हुआ मांस खाने लगा, जो अधिक स्वादिष्ट और सुपाच्य था।

आदिकाल से आधुनिक युग तक आग हमारे जीवन में निरन्तर एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। ऊर्जा जैसा हम जानते हैं, अग्नि का एक विकसित रूप है। प्राचीन काल में मानव अग्नि से ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए सूखी लकड़ी और गोबर का प्रयोग करता था। अठारहवीं शताब्दी में कोयला ऊर्जा प्राप्ति का माध्यम बन गया। आज पैट्रोलियम तथा उसके उत्पादनों के द्वारा भी घरों में रोशनी की जाती है। आज भोजन पकाने में सौर चूल्हों का प्रयोग होता है। अतः हम देखते हैं कि मानव द्वारा आग की खोज उसके उत्पाद में एक महत्वपूर्ण सोपान थी।

उस समय जब मानव जंगलों में रहता था उसने कुछ अनाज पैदा करने वाले पौधों को पहचानना सीखा। इन पौधों से प्राप्त बड़े–बड़े दानों को खाना आरम्भ कर दिया। गेहूँ के दोनों को दो पत्थरों के बीच में पीसकर आटा बनाना सीखा, मानव ने देखा कि जब कुछ दाने जमीन पर गिरे तो थोड़े ही दिनों बाद उनमें से पौधे निकल आते थे। अतः मानव ने दाने बोना

प्रारम्भ कर दिया। पौधे आसानी से उगने लगे। अब कुछ दाने बोकर वह दानों की पूरी टोकरी प्राप्त करने लगा। अब मानव शिकार तथा जंगली जड़मूल एकत्र करने के साथ ही साथ अन्य फसलें भी उगाने लगा था। इसके लिए वह पत्थर, लकड़ी तथा अपने हाथों का प्रयोग करता था। नदी के किनारे रहता था तथा वर्षा ऋतु पर निर्भर करता था। उसके हथियार तथा औजार प्राकतिक वस्तुओं से ही प्राप्त होते थे।

कषि की खोज ने मानव की जीवन शैली में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन ला दिया। इसके फलस्वरूप ही मानव एक स्थायी जीवन जीने लगा। मानव खेती करने लगा तथा पशु पालने लगा। औजार तथा हथियारों में उन्नति हुई। ग्राम बसने लगे। सभ्यता के विकास की कहानी यहॉ से आरम्भ हुई।

हमने बैलगाड़ी, घोड़ा गाड़ी, साईकिल, बस, रेल को चलते हुए देखा है। इन सबमें पहिया होता है। पहिया मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। संभवतः मानव ने पहिये का आविष्कार उस समय किया जब उसने कषि के बारे में सीखा। ऐसा प्रतीत होता है कि पहिये का प्रयोग बर्तन बनाने और परिवर्तन के लिये किया गया। जो अन्न वह पैदा करते थे उसे बर्तनों में सुरक्षित रखते थे। मानव अविकसित पहिये का प्रयोग वस्तुओं के लाने ले जाने के लिए भी करता था। सर्वप्रथम रथों में पहिये का प्रयोग 1700 ई० पू० के सुमेर के चित्रों में मिलता है। मिश्रवासियों ने पहिये में ताड़ी (स्पोक) लगाना शुरू किया। पहिये की गोलाई और बीच का केन्द्र इससे जुड़ा होता था। मिश्रवासियों ने रथों का प्रयोग शत्रु के विरूद्ध किया। हड़प्पा सभ्यता के खिलौनों से पता चलता है कि उन्हें पहिये का ज्ञान था। पहिये का आविष्कार मानव के प्रौद्योगिक ज्ञान का सर्वप्रथम प्रयोग है। आज बिना पहिये के प्रयोग के विश्व की कल्पना भी अति कठिन ही नहीं असंभव है।

प्राचीन काल में मानव शिकार के लिए पत्थर के तेजधार वाले शस्त्र बनाता था। संभवतः एक दिन उसने किसी पत्थर को आग में गिरते देखा हो। पत्थर के पिंघलने पर तांबे के छोटे–छोटे मानक शेष रह गये। इस प्रकार धातुओं की खोज प्रारंभ हुई। सर्वप्रथम जिस धातु की खोज की गई, वह तांबा था। दीर्घकाल तक विश्व के अनेक भागों में मनुष्य ने तांबे और पत्थर के औजारों का साथ–साथ उपयोग किया। वह काल जिसमें मानव ने तांबे तथा पत्थरों के औजारों का साथ–साथ प्रयोग किया ताम्र पाषाण काल कहलाता था।

ताम्र पाषाण काल में तांबा और पाषाण दोनों का एक साथ प्रयोग हुआ। तांबे का उपयोग 4500 ई० पू० में ऐशिया के पास अफ्रीका और यूरोप में व्यापक हो गया। कुछ सभ्यताएं जिनके पास तांबा नहीं था, अन्य सभ्यताओं से तांबे का आयात करते थे। इस प्रकार व्यापार का विकास हुआ तथा सांस्कतिक आदान प्रदान हुआ। आज भी बिजली के लिए तांबा आवश्यक है। बिजली उपकरणों में तांबे का अत्याधिक प्रयोग होता है।

तांबा और टिन को मिलाकर मनुष्य ने एक नई धातु बनाना सीखा, जिसे कांसा कहते हैं। कांसा तांबे से अधिक कठोर था। मनुष्य ने कांसे से औजार, हथियार आदि बनाना प्रारम्भ कर दिया। मानव का जीवन अधिक समद्ध हो गया। कषि के उत्थान से वस्तु विनियम प्रारम्भ हो गया जिसके फलस्वरूप वाणिज्य व व्यापार में उन्नति हुई। सर्वप्रथम उपयोग ईराक में ही हुआ होगा। क्योंकि इराक में टिन अधिक मात्रा में पाया जाता था। यह युग जिसमें कांसे का प्रयोग हुआ, कांस्य युग कहलाया। प्रथम सभ्यता के विकास में कांसे के महत्वपूर्ण योगदान के कारण सिन्धु घाटी सभ्यता को कांस्य युगीन सभ्यता कहा जाता है।

आप अपने आस पास लोहे की अनेक वस्तुएं देखते हैं – कील, चाकू, कैंची, आदि लोहे को दैनिक जीवन से अलग करना असंभव है। जीवन के विकास में लोहा एक अति आवश्यक वस्तु बन गया है। लोहे का उपयोग लगभग 2000 ई०पू० में होने लगा। लेकिन 1400 ई०पू० के आस पास ही लोगों ने गढ़ाई का काम सीखा। लोहे बनाने की तकनीकी उपयोग का श्रेय हिटाइटस को जाता है जो ऐशिया माइनर में रहते थे। वहां से यहां तटीय भूमध्य सागर क्षेत्रों में फैला। लोहे, युग का प्रारम्भ लगभग 1200 ई०पू० में हुआ। जब तुर्की, इरान और युनान में लोहे का अधिक उपयोग होने लगा। 500 ई०पू० के लगभग यूरोप में लोहे का प्रयोग होने लगा था। भारत में लोहे का प्रारम्भ 1000 ई०पू० के आसपास हुआ। इस काल में वैदिक लोगों ने घने जंगलों को साफ करके गंगा के मैदान में प्रवेश करने के लिए लोहे के उपकरणों का उपयोग किया। लोहे के प्रयोग से वाणिज्य एवं व्यापार में भी इसका बहुत योगदान है।

शिकारी जीवन के पश्चात् मानव ने नदियों के किनारे बसना प्रारम्भ किया क्योंकि उसे खेती व पशुपालन के लिए नदी के पानी की आवश्यकता थी। परिणाम स्वरूप गांव बसे, जहां कषि और व्यापार किया जाता था। नगरों का निर्माण हुआ जिसके फलस्वरूप सभ्यताओं का उदय होने लगा। इन कांस्य युगीन सभ्यताओं की विशिष्टता इनकी लिपि, नगर, व्यापार, कला, वैज्ञानिक उन्नति आदि में निहित है। इन सभी की उन्नति के कारण इतने परिवर्तन परिलक्षित हुए कि इसे मानव इतिहास में एक क्रांति की संज्ञा दी गई – नगर क्रांति। कांस्य युगीन सभ्यताओं के पश्चात् लौह युगीन सभ्यता का प्रारम्भ हुआ। कांस्य युगीन सभ्यताओं का निम्नलिखित योगदान है :–

हड़प्पा सभ्यता नगरीय सभ्यता थी। मोहन जोदड़ो एक सुनियोजित तथा घनी आबादी वाला नगर था। सड़कें सीधी और चौड़ी थी तथा एक दूसरे को समकोण पर काटती थी। मोहन जोदड़ो की खुदाई में बहुमंजलीय भवन मिले हैं। ये भवन सड़क के किनारे पर बने हुए थे जिनके बाहर सड़कों के किनारे पर व्यवस्थित कुड़ेदान आदि की व्यवस्था थी। ऐसा देखा गया है कि घर की नालियां, समस्त घर का गंदा जल, गली वाली नाली में डालती थी। ये नालियां समस्त गंदे पानी को मुख्य नाली में डालती थीं तथा तब यह जल नगर से बाहर ले जाया जाता था। यह दर्शाता है कि हड़प्पा के लोग स्वच्छता को कितना महत्व देते थे। एक विशाल तालाब जिसे अब विशाल स्नानागार कहते हैं भी मिला है। हड़प्पा के निवासियों ने अनाज को सुरक्षित रखने के लिए विशाल धान्य कुठियार बनाये थे। हड़प्पा, मोहनजोदड़ों (अब पाकिस्तान में) कालिबंगा (राज्यस्थान), लोयल (गुजरात) बनवाली (हरियाणा) रोपड़ (पंजाब) आदि इस सभ्यता के प्रमुख नगर थे। धौलवीर (गुजरात) में एक रहट की खुदाई हुई है जिससे सुमेर लोगों द्वारा बनाये पक्के मकानों की जानकारी प्राप्त हुई है।

सिन्धुवासियों को लेखन कला का ज्ञान था और वे चित्रात्मक लिपि का प्रयोग करते थे। खुदाई में कुछ मोहरें भी मिली हैं जिन पर कुछ लिखा हुआ है। जनवरी 1991 की खुदाई में धौलवीर में खड़िया और पत्थर के नौ अक्षर मिले हैं। प्रत्येक अक्षर 37सै०मी० वर्गाकार है। सिन्धु सभ्यता की लिपि न पढ़ी जाने से इस सभ्यता के साहित्य के बारे में सीमित जानकारी उपलब्ध है। भारत में 1500ई०पू० वैदिक काल था। हमें उनके बारे में जानकारी ऋगवेद से प्राप्त होती है जो एक प्राचीनतम ग्रन्थ है। ऋगवेद में 1028 सूक्त है तथा 10 मण्डल है। वैदिक साहित्य के अन्य भ्रम हैं – 'ब्राह्मण' 'उपनिषद' 'अरण्यक'। इन ग्रन्थों में सन्यासियों के लिए मार्गदर्शन ब्रह्म, आत्मा, मत्यु, मत्योपरान्त्, जीवन, संसार और निर्वाण आदि का विवेचन किया गया है। 'महाभारत' और 'रामायण' में भी वैदिक कालीन जीवन की झांकी दिखाई देती है।

सिन्धुवासियों को औषध विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में जानकारी थी। नीम के पत्तों का उपयोग औषधि निर्माण में होता था। नाप तोल भी वैज्ञानिक ढंग का था। यह आश्चर्य का विषय है कि 16 और इसके गुणांक तोल में प्रयुक्त होते थे। भारतवर्ष में अंग्रेजों के समय तक भी 16 के गुणे भागों का प्रयोग चलता रहा है जैसे रूपये में 16 आने होते हैं।

सिन्धुवासी सूक्ष्म कलाओं में निपुण थे। वे पत्थर और धातु से मूर्ति बनाने की कला जानते थे। ये मिट्टी से मूर्ति बनाकर उन्हें फूलों से सजाते थे। हड़प्पा वासी नत्य के भी शौकीन थे। एक नर्तकी की कांसे की बनी प्रतिमा प्राप्त हुई है। वे कपास उगाते थे तथा उससे रूई निकालकर सूत कातना भी जानते थे। हड़प्पा में एक लाल पत्थर और दूसरी नीले पत्थर की मूर्ति भी मिली है। अनुमान है कि ये पूजा की मूर्तियां थी। पशुपति तथा मातदेवी की मूर्तियां भी मिली हैं।

1.3 स्वर्णकाल (Golden Period)

देश में कला, विज्ञान तथा साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई। अनेक उपलब्धियों के कारण गुप्तकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता है। गुप्त वंश के राजाओं ने भारत पर लगभग 200 वर्षो से अधिक समय तक राज्य किया। इस वंश के प्रमुख शासक निम्न थे।

1. चन्द्रगुप्त प्रथम

चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्त वंश का प्रथम प्रसिद्ध राजा था। उसने लगभग ३२० ई० में राज्य संभाला। वह गुप्त वंश का प्रथम राजा था जिसने अपने आपको महाराजधिराज घोषित किया। लिच्छवी वंश में विवाह करने से उसे राज्य विस्तार में काफी सहायता मिली। पहले की भांति लिच्छवी वंश की उत्तरपूर्व भारत में अब भी काफी प्रतिष्ठा थी। उसके राज्य काल में उसका राज्य मगध के क्षेत्रों में फैला चुका था। कहते हैं कि उसने एक दरबार में अपने पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

2. समुद्रगुप्त

समुद्रगुप्त अपने वंश का बहुत शक्तिशाली राजा था। उसने सम्भवतः 340 ई० के कुछ समय बाद राज्य संभाला और 375 ई० तक राज्य किया। उसके राज्यकाल में प्रचलित मुद्राओं से तथा हरिषेण के इलाहाबाद स्तम्भ पर अंकित लेखों से समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व तथा राज्य के बारे में काफी जानकारी मिलती है। समुद्रगुप्त एक महान सेनानायक ही नहीं अपितु कला और विज्ञान में भी रूचि रखता था। वह संगीत प्रेमी था और उच्च कोटि का कवि तथा संगीतज्ञ था। उसके दरबार में उच्चकोटि के अनेक कवि तथा ज्ञानी थे। इनमें से एक हरिषेण था जिसका समुद्रगुप्त बहुत सम्मान करता था।

3. चन्द्रगुप्त द्वितीय

समुद्रगुप्त के बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। उसे विक्रमादित्य भी कहा जाता है। उसने 365ई० से 413 ई० तक शासन किया। उसने अपने पूर्वजों की तरह राज्य विस्तार किया। उसके दरबार में कालीदास जैसा महान कवि था। उसने अमिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक तथा मेघदूत व रघुवंश काव्यों की रचना की। उस समय चीनी चात्री फाह्यान भी भारत आया जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के पाटलिपुत्र के महल, अस्पतालों और दानगहों से बहुत प्रभावित हुआ। उसने लोगों के आचार, व्यवहार तथा शासन व्यवस्था की बहुत प्रशंसा की है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अपने न्याय के लिए भी बहुत प्रसिद्ध था।

4. कुमारगुप्त प्रथम

विक्रमादित्य के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त प्रथम राजा बना। उसका साम्राज्य दूर तक फैल गया था। उसके शासन काल के अन्तिम दिन सुख के नहीं थे। दक्षिण में कुछ शक्तियों ने सिर उठाया और उनको कुचलने से पूर्व ही कुमारगुप्त प्रथम का देहान्त हो गया। उसके पुत्र स्कन्दगुप्त को हूण तथा अन्य शक्तियों से जूझना पड़ा।

राजनैतिक दशा (Political State)

गुप्त काल में एक छत्र शासन व्यवस्था स्थिर रूप धारण कर चुकी थी। वास्तव में राजा को दैवी शक्ति से युक्त समझा जाता था। इस काल के राजा वीर थे और जनता की समद्धि के लिए जागरूक थे। इसलिए उनकी शासन व्यवस्था उत्तम थी। राजा द्वारा मनोनीत गवर्नर तथा अन्य अधिकारी अपने क्षेत्र में अधिक स्वतंत्रता से कार्य कर सकते थे। राजा न्याय व्यवस्था में स्वयं रूचि लेते थे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य न्याय के लिए बहुत प्रसिद्ध था। उसकी न्याय सम्बन्धी कथाएं आज भी प्रचलित हैं। लोग राजा की न्याय व्सवस्था में पूरा पूरा विश्वास रखते थे। जिला मुख्यालयों पर भी न्यायाधिकारी होते थे। गॉवों में प्रायः न्याय वहां के लोगों की सहायता से किया जाता था।

सामाजिक दशा (Social State)

फाह्यान नामक चीनी यात्री भारत वर्ष में चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में आया। उसने गुप्त वंश के समय की सामाजिक दशा का वर्णन किया है। गुप्त काल में सामाजिक अवस्था में काफी परिवर्तन आया। इस बात का प्रयास किया जाता था कि जातियॉ अपने पूर्वजों से सम्बन्धित काम धंधे ही करें परन्तु इसका दढ़ता से पालन नहीं होता था। विवाह के नियम कठोर नहीं थे। अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे।

फाह्यानके अनुसार सामान्यतः लोग समद्ध थे। लोग प्रायः अहिंसा प्रेमी थे और वे प्याज, लहसुन तथा मदिरा का प्रयोग नहीं करते थे। समाज का एक वर्ग ऐसा था जिसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता था। लोग उन्हें अपवित्र मानते थे और उनसे दूर रहते थे। इन्हें चांडाल कहा जाता था। राज्य में दण्ड बहुत साधारण थे। प्रायः जुर्माना ही काफी समझा जाता था। मत्यु दण्ड का विधान नहीं था। यदि कोई अपराधी बार–बार राजद्रोह करता तो उसका हाथ काट दिया जाता था। मार्ग सुरक्षित थे और चोर आदि का कोई डर नहीं था। देश धन से सम्पन्न था। चीजें बहुत सस्ती थी।

अमीर लोगों ने यात्रियों के लिए सराएँ तथा रोगियों के लिए अस्पताल खोले हुए थे। पाटलिपुत्र नगर में दो विशाल और सुन्दर विहार थे। जहॉ विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करने तथा अध्ययन करने आते थे।

महिलाओं की दशा (State of Women)

गुप्त काल में महिलाओं की दशा अच्छी थी। समाज में उच्च वर्ग की महिलाऐं प्रशासन में भाग लेती थी। दक्षिण के कुछ प्रान्तों में तो महिलाऐं प्रदेश की शासक तथा अनेक गांवों की मुखिया भी थी। धनी कुटुम्बों की कन्याओं को शिक्षा दी जाती थी और वे साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेती थी। स्वयंवर की प्रथा कहीं कहीं प्रचलित थी। पुरूष अनेक विवाह कर सकते थे। सती प्रथा ऊँची जातियों में प्रचलित थी।

व्यापार (Trade)

गुप्त काल में जो सुख सम्पदा बढ़ी वह व्यापार के कारण ही थी। न केवल देश के भीतरी भाग में व्यापार काफी प्रगति पर था वरन् पश्चिमी एशिया तथा दक्षिण–पूर्वी एशिया के साथ भी भारत के व्यापारिक सम्बन्ध थे। व्यापार बढ़ने के साथ साथ समुद्र तथा जहाज बनाने के ज्ञान में भी विकास हुआ। भारत का व्यापार दूर दूर तक फैला हुआ था। ताम्रलिप्रि बन्दरगाह से दक्षिण–पूर्व एशिया के अनेक देशों, जैसे सुवर्ण भूमि, यवद्वीप, कंबोज से व्यापार होता था। भारतीय व्यापारियों ने वहां अपनी बस्तियां बनाई। पश्चिमी तट पर भड़ोच तथा सोपारा बन्दरगाहों से भी दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों को जहाज जाते थे। इस व्यापार के माध्यम से ही भारतीय संस्कति उन देशों तक पहुॅची जिसका कुछ अंश वहॉ के लोगों ने अपना लिया। आज भी भारत और उन देशों के बीच समानताऍं मिलती हैं। भारतीय व्यापार अफ्रीका, अरब ईरान जैसे देशों से भी होता था।

धार्मिक दशा (Religious State)

गुप्त काल से पूर्व ब्राह्मण मत कुछ बढ़ गया था। गुप्त काल में यह पुनः भिन्न रूप में फैला। धार्मिक कर्मकांड तथा बलि प्रथा की अपेक्षा भक्ति का विकास हुआ। इस काल में शैव और वैष्णव मतों का प्रचार हुआ। मूर्ति पूजा का पुनः आरम्भ हुआ और इसके लिए मन्दिरों का निर्माण हुआ। विभिन्न धर्मों के लोग एक दूसरे का आदर करते थे। गुप्त सम्राट हिन्दू धर्म के अनुयायी थे परन्तु वे सभी धर्मों का भी आदर करते थे।

कला (Art)

गुप्त काल में साहित्यिक तथा वैज्ञानिक प्रगति का वर्णन करने से पहले उस समय की कला की उन्नति के विषय में जानना जरूरी है। अजन्ता की अधिकांश गुफाऐं इसी कला की देन हैं। इन गुफाओं की दीवारों पर चित्रकारी का एक अनूठा नमूना मिलता है। सारे संसार में अजन्ता की गुफाऍं सुन्दर चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध हैं। इन दीवारों पर प्रयोग किए गए रंग आज भी ताजा प्रतीत होते हैं। इस काल में गुफाओं के अतिरिक्त ईंटों या पत्थरों के छोटे या बड़े मन्दिर बनाए गये थे जिनमें मूर्तियां रखी जाती थी। कई मन्दिरों में एक ही कमरा होता था। परन्तु अनेक मन्दिरों में दो या इससे अधिक संख्या में विशाल कमरे होते थे। बौद्ध विहार अब भी प्रचलित थे। कुछ विहार पहाड़ियों को काट कर बनाए जाते थे। ऐसा एक विहार औरंगाबाद के निकट था। सारनाथ का घामेख स्तूप भी काफी प्रसिद्ध है।

साहित्यिक प्रगति (Literary Progress)

गुप्त काल में भारतीय साहित्य अपनी चरम सीमा पर था। इस काल में खूब कविताऐं लिखी गई। समुद्रगुप्त स्वयं एक योग्य कवि था और अनेक कवियों द्वारा विद्वानों को संरक्षण देता था। कवियों को शासकीय आश्रय मिला हुआ था। समुद्रगुप्त के राज्यकाल में हरिषेण प्रमुख कवि था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य भी कवियों का सम्मान करता था। कालिदास उसके राज्य का महान कवि था। उसके प्रसिद्ध ग्रंथ अमिज्ञान शाकुन्तलम्, मेघदूत, कुमार–सम्भव आदि हैं। इस काल में अनेक प्रसिद्ध नाटक भी लिखे गये। इनमें से मच्छकटिक तथा मुद्राराक्षस प्रमुख है। भर्तहरि, मयूर व सुबन्धु जैसे अनेक साहित्यकारों ने उच्च स्तर का साहित्य प्रदान किया। भाषा के विज्ञान का अध्ययन किया गया। अमर सिंह ने शब्दकोष की रचना की। पंचतंत्र की कहानियॉ भी इस काल की देन हैं।

वैज्ञानिक प्रगति (Scientific Progress)

गुप्त काल ने आर्य भट्ट तथा वराहमिहिर जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक और ज्योतिषियों को जन्म दिया जिन्हें आज भी सम्मान से याद किया जाता है। पहली बार आर्य भट्ट ने बताया कि पथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। भारतीय गणितज्ञों ने दशमलव

प्रणाली का भी प्रयोग किया और वे शून्य के ज्ञान से भी अपरिचित नहीं थे। अनेक धातुओं को मिलाने के प्रयोग भी किए गए। महरौली का लोह स्तम्ब इसी काल की कति है। आयुर्वेद के विषय में भी पुस्तकों की रचना की गई। नालन्दा, तक्षशिला, सारनाथ तथा अजन्ता प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे। यहॉ अन्य देशों से लोग अध्ययन के लिए आते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय इतिहास में गुप्तकाल विशिष्ट उपलब्धियों का काल रहा है। इस काल में न केवल राजनीतिक एकता स्थापित हुई वरन् आर्थिक विकास, साहित्य तथा विज्ञान के क्षेत्रों में भी अभूतपूर्व उपलब्धियॉ प्राप्त की गई। वास्तव में यह अनुपम प्रगति का युग था। इसलिए इस युग को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) भारतीय सभ्यता के उदय पर एक लेख लिखें।

(ii) स्वर्णकाल के राजाओं का वर्णन करों?

1.4 सारांश (Summary)

मानव एक सामाजिक प्राणी है,उसने समय के साथ साथ चलते हूए न केवल सामाजिक जीवन सीखा है अपितु विकास पथ पर चलते हुए आज वह बहुत आगे निकल गया है। जगंलो में रहने वाला मानव आज बहुत आगे निकल गया है तथा वह आसमान की गहराई मापने को तैयार हो गया है।

गुप्त काल को भारत का स्वर्ण–युग कहा जाता है क्योंकि इस काल में साहित्य, कला विज्ञान, शिक्षा, व्यापार तथा धर्म के क्षेत्र में अत्याधिक उन्नति हुई। इस काल के शासक स्वयं संगीत के ज्ञाता थे जिन्होंने लगभग 200 वर्षों से अधिक समय तक राज्य किया।

1.5 आदर्श उत्तर

(i) छात्र इस प्रश्न के उत्तर कें लिये इसी अध्ययन के भाग 1.1 को देखें।

(ii) छात्र इस प्रश्न के उत्तर को इसी अध्याय के भाग 1.2 को देखें।

1.6 मुख्य शब्द

वैज्ञानिक प्रगति – विज्ञान के क्षेत्र में किए जाने वाले अनुसंधानों तथा खोजों के परिणामस्वरूप हुई प्रगति।

साहित्यिक प्रगति – साहित्यकारों तथा कवियों के योगदान से साहित्य के क्षेत्र में की गई प्रगति।

1.7 सन्दर्भ पुस्तकें

Text for middle and High Classes, prescribed by NCERT, New Delhi.

इकाई-II

मुगल साम्राज्य तथा उसका भारतीय संस्कृति पर प्रभाव

(Mughal Dynasty and Impact on Indian Culture)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

– मुगल साम्राज्य के विभिन्न शासकों का वर्णन कर सकें।

– मुगल साम्राज्य के भारतीय संस्कति पर प्रभाव बता सकें।

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 मुगल साम्राज्य

2.3 भारतीय संस्कति पर प्रभाव

2.4 सारांश

2.5 आदर्श उत्तर

2.6 मुख्य शब्द

2.7 सन्दर्भ पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में आपने भारतीय सभ्यता के विकास व स्वर्णकाल के बारे में पढ़ा। इस अध्याय में आप मुगल साम्राज्य तथा भारतीय संस्कति पर उसके प्रभाव के बारे में पढ़ेगें

2.2 मुगल साम्राज्य (Mughal Dynasty)

1526 ई० में हमारे देश के इतिहास में एक नया युग आरम्भ हुआ जिसे मुगल काल के नाम से पुकारा जाता है। इस वंश की जानकारी इस प्रकार है :–

बाबर (1526-1530ई०)

बाबर फरगाना के शासक उमर शेख मिर्जा का पुत्र था उसका जन्म 1483 ई० में हुआ था। 11वर्ष की आयु में अपने पिता की मत्यु के पश्चात् वह फरगाना का शासक बना। आरम्भ में उसे बड़ी कठिनाइयॉं उठानी पड़ी किन्तु उसने साहस न छोड़ा । उस समय भारत की राजनैतिक दशा बिगड़ी हुई थी। बाबर ने इसका पूरा लाभ उठाया। उसने पानीपत में अफगान शासक को हरा कर भारत में मुगल साम्राज्य को स्थापित किया। पानीपत का युद्ध संसार का एक प्रमुख युद्ध माना जाता है। इसके पश्चात् उसने राजपूत शासकों के साथ युद्ध करके उन्हें भी हरा दिया और पंजाब, दिल्ली, बिहार, बंगाल का स्वामी बन बैठा। अधिक परिश्रम के कारण उसका स्वास्थ्य गिरने लगा और 1530 ई० में वह स्वर्ग सिधारा।

हुमांयू (1530-1540ई० तथा 1555-1566ई०)

बाबर की मत्यु के बाद 23 वर्ष की आयु में उसका सबसे बड़ा पुत्र हुमॉयू गद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता की इच्छानुसार अपने तीन भाइयों को साम्राज्य की तीन बड़ी बड़ी जागीरों का शासक बना दिया। गद्दी पर बैठते ही हुमायूँ को दो शक्तिशाली शत्रुओं का सामना करना पड़ा। वे थे, अफगानों के नेता शेरशाह और गुजरात का शासक बहादुरशाह। इसी समय उसके भाई कामरान ने भी उसके विरूद्ध विद्रोह किया और पंजाब पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार हुमॉयू चारों ओर विपत्तियों से घिर गया। हुमायूँ ने चुनार के किले में शेरखां को घेर लिया। शेरखां ने चतुराई से काम लिया। उसने हुमायूँ से संधि कर ली और अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। हुमायूँ ने बहादुरशाह को पराजित करके गुजरात तथा मालवा पर अधिकार कर लिया। शेरशाह ने हुमायूँ से युद्ध नहीं किया तथा उसे बंगाल की ओर आगे बढ़ने दिया। वर्षा ऋतु आरम्भ हो गई। हुमायूँ बंगाल में घिर गया। शेरशाह अपनी चाल में कामयाब हो गया। उसकी सेना ने हुमायूँ का मार्ग रोक लिया और दिल्ली तथा आगरा पर शेरशाह का अधिकार हो गया। हुमायूँ विवश होकर लाहौर पहुँचा। उसके भाईयों ने भी सहायता नहीं की। लाहौर से हुमायूँ सिन्ध पहुँचा। यही अमरकोट के स्थान पर 1542ई० में अकबर का जन्म हुआ। शेरशाह की मत्यु के पश्चात् 1555ई० में अफगानों को हराकर हुमायूँ ने दिल्ली और आगरा पर फिर से अधिकार कर लिया।

अभी केवल 6 महीने बीते थे कि सम्राट दिल्ली में अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से उतरते हुए ठोकर खाकर गिर गया। गहरी चोट के कारण उसकी मत्यु हो गयी।

अकबर (1556-1605ई०)

हुमायूँ की मत्यु के पश्चात् उसका तेरह वर्षीय पुत्र अकबर गद्दी पर बैठा। अकबर के सामने अनेक कठिनाइयॉ थी किन्तु उसने बड़ी सूझ–बूझ से उन्हें सुलझाया। मुगल राज्य का विस्तार किया, हिन्दुओं के प्रति उदार नीति को अपनाया, एक सुसंगठित शासन व्यवस्था स्थापित की और भारत में मुगल साम्राज्य को लगभग अजेय बना दिया। उसने हेमू को पराजित किया और दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार कर लिया कुछ ही समय पश्चात् ग्वालियर, अजमेर, जौनपुर और मालवा जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिए गए। उसने हिन्दुओं के साथ अच्छे सम्बन्ध रखे। उसकी उदार नीति के कारण जजिया कर लेना भी बन्द कर दिया। उसने दीन–ए–इलाही की स्थापना की तथा फतेहपुर सीकरी के राजभवन में एक इबादत खाना बनवाया। यहॉ सभी धर्मों के विद्वान जमा होकर अपने अपने धर्मों की अच्छी बातें सम्राट को बताते थे। अकबर की सफल नीतियों के फलस्वरूप सारे उत्तरी भारत में शान्ति व्यवस्था बनी रही और साहित्य तथा कला के क्षेत्रों में अपूर्व उन्नति हुई।

जहॉगीर (1606-1657ई०)

जहांगीर अकबर का सबसे बड़ा पुत्र था। उसका बचपन का नाम सलीम था। जनता को न्याय दिलाने के लिए उसने अपने महल के दरवाजों पर एक सोने की जंजीर लटकवायी, जिसे खींचकर कोई भी फरियादी अपनी फरियाद बादशाह तक पहुँचा सकता था। जहांगीर के काल में कन्धार मुगलों के हाथ से निकल गया। जहांगीर के शासन काल में इंग्लैंड के शासक ने सर टामस रो को अपना राजदूत बनाकर भारत से व्यापारिक संधि करने के लिए भेजा किन्तु जहॉगीर सहमत न हुआ। सम्राट ने नूरजहॉ से विवाह किया और शासन कार्य में अपना नाम भी सिक्कों पर अंकित करवाया। जहांगीर एक योग्य दयालु और न्यायप्रिय सम्राट था। वह चित्रकला का प्रेमी और संरक्षक था। वह विद्वान था तथा फारसी बहुत अच्छी लिखता था। उसमें शराब पीने तथा अफीम खाने की लत थी।

शाहजहॉं (1628-1658ई०)

शाहजहॉ ने गद्दी पर बैठते ही बुन्देलों के विद्रोह को बड़ी कठोरता से दबाया। उसके राज्यकाल में मुगल साम्राज्य का दक्षिण में और विस्तार हुआ। शाहजहॉ ने अपने पुत्र औरंगजेब को दक्षिण भारत का सुबेदार नियुक्त किया। शाहजहॉ के काल में अनेक इमारतों का निर्माण हुआ जिनके यह कारण मुगल काल का स्वर्ण युग कहलाया। इस काल में लाल किला, जामा मस्जिद, ताजमहल बनवाये गये। शाहजहॉ के राज्यकाल की प्रमुख घटना उत्तराधिकार की लड़ाई है। जिसमें औरंगजेब सफल रहा। इसने गद्दी पर बैठकर 8 वर्ष तक शाहजहॉ को आगरे के किले में बन्दी बनाकर रखा। 1666 में शाहजहॉ की मत्यु हो गई। यह कला और साहित्य का बड़ा प्रेमी था।

औरंगजेब (1658-1707 ई०)

सम्राट औरंगजेब ने साम्राज्य को उसकी चर्म सीमा तक पहुॅचा दिया। असम, अराकान, बीजापुर, गोलकुॅड़ा को जीतकर मुगल साम्राज्य में मिला लिया। सम्राट ने अपनी धार्मिक नीति में अनेक परिवर्तन किए। उसने कुरान शरीफ को अपनी धार्मिक नीति का आधार मानकर कुछ ऐसे नियम बनाए जिन्होंने हिन्दुओं को बहुत प्रभावित किया। हिन्दुओं से जजिया कर पुनः लिया जाने लगा। नवीन मन्दिरों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। राजपूत जिन्होंने मुगल साम्राज्य के लिये रक्त बहाया, मुगलों के विरूद्ध हो गए। चारों ओर विद्रोह की आग भड़क उठी। दक्षिण भारत में शिवाजी का बोलबाला हो गया। सिक्ख भी औरंगजेब के विरूद्ध खड़े हो गये।

औरंगजेब के पश्चात् मुगल साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया। उसके उत्तराधिकारी कमजोर रहे। और इस प्रकार मुगल शासन का अन्त हो गया। अन्तिम शासक बहादुरशाह जफर था जिसे स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के कारण अंग्रेजों ने देश निकाला दे दिया था। मुगलों ने साम्राज्य के विस्तार के साथ एक सुदढ़ शासन व्यवस्था भी दी। इसका श्रेय अकबर को जाता है। उसने हिन्दुओं के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये और अपनी अदभुत धार्मिक नीति के कारण देश को एकता के सूत्र में बॉधने का प्रयास किया। उसकी उदार धार्मिक नीति के कारण लोगों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। वे सुन्दर वैभवशाली जीवन बिताने लगे इसलिये इस काल में साहित्य और कला की अपूर्व उन्नति हुई।

2.3 भारतीय संस्कति पर प्रभाव (Effect on Indian Culture)

हमारे देश के इतिहास में मुगल काल सांस्कतिक विकास का स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में अद्भुत साहित्यिक विकास हुआ और विभिन्न कलाऍ अपनी चर्म सीमा पर जा पहुॅची। इस विकास का प्रभाव भारतीय संस्कति पर भी पड़ा जिससे दो संस्कतियों के संगम से नवीन संस्कति का उदय हुआ।

1. साहित्य (Literature)

साहित्य के क्षेत्र में उन्नति हुई। मुगल सम्राट साहित्य प्रेमी थे। वे विद्वानों का आदर करते थे। उस काल के कुछ प्रमुख विद्वान फैजी, अबुल फजल बहुत प्रसिद्ध हैं। अकबर ने रामायण, महाभारत, भागवत् गीता आदि ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया। शाहजहॉ का पुत्र दारा शिकोह फारसी तथा संस्कत का विद्वान था उसने उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया। हिन्दी साहित्य ने इस काल में विशेष उन्नति की है। इस युग के महान कवि तुलसीदास थे। उन्होंने रामचरित्र मानस लिखी। सूरदास ने सूर सागर की रचना की। हिन्दी के अन्य कवि केशव, भूषण मलिक, मुहम्मद जायसी, रहीम, रसखान और बिहारी इस काल की देन हैं।

2. कला (Art)

मुगलों के काल में भारतीय चित्रकला एक नए रूप में विकसित हुई। बाबर के समय की चित्रकला में ईरानी प्रभाव दिखाई देता है। हुमायूॅ ईरान से दो चित्रकार अपने साथ लाया था। उन्होंने अनेक पुस्तकों में चित्र बनाए। अकबर को चित्रकला से विशेष लगाव था। इसके समय के चित्रों में ईरानी तथा भारतीय चित्रकला का मिश्रण हुआ जिससे दोनों संस्कतियों ने एक दूसरे को प्रभावित किया। इस काल में रामायण और नल दमयंती जैसी पुस्तकों को सुन्दर चित्रों से सजाया गया था।

3. संगीत (Music)

बाबर व हुमायूॅ संगीत में रूचि रखते थे। अकबर संगीत प्रेमी था उसके दरबार में तानसेन जैसे संगीत सम्राट थे। इसी काल में बेंजू बावरा और रामदास जैसे संगीतज्ञ भी हुए हैं। शाहजहॉ स्वयं एक अच्छा गायक और संगीत प्रेमी था। उसके दरबार में जनार्द्रभट्ट और जगन्नाथ जैसे प्रसिद्ध संगीतकार थे।

4. भवन निर्माण (Buildings)

मुगल शासकों ने भवन निर्माण कला में विशेष रूचि ली। बाबर ने कुछ मस्जिदों का निर्माण करवाया। अकबर के समय हुमायूॅ के मकबरे का निर्माण हुआ जो एक सुन्दर इमारत है। इस काल की सबसे सुन्दर इमारत हमें फतेहपुर सीकरी में देखने

को मिलती है। जहॉगीर ने भी इमारतों का निर्माण करवाया और अनेक स्थानों पर सुन्दर बागों को लगवाया। शाहजहॉ का काल वास्तुकला का स्वर्ण युग माना जाता है। इस समय में बनी हुई इमारतों की शान शौकत, सौन्दर्य और बनावट देखने योग्य हैं। इसकी सजावट में सफेद संगमरमर, मूल्यवान रंगीन पत्थरों का प्रयोग किया गया है। उसकी प्रसिद्ध इमारतें ताजमहल, मोती मस्जिद, जामा मस्जिद, दीवाने–ए–आम बहुत प्रसिद्ध है। उसने कश्मीर में सुन्दर बाग लगवाए।

औरंगजेब के समय में कुछ सुन्दर मस्जिदों का निर्माण हुआ। इस काल के राजपूत नरेशों ने भी सुन्दर राजमहलों का निर्माण करवाया। इसमें दतिया, बूंदी, जोधपुर, बीकानेर के राजमहल बहुत प्रसिद्ध हैं। राजा जयसिंह द्वितीय ने अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में जयपुर नगर बसाया। यहॉ का हवा महल बहुत प्रसिद्ध है। इस काल में कुछ मन्दिरों का भी निर्माण हुआ। इनमें वन्दावन में स्थित गोविन्द देव जी का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) मुगल काल का भारतीय संस्कति के किन क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा?

2.4 सारांश (Summary)

मुगल साम्राज्य ने देश के इतिहास में एक नये युग का आरम्भ किया जिसकी स्थापना बाबर ने की ओर इसका पतन औरंगजेब के समय में शुरू हुआ। मुगलकाल का भारत की संस्कति पर गहरा प्रभाव पड़ा तथा साहित्य, कला, संस्कति व भवन निमार्ण के क्षेत्र में काफी विकास हुआ। यही कारण है कि मुगलकाल सांस्कतिक विकास का स्वर्ण युग माना जाता है।

2.5 आदर्श उत्तर

(i) मुगल काल का भारतीय संस्कति पर निम्न क्षेत्रों में प्रभाव पड़ा :–

1. साहित्य
2. कला
3. संगीत
4. भवन निर्माण कला आदि।

2.6 मुख्य शब्द

संस्कतियों का संगम –भिन्न भिन्न संस्कतियों का मेल–मिलाप।

2.7 सन्दर्भ पुस्तकें

Text book for Middle and High Classes prescribed by Haryana Education Deptt.

Social Science text book for middle and High Classes prescribed by NCERT, New Delhi.

इकाई–II
स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास
(History of Freedom Movement)

उद्देश्य

इस अध्याय को अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

– 'राष्ट्रीय चेतना का उदय' की व्याख्या कर सकें।

– 'स्वतन्त्रता आन्दोलन का वर्णन कर सकें।

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 राष्ट्रीय चेतना का उदय

3.3 स्वतन्त्रता प्राप्ति की ओर

3.4 सारांश

3.5 आदर्श उत्तर

3.6 मुख्य शब्द

3.7 सन्दर्भ पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

वर्षों की गुलामी के पश्चात् भारतवर्ष के नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ। कुछ ऐसे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक कारण थे जिन्होंने भारत स्वतंत्रता संघर्ष में योगदान दिया। ऐसे समय में भारतवर्ष के कुछ महान नेताओं ने जन्म लिया जिन्होंने भारत वासियों के मन में जागति उत्पन्न की और अंग्रेजों के अन्याय के विरूद्ध लड़ने की प्रेरणा दी।

3.2 राष्ट्रीय चेतना का उदय (Origin of National Awareness)

1. 1857 का विद्रोह (Revolution of 1857)

1857 का विद्रोह भारत को स्वतंत्र करवाने का पहला संघर्ष था। यह भारत के लगभग सभी प्रांतों में फैल गया, इस विद्रोह में लक्ष्मी बाई, नाना साहिब, तात्यां टोपे, बहादुरशाह तथा अन्य देशभक्तों ने देशभक्ति तथा वीरता दिखाई। कम सैन्य शक्ति तथा असंगठित क्रांति के कारण यह असफल रहा। इसके परिणामस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी को समाप्त करके भारत सीधा ब्रिटिश राज्य के अधीन हो गया।

2. राष्ट्रीय चेतना का जन्म (Birth of National Awareness)

1857 के विद्रोह के कारण भारत में राष्ट्रीय चेतना जागत हुई। समय–समय पर भारत के अनेक धर्म सुधारकों तथा राष्ट्रीय नेताओं ने देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना को उत्पन्न किया। इनमें से राजा राम मोहनराय, श्रीमती एनीबेसेंट, रामकष्ण, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, बालगंगाधर तिलक, विपिन चन्द्रपाल, लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी, पंडित मोतीलाल नेहरू के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन नेताओं ने देश में राष्ट्रीय चेतना का विकास किया।

3. कांग्रेस का 1885 से 1905 तक कार्य (Congress work from 1885 to 1905)

कांग्रेस के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए 1885 से 1905 तक अधिवेशन होते रहे, जिनमें वह अपनी मुख्य मांगे दोहराते रहे और प्रस्ताव पास करते रहे। उन्होंने उदारवादी नीति को अपनाकर बार–बार अंग्रेजों से विनय की। वह अंग्रेज सरकार को प्रार्थना पत्र भेजते, अपीलें करते तथा प्रतिनिधि मंडल भेजते रहे लेकिन अंग्रेजी सरकार कांग्रेस के प्रस्तावों को रद्दी की टोकरी में फैंकती रही और उदारवादियों की इस नीति को राजनैतिक भिक्षा की नीति कहा गया।

4. उग्रवाद या गर्म दल का जन्म (Birth of Terrorism)

जब कांग्रेस की उदारवादी नीति असफल हुई तो उग्रवाद या गर्म दल का जन्म हुआ। अकाल और प्लेग, विदेशों में रहने वाले भारतीय के साथ भेदभाव और अत्याचार लार्ड कर्जन की दमन नीति, जापान की रूस पर विजय और बंगाल का विभाजन, इन्होंने गर्म दल को जन्म दिया। यह गोली और पिस्तौल में विश्वास रखते थे। क्योंकि उनका विचार था कि अंग्रेज केवल प्रस्तावों तथा शांतिपूर्वक आन्दोलन से भारत को आजादी देने वाले नहीं। आतंकवादी दल के प्रमुख नेता श्यामजी कष्ण वर्मा, विनायक राव सावरकर, रास बिहारी बोस, अरविंद घोष आदि महान व्यक्ति थे।

3.3 स्वतन्त्रता प्राप्ति की ओर (Towards Freedom)

1. असहयोग आन्दोलन 1920 (Non-Cooperation Movement)

विदेशों में रहने वाले भारतीयों ने भी असफल प्रयास किये। लेकिन वह सफल न हो पाए। इसी बीच प्रथम विश्व युद्ध हुआ। भारतीयों ने अंग्रेजी सरकार की सहायता की, परन्तु इसका परिणाम अंग्रेजी सरकार का अधिक कठोर हो जाना हुआ, इससे भारतीयों में असंतोष फैल गया। इस समय में जलियांवाला बाग का हत्याकांड और खिलाफत के भंग के विरूद्ध असहयोग आंदोलन महात्मा गांधी ने 1920 ई० में शुरू किया, लोगों ने देशभर में इसका स्वागत किया। इसके परिणामस्वरूप हजारों विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल व कालेज छोड़ दिए। बहुत से लोगों ने सरकारी नौकरियॉ छोड़ दी। सरकार ने दमन की नीति अपनाई और 30 हजार लोगों को कैद कर लिया। महात्मा गांधी की इच्छा के विरूद्ध इस आंदोलन ने हिंसात्मक रूप धारण कर लिया और 1922 में चौरा–चौरी नामक स्थान पर थाने में आग लगा दी, जिससे गांधी जी ने यह आंदोलन बंद कर दिया। सरकार ने गांधी जी को 6 वर्ष के लिए बंदी बना लिया।

2. साईमन कमीशन (Simon Commission)

प्रथम असहयोग आंदोलन के पश्चात् कांग्रेस में फूट पड़ गई। 1922 ई० में सी० आर० दास और मोती लाल नेहरू के नेतत्व में कुछ कांग्रेसियों ने स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। इसका उद्देश्य चुनाव लड़कर विधान परिषदों में प्रवेश करना था। ब्रिटिश सरकार ने एक कमीशन भारत भेजा, इसका सभापति सर साइमन था। कमीशन के सभी सदस्य अंग्रेज थे। भारत के नेताओं ने यह मांग की कि कमीशन के कुछ सदस्य हिंदुस्तानी भी हों। भारतीयों ने इस मांग को पूरा कराने के लिए इस कमीशन के विरूद्ध बड़े भारी प्रदर्शन किए और साइमन वापिस जाओ के नारे लगाए। जगह जगह हड़तालें हुई। लाठियां और गोलियॉ चली। शेरे पंजाब लाला लाजपतराय को भी लाठियां लगी जिससे लाला जी की मत्यु हो गई।

3. नेहरू रिपोर्ट (Nehru Report)

इसके पश्चात् 1929 में नेहरू रिपोर्ट जो मोतीलाल नेहरू तथा तेजबहादुर सप्तु के नेतत्व में एक सर्वदलीय समिति ने तैयार की थी। इसके पश्चात् 1929 में पंडित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का एक वार्षिक अधिवेशन लाहौर में हुआ। इसमें पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया गया और 26 जनवरी 1930 ई० को पूर्ण स्वतंत्रता दिवस भी मनाया गया।

4. गोलमेज कान्फ्रैंस (Round Table Confrence)

1930 में महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया, इसमें डांडी यात्रा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साइमन की सिफारिशों पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 12 नवम्बर 1930 को लंदन में एक गोलमेज कांग्रेस की, जो असफल रही। इसके बाद वायसराय लार्ड–इरविन ने गांधी जी के साथ समझौता किया तथा गांधी जी को रिहा कर दिया। सितम्बर 1931 में लंदन में दूसरी गोलमेज कांग्रेस बुलाई गई, इसमें अकेले महात्मा गांधी जी कांग्रेस की तरफ से शामिल हुए। अन्य दलों के प्रतिनिधि भी वहॉ पहुॅचे थे।

महात्मा गांधी ने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उस मांग को स्वीकार न किया, इस प्रकार यह दूसरी गोलमेज कांग्रेस भी असफल रही। विवश होकर गांधी जी ने फिर सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया। बहुत से लोग तथा नेता जेल में डाल दिए गए।

18 अगस्त 1932 को इंग्लैंड के प्रधानमंत्री ने साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा की। गांधी जी इन दिनों जेल में थे। उन्होंने भूख हड़ताल शुरू कर दी और इस निर्णय का विरोध किया। नवम्बर 1932 ई० में तीसरी गोलमेज कांफ्रैंस हुई। इसमें एक श्वेतपत्र तैयार किया गया। जिसके आधार पर 1935 का एक्ट पास किया गया और इसके साथ भारतीयों का स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए दूसरा विश्व युद्ध शुरू हो गया।

5. भारतीय मंत्रीमंडल (Indian Ministry)

1935 के एक्ट के अनुसार 1937 में चुनाव हुए। इन चुनावों में कांग्रेस की बड़ी भारी विजय हुई। 11 प्रांतों में से 6 प्रांतों में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। परन्तु कांग्रेस ने इन प्रांतों में राजनीतिक अड़चन पैदा करने के लिए मंत्रिमंडल बनाने से इन्कार कर दिया, उनका कहना था कि नये विधान में गर्वनर को इतने अधिक अधिकार दिए गए हैं कि वे मंत्रिमंडल को कुछ करने नहीं देंगें। इस पर भारत के वायसराय ने गांधी जी को विश्वास दिलाया कि गर्वनर अपनी शक्ति का अनुचित प्रयोग नहीं करेंगे।

6. भारत छोड़ों आन्दोलन (Quit India Movement)

3 सितम्बर 1939 ई० को इंग्लैंड तथा जर्मनी में दूसरा विश्व युद्ध छिड़ गया। भारत के वायसराय ने भारतीयों की सलाह किये बिना भारत की ओर से जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। कांग्रेस ने इस बात पर रोष प्रकट किया। संतोषजनक उत्तर न मिलने पर कांग्रेस के सभी मंत्रिमंडलों ने अक्टुबर 1939 में त्याग पत्र दे दिया।

सन् 1940 ई० में गांधी जी ने व्यक्तिगत आंदोलन शुरू किया। यह सत्याग्रह भारत को जबरदस्ती युद्ध में धकेलने के विरूद्ध था। कांग्रेस के सभी महत्वपूर्ण नेता इस आंदोलन में जेल चले गए। नवम्बर 1941 में जापान भी अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध में शामिल हो गया और वहॉ तथा सिंगापुर पर उसका अधिकार हो गया। भारत को भी जापान का बहुत खतरा था। इससे अंग्रेज घबरा उठे। 8 अगस्त 1942 ई० को कांग्रेस ने बम्बई अधिवेशन में भारत छोड़ो आंदोलन का प्रस्ताव पास करा दिया। इस प्रस्ताव में मांग की गई कि अंग्रेज भारत छोड़ जाएं। अंग्रेजी सरकार ने महात्मा गांधी तथा अन्य सभी कांग्रेस नेताओं को जेल में डाल दिया। देश भर में क्रांति की अवस्था पैदा हो गई। हड़तालें तथा प्रदर्शन हुए, रेलवे लाइनें उखाड़ डाली गई। डाकखाने लूटे गये। सरकारी इमारतों को आग की भेंट कर दिया गया। हजारों व्यक्तियों को जेलों में डाल दिया गया। सैंकड़ों को गोली का शिकार बना दिया गया। महिलाओं का अपमान किया गया। अंग्रेजों ने बहुत बर्बरता से काम लिया। परन्तु लोगों का उत्साह कम न हुआ।

7. आजाद हिन्द फौज की स्थापना (Establishment of 'Azad Hind Army')

ऐसे समय में सुभाष चन्द्र बोस ने भारत को अंग्रेजों से स्वतंत्र कराने के लिए आजाद हिन्द फौज का निर्माण किया। उन्हें कलकत्ते में घर पर नजरबंद कर दिया गया। वह वहॉ से भेष बदलकर अफगानिस्तान से होते हुए बर्लिन पहुँचे। 1943 में उन्हें आजाद हिन्द फौज का सुप्रीम कमांडर नियुक्त किया गया। 4 फरवरी 1944 को आजाद हिन्द फौज ने अंग्रेजों पर आक्रमण किया और कई स्थानों पर अधिकार कर लिया, लेकिन अंग्रेजों ने आजाद हिन्द फौज के कई सैनिक तथा अफसर बन्दी बना लिये।

8. यूनियन जैक के स्थान पर कौमी तिरंगा ('Kaumi' Flag in place of 'Union Jack')

आजाद हिन्द के सैनिकों पर मुकदमा चलाकर उन्हें मत्यु दंड दिया गया, लेकिन जनता में अशान्ति फैल गई। अंत में अंग्रेजों को उन्हें रिहा करना पड़ा। 1946 ई० में इंग्लैंड के आम चुनाव में मजदूर दल को बहुमत प्राप्त हुआ। एटली प्रधानमंत्री चुने गये। उन्होंने तीन सदस्यों का मिशन भारत भेजा, जिसने अंतरिम सरकार की पेशकश की।

9. भारतीय स्वतंत्रता एक्ट और राष्ट्रीय झंडा (Indian Independece Act and National Flag)

जुलाई 1947 में भारतीय स्वतंत्रता एक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार 15 अगस्त 1947 को हिन्दुस्तान को दो स्वतंत्र राज्यों भारत और पाकिस्तान में बांट दिया गया। इस प्रकार भारत स्वतंत्र हुआ और यूनियन जैक उतार कर भारत

का राष्ट्रीय झण्डा लहराया गया। 26 जनवरी 1950 को भारत ने अपना नया संविधान लागू किया।

10. भारतीय गणतंत्र का जन्म (Birth of Indian Republic)

15 अगस्त 1947 को भारत ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारतवासियों को अपने देश के शासन का दायित्व भी सम्भालना पड़ा। ब्रिटिश संसद द्वारा बनाये गये अधिनियम न तो भारतवासियों की आवश्यकताओं के अनुरूप थे न ही आकांक्षाओं को पूरा कर सकते थे और न ही उनकी स्वतंत्र सत्ता के अनुकूल थे। अतः यह आवश्यक था कि भारत को सुयोग्य शासन–प्रणाली प्रदान करने के लिये उसका एक उपयोगी संविधान बनाया जाए।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अनुसार संविधान सभा पर लगे सभी बंधन समाप्त कर दिए गए और इसे अपनी इच्छानुसार संविधान बनाने का अधिकार मिल गया। संविधान सभा के कुल 11 अधिवेशन हुए।

संविधान के मसौदे पर 114 दिन तक विचार किया गया। संविधान सभा को अपना कार्य पूरा करने में 2 वर्ष 11 महीने 18 दिन लगे। अन्ततः बहुत बारीकी से सोच–विचार करने के पश्चात् इस सभा ने 26 नवम्बर 1949 को भारत के संविधान को अन्तिम रूप दिया, परन्तु इसे उसी दिन लागू नहीं किया गया। 26 जनवरी 1930 को भारतीय नेताओं द्वारा पूर्व स्वतंत्रता की मांग की गई थी। इस दिन की पवित्र स्मति में 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू करके भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रीय गणराज्य घोषित किया गया।

भारत को गणतंत्र घोषित करने के पीछे उद्देश्य था, भारत की विभिन्नता में एकता को बनाये रखना। भारत में भिन्न–भिन्न राज्यों में रहने वाले व्यक्ति अलग–अलग विचारधारा, जाति, धर्म के हैं। देश छोटे–छोटे राज्यों में अंग्रेजी शासन से पहले बंटा हुआ था, उन्हें एक झंडे के नीचे इकठ्ठा करने के लिये यह आवश्यक था कि भारत को गणराज्य बनाया जाए।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) स्वतन्त्रता संग्राम की नीव कब पड़ी?

(ii) स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास लिखें?

3.4 सारांश (Summary)

स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास लगभग १०० वर्षों का है। वर्षों की गुलामी के पश्चात नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ जिससे 1857 ई० के विद्रोह से आरम्भ होकर, असहयोग आन्दोलन (1920), साईमन कमीशन, गोलमेज कान्फ्रैन्स, भारत छोड़ो आन्दोलन से आगे बढा। नेता जी ने आजाद हिन्द फौज की स्थापना की। यूनियन जैक के स्थान पर कौमी तिरंगा लहराया गया। जुलाई, 1947 में भारतीय स्वतन्त्रता एक्ट पास हुआ जिसके अनुसार 15 अगस्त 1947 ई० को हिन्दुस्तान को दो स्वतन्त्र राज्यों भारत और पाकिस्तान में बांट दिया गया।

3.5 आदर्श उत्तर

(i) स्वतन्त्रता संग्राम की नींव 1857 के विद्रोह से पड़ी।

(ii) इस उत्तर के लिये छात्र इसी अध्याय का भाग 3.2 व 3.3 देखे।

3.6 मुख्य शब्द

साम्प्रदायिक – विभिन्न धर्मों का समूह।

गणराज्य – कई प्रदेशों को मिलाकर बनाया गया राज्य।

3.7 संदर्भ पुस्तकें

A Text Book of Social Science for Class IX, NCERT, New Delhi.

A Text Book of Social Science for Class X, NCERT, New Delhi.

इकाई-II

लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता तथा समाजवाद की धारणा

(Concept of Democracy, Secularism and Socialism)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि –

– लोकतन्त्र की धारणा का वर्णन कर सकें।

– धर्मनिरपेक्षता की धारणा का वर्णन कर सकें।

– समाजवाद की धारणा का वर्णन कर सकें।

सरंचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 लोकतन्त्र

4.3 धर्मनिरपेक्षता

4.4 समाजवाद

4.5 सारांश

4.6 आदर्श उत्तर

4.7 मुख्य शब्द

4.8 सन्दर्भ पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में आपने स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास के बारे में पड़ा। शासन को चलाने के लिये अनेक प्रणालियाँ है लेकिन आज के युग में लोकतन्त्र प्रणाली को उत्तम माना गया है। इस अध्याय में हम लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता तथा समाजवाद के बारे में पढ़ेगें।

4.2 लोकतन्त्र (Democracy)

संसार में शासन चलाने की जो अनेक प्रणालियॉ प्रचलित हैं, उनमें से लोकतन्त्र को जनहित की दष्टि से सबसे श्रेष्ठ प्रणाली माना गया है। इसे जनतंत्र और गणतंत्र भी कहा जाता है। इस शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं इसकी परिभाषा के अनुसार यह मानी जाती है कि इसमें लोक या जनता द्वारा चुनी गई सरकार द्वारा जनता के हित–साधन के लिए शासनतंत्र को चलाया जाता है। जनता यदि यह अनुभव करती है कि उसके चुने हुए प्रतिनिधि भ्रष्ट या अयोग्य हैं, शासन व्यवस्था को ठींक ढंग से चला पाने में समर्थ नहीं हो पा रहे, तो पांच वर्षो के बाद मतदान करके उसे हटा सकती है। यदि वह अच्छा तथा जनता की भलाई का काम करती है तो वह अगले पांच वर्षो तक के लिये दुबारा चुनी जा सकती है। लोकतन्त्र में प्रत्येक बालिग मतदाता को मत देकर अपना प्रतिनिधि चुनने का संवैधानिक अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति चुनाव लड़ने का अधिकार भी रखता है। यह अधिकार वह किसी दल विशेष का सदस्य होने के कारण भी पाता है और स्वतंत्र या निर्दलीय रूप से भी रखता है।

सन् 1947 में 15 अगस्त के दिन जब भारत स्वतन्त्र हुआ था तो उस समय राजतंत्र के अन्तर्गत विदेशी सत्ता का शासन चल रहा था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लोकतन्त्री व्यवस्था को सबसे अच्छा और जनहितकारी मानकर ही यहां इस शासन व्यवस्था को लागू कर भारत को गणराज्य घोषित किया गया। लोकतंत्र को एक उत्कष्ट एवं जनोपयोगी व्यवस्था मानकर अक्सर इसकी प्रशंसा की जाती है। लोकतन्त्र में लोकहित को सामने रखकर परिवर्तन का चक्कर अबाध एवं निरन्तर चलता रहता है।

लोकतंत्र में अपनी कुर्सी बचाए रखने की इच्छा और लोकमत के दबाव के कारण लोकहित के काफी कार्य किए जाते हैं। उनसे देश–जाति की प्रगति और विकास भी हुआ ही करता है नेतवर्ग और नौकरशाही की कुछ सक्रियता भी अवश्य बनी रहती है। किसी सीमा तक जनता की सुनवाई भी हुआ करती है। फिर प्रचार–प्रसार–मिडिया भी जनभावनाओं को शासक वर्ग के सामने उजागर करते रहकर उसकी नींद हराम किये रहता है, इस कारण भी शासक के सामने जनहित के कार्य करते रहने की बाध्यता बनी रहती है। इसके विपरीत तानाशाही में तानाशाह और उसका गिरोह अपनी ही सुरक्षा एवं स्थायित्व के लिए अधिक चिन्तित रहा करता है, अपनी महत्त्वाकांक्षाएं एवं सुख–विलास की भावनाएं मुख्य हो जाया करती हैं। उस पर किसी तरह का कोई दबाव भी नहीं रहा करता, इस कारण लोकहित सर्वथा उपेक्षित होकर रह जाया करता है।

लोकतन्त्र में दो बुनियादी बातों पर ध्यान की आवश्यकता है। लोगों में अनुशासन और राष्ट्रीय चरित्र, नैतिक आधार आदि का रहना लोकतन्त्र में परम आवश्यक है। स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों को नियम, अनुशासन में रहना भी जरूरी है तभी लोकतन्त्र सही चल सकता है। लोकतन्त्र असफल रहता है यदि लोकतन्त्र में जनहित की भावनाओं का आदर न किया जाए क्योंकि इसके बिना जितनी भी लोकहितकारी योजनाएं बनेंगी उसका वास्तविक लाभ आम वर्ग के आदमी को नहीं मिलेगा अपितु सरकारी तंत्र तथा भ्रष्ट व्यक्ति डकार जायेंगे या इस कार्य से सम्बन्धित ठेकेदार, इन्जीनीयर और उन्हें सप्लाई करने वाले उच्च व्यापारी वर्ग प्राप्त करेंगे। लोकतन्त्र की सफलता के लिए जनता में राष्ट्रीय चरित्र जगाया और बनाया जाना चाहिए। उनमें नैतिकता जागत करनी चाहिए जिससे अनुशासित, नैतिक, राष्ट्रीय चरित्र से सम्पन्न जो पीढ़ी तैयार होगी, वह लोकतन्त्र की स्थापना करने में कुशल होगी। चुनाव लोकतन्त्र शासन–व्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। अतः लोकतन्त्र लोगों का, लोगों के द्वारा, लोगों के लिए शासन है। संसार के अधिकांश देशों में आज जो राज्य–प्रणालियां प्रचलित हैं, उनमें से जनतन्त्र की ही प्रमुखता है। जनतन्त्र में कोई भी व्यक्ति न तो अपनी इच्छा से नेता बन जाया करता है और न प्रशासक ही। उसे निर्वाचन की प्रक्रिया में से गुजर कर ही शासन की कुर्सी तक पहुँचना पड़ता है। अतः उसके लिए सभी प्रकार का, सभी स्तरों तक और सभी दष्टियों से जनता का विश्वास प्राप्त करना आवश्यक हो जाया करता है। जनतन्त्र में सभी को समान समझा जाता है। सभी को अपने निजी विचार रखने, उन्हें अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। प्रत्येक व्यक्ति बिना जाति, सम्प्रदाय आदि के भेदभाव के किसी भी प्रकार का धन्धा अपने लाभ के लिए कर सकता है। उसे धन्धे से होने वाली आय का कुछ भाग उसे सरकार को करों के रूप में देना पड़ता है। जनतन्त्र में सरकार का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह आन्तरिक एवं बाह्य सभी दष्टियों से जनता की सुरक्षा की व्यवस्था करे। उसके लिए रोटी, कपड़ा, मकान तथा अन्य सब प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सन्नद्ध रहे। जो सरकार ऐसा नहीं कर पाती, उसे गद्दी पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं होता। सभी को प्रगति और विकास के समान अवसर एवं साधन उपलब्ध होने की बात भी जनतन्त्र में कही जाती हैं। इस प्रकार बाह्य एवं सैद्धान्तिक रूप में देखा जाए तो निश्चय ही जनतन्त्र एक बड़ा ही आकर्षक राजनीतिकवाद है। इसका महत्व अपने मूल और सहज स्वाभाविक रूप में निश्चय ही बहुत अधिक है।

इसके विपरीत जब हम जनतन्त्र की व्यावहारिक स्थितियों पर विचार करते हैं तो जनतन्त्र से बढ़कर खोखला कोई अन्य राजनीतिकवाद एवं सिद्धान्त संसार में दिखाई नहीं देता। सबसे बड़ी और दुःखद स्थिति तो यह है कि जनतन्त्र में छोटे–बड़े प्रत्येक कार्य की प्रक्रिया इतनी लम्बी हुआ करती है कि कई बार तो उसके सम्पादित होने तक कार्य का वास्तविक महत्व या फिर उससे सम्बद्ध व्यक्ति अथवा वर्ग ही समाप्त हो चुका होता है। दूसरे यहां जनता का स्वामी एक व्यक्ति हुआ करता है। ये दोनों ही कारण भ्रष्टाचार और कुप्रशासन को जन्म दिया करते हैं। आज भारत जैसे जनतन्त्री देश भ्रष्टाचार और कुशासन को जन्म दिया करते हैं। उन सबका मूल कारण इस प्रकार की व्यवस्थाएं ही हैं। फिर इस प्रकार की प्रक्रियाओं को मिटाने का हमारे पास कोई उपाय नहीं है। जनतन्त्र में यूनियनवाद का विस्तार इस सीमा तक हो जाता है कि किसी उचित बात के लिए भी कोई किसी को टोक नहीं सकता। टोकने वाले का काम तो होता ही नहीं, उल्टे अनावश्यक रूप से यूनियनवादिता समूचे प्रशासन को ठप्प कर देने की धमकी हमेशा सिर पर लटकाए रखती है। इस प्रकार जनतन्त्र मात्र एक खिलवाड़ बनकर

रह जाता है। तभी तो एक समय ऐसा भी आया कि जब जार्ज वर्नार्ड शॉ जैसे जनतन्त्री व्यवस्था के कट्टर समर्थक भी उसके कट्टर विरोधी एवं आलोचक बनकर रह गए। हम अपने देश में भी चारों तरफ जनतन्त्र और उसकी समस्त व्यवस्थाओं की भद्द उड़ती हुई स्पष्ट देख रहे हैं। कहने को जनतन्त्र की धूम है पर जन की पूछ कहीं नही हैं।

4.3 धर्म-निरपेक्षता (Secularism)

प्राचीन काल में संसार भर में मानव पर धर्म का अबाध अधिकार था। जीवन का कोई भी कार्य ऐसा नहीं था जिसमें धर्म का बोलबाला न हो। प्रत्येक देश और उसकी राजनीति पर धर्म का पूरा पूरा प्रभाव था। संसार में अनेक धर्म राज्य थे। यूरोप में रोम का पोप सबसे बड़ा धर्माधिकारी होता था। वह अपनी इच्छा से जिस मनुष्य को चाहता, सिंहासन पर बैठा देता अथवा गद्दी से हटा देता था। यूरोप में कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बियों में बहुत समय तक भीषण संघर्ष चलता रहा। इसी प्रकार ईसाई धर्म और मुसलमान धर्म वालों में कई शताब्दियों तक भंयकर युद्ध चलते रहे। प्रजा के अधिकांश निवासी या तो राजा के प्रति भक्ति–भाव के कारण राजधर्म स्वीकार कर लेते थे अथवा डरवश उनको यह धर्म स्वीकार करने को विवश किया जाता था। इसमें हिचकिचाहट करने पर अथवा स्वतंत्र विचार प्रकट करने वाले को राजद्रोही घोषित करके अनेक प्रकार की भीषण यन्त्रणाऐं दी जाती थी। इस प्रकार जब तक विश्व में राजाओं सामन्तों, पोप–पुजारियों और धर्म–गुरूओं का प्रभुत्व रहा, तब तक राजनीति पर धर्म का अधिपत्य बना रहा। धर्म की सहायता से राज्य की सीमा–वद्धि होती रही और राज्य की सहायता से धर्म का प्रचार भी होता रहा।

''सबै दिन जात न एक समान'' युग बदला, चारों और परिवर्तन की पुकार सुनाई पड़ने लगी। व्यक्तिगत, निरंकुशता के स्थान पर समाज तथा समष्टिवाद की गूँज उठने लगी। भीषण क्रान्तियों ने अपनी भीषण ज्वाला में निरंकुशवाद, सामान्तवाद, कुलीनतन्त्र तथा धर्मतन्त्र को आत्मसात् कर लिया। सर्वत्र प्रजातन्त्र और लोकतन्त्र की भावना सबके हदयों पर शासन करने लगी। राजनीति और धर्म का सम्बन्ध धीरे धीरे अलग होने लगा।

धर्म–निरपेक्षता एक नारा नहीं, कुछ मूल्यों का नाम है, एक जीवन–पद्धति का नाम है। वर्तमान साम्प्रदायिक दंगों की प्रतिक्रिया नहीं, ऐतिहासिक एवं शाश्वत प्रक्रिया है। सर्वधर्म समभाव का पर्याय है, जिसमें सभी धर्मों की समानता के प्रति समझ और सहिष्णुता का दष्टिकोण है।

विभिन्न धर्मों में पारस्परिक सहिष्णुता धर्म–निरपेक्षता है। धार्मिक–उन्माद को रोकने का नाम धर्म–निरपेक्षता है। यह कार्य अनादिकाल से चल रहा है और यह यज्ञ अनन्तकाल तक चलता रहेगा। धर्म–निरपेक्षता का नारा भारतीय संस्कति में विद्यमान मन्त्र है। अथर्ववेद के पथ्वी सूक्त में कहा है – ''जंन विभ्रति बहुधा विवाचसम् । नानाधर्माणं पथिवी यथौकसम्।'' (यह पथ्वी जो विभिन्न मतों और भाषाओं के लोगों को आश्रय देती है, हम सबका कल्याण करे)। इसमें आगे कहा गया है कि हे मॉ पथ्वी! हमें अपने पुत्रों के रूप में ऐसी शक्ति दो कि हम आपस में सद्भावनापूर्वक बातचीत करें। ऋग्वेद को 'एकैव मानुषी जातिः'(सभी प्राणी एक ही जाति के हैं) पर बल देता है।

धर्म–निरपेक्षता कोई नकारात्मक अवधारणा नहीं, सकारात्मक अवधारणा है। इसका अर्थ धर्म–विरोधी या अधार्मिक होना भी नहीं। सीधे–सादे रूप में इसका अर्थ है, सभी धर्मों, आस्थाओं और विश्वासों के प्रति सम्मान तथा नास्तिकवाद सहित किसी भी धर्म को चुनने और पालन करने के अधिकार का प्रयोग। इस अधिकार का प्रयोग इस प्रकार होना चाहिए कि वह दूसरे व्यक्ति द्वारा इस अधिकार के प्रयोग के रास्ते में आड़े न आऐं। धर्म पालन सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अनुरूप हों।

धर्म निरपेक्ष राज्य भले ही स्वयं को किसी विशेष धर्म के साथ न जोड़ें, किन्तु उसे वह वातावरण उपलब्ध कराना होगा, जिसमें सभी नागरिक इच्छानुकूल उपासना पद्धति के अधिकार का प्रयोग कर सकें।

लोकतन्त्र में धर्मतन्त्र का कोई मूल्य नहीं। लोकतान्त्रिक और धर्मातांत्रिक राज्य साथ साथ नहीं चल सकते। भारतीय संविधान ने विशेष रूप से धर्म–निरपेक्षता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को व्यक्ति तथा धर्म, एक धर्म तथा दूसरे धर्म, धर्म एवं राज्य तथा राज्य और व्यक्ति के बीच वांछनीय सम्बन्धों की सुस्पष्ट समझ के आधार पर मुखरित किया है। अनुच्छेद ''51 अ'' इंगित करता है कि भारत के हर नागरिक का कर्त्तव्य होगा कि वह भारत के सभी लोगों में धार्मिक, भाषाई, क्षेत्रीय या प्रभागीय

विविधताओं से आगे जाकर सामंजस्य तथा भाई चारे की भावना को प्रोत्साहित करे, महिलाओं की गरिमा के विरूद्ध हर रिवाज को छोड़ दे, हमारी सामाजिक संस्कति की समद्ध विरासत की कद्र और रक्षा करे, वैज्ञानिक मिजाज, मानवतावाद तथा अन्वेषण एवं सुधार की भावना का विकास करे। जनवरी 1977 में भारतीय संविधान के प्राक्कथन को संशोधित कर उसमें भारत को संप्रभुता सम्पन्न समाजवादी धर्म–निरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणराज्य घोषित किया गया। इस प्रकार मूल पाठ में 'समाजवादी' तथा 'धर्म–निरपेक्ष' शब्द जोड़े गए।

भारत एक विशाल राष्ट्र है। यहॉ धर्म की विविधता और उपासना–पद्धतियों की विभिन्नता है। भाषा और वेश–भूषा की अनेकता है, जीवन–पद्धति और जीवन–स्तर की बहुरूपता है। अतः यहॉ धर्म–निरपेक्षता ही सुख–शान्ति और समद्धि का मूल है इसके लिए आवश्यकता है भारतीकरण की। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, जन जन के हदय में भारतीयता का साक्षात्कार और उसके साथ स्वयं को एकाकार करना, यही आज की आवश्यकता है। इस एकता को बलशाली बनाने का नाम है भारतीयकरण। यही धर्म–निरपेक्षता की रीढ़ की हड्डी है।

धर्म–निरपेक्षता का पाठ भारत के शिशु को प्राथमिक शाला से आरम्भ करना होगा। शिक्षा में नैतिकता का विषय अनिवार्य करना होगा। सब धर्मों के समान सूत्रों सभी धर्म–गुरूओं की आप्तवाणी तथा एकेश्वरवाद के सिद्धांतों को नैतिकता के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत लाना होगा तभी भारत का युवक सच्चे अर्थों में धर्म–निरपेक्ष होगा, सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु होगा।

भूतपूर्व राष्ट्रपति शंकार दयाल शर्मा जी के शब्दों में – भारतीय स्वभाव में धर्म–निरपेक्षता एक ऐसा तत्व है, जिसे सभी नागरिकों को अपने सभी कार्यो से परिपुष्ट करना चाहिए। हमारी राष्ट्रीय राजनीति का यह तथ्य सिर्फ हमारे राष्ट्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें विश्व के सभी लोगों और देशों के लिए एक संदेश निहित है, जो मानवता के भविष्य का पथ प्रशस्त करता है।''

अतएव धर्म–निरपेक्षता गतिशीलता और विकास का द्योतक है।

4.4 समाजवाद (Socialism)

समाजवाद एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व, नियन्त्रण तथा नियमन स्वयं सरकार का या सरकारी एजेंसियों का होता है। समाजवाद के विषय में प्रो० डब्बलू०एच० लुक्स के अनुसार, ''समाजवाद वह आन्दोलन है जिसका उद्देश्य सभी प्रकार की प्रकतिकत एवम् मनुष्यकत उत्पादित वस्तुओं का जो कि बड़े पैमाने पर उत्पादन के प्रयोग की जाती हैं, स्वामित्व एवम् प्रबन्ध व्यक्तियों के स्थान पर समस्त समाज में निहित करना होता है, जिससे बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय का इस प्रकार समान वितरण हो सके कि व्यक्ति की आर्थिक प्रेरणा या व्यवसाय तथा उपयोग सम्बन्धी चुनावों की स्वतन्त्रता में कोई विशेष बाधा न हो।''

इसी प्रकार प्रो० एच०डी० डिकिनसन ने समाजवाद के विषय में लिखा है कि ''समाजवाद'' समाज का एक ऐसा आर्थिक संगठन है जिसमें उत्पति के भौतिक साधनों पर समस्त सरकार का स्वामित्व होता है तथा उसका संचालन एक सामान्य योजना के अन्तर्गत ऐसी संस्था के द्वारा किया जाता है जो समाज का प्रतिनिधित्व करती है तथा समस्त समाज के प्रति उत्तरदायी होता है। समाज के सभी सदस्य समान अधिकारों के आधार पर ऐसे समाजीकत आयोजित उत्पादन के लाभों के अधिकारी होते हैं।

समाजवाद की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं :–

1. समाजवाद में उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व नियमन सरकार का होता है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर सरकार का नियन्त्रण होता है। निजी उद्यम नगण्य होते हैं।
2. समाजवाद में उत्पादन का उद्देश्य लाभ न होकर अधिकतम् जन कल्याण होता है। सरकार उन्हीं वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन करती है जिनसे उपभोक्ताओं के कम कीमत पर न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकें।
3. समाजवाद में कीमत तन्त्र का कोई महत्व नहीं होता। इस आर्थिक प्रणाली में सभी महत्वपूर्ण निर्णय सरकार के द्वारा

लिये जाते हैं। इस उद्देश्य के लिये सरकार एक योजना आयोग का गठन करती है। यही आयोग देश के लिये आर्थिक योजनाएं तैयार करता है तथा देश की आर्थिक क्रियाओं का संचालन करता है।

4. समाजवाद में आय का वितरण लगभग समान होता है। आय की असमानता न्यूनतम् होती हैं। राष्ट्रीय आय का वितरण उत्पादन के सभी साधनों में उनके योगदान के अनुपात में समानता के आधार पर होता हैं। समाजवाद, "अवसर की समानता" तथा "समान कार्य के लिये समान वेतन की गारंटी देता हैं।"

5. समाजवाद में प्रतियोगिता का अभाव होता है। इसका कारण यह है कि उत्पादन के सभी साधनों पर सरकार का स्वामित्व, नियन्त्रण तथा नियमन होता है। सारी औद्योगिक संस्थाओं का संचालन सरकार द्वारा होता है। सरकार द्वारा संचालित विभिन्न औद्योगिक इकाईयों में प्रतिस्पर्धा नहीं हो पाती। हाल ही में कुछ देशों की सरकारों ने अपनी औद्योगिक इकाईयों को अधिक कुशल बनाने के लिये उनके बीच में प्रतियोगिता को आरम्भ किया है।

6. समाजवाद एक वर्ग रहित समाज है। यहाँ पर समाज दो वर्गो में नहीं बांटा होता। इसके अतिरिक्त यहाँ पर निजी सम्पति का कोई अधिकार नहीं होता अतः यहाँ पर किसी प्रकार का शोषण नही होता।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) लोकतन्त्र की क्या धारणा हैं?

(ii) धर्मनिरपेक्षता से आप क्या समझते हैं?

(iii) समाजवाद की प्रमुख विशेषतायें क्या हैं?

4.5 सारांश (Summary)

लोकतन्त्र– जनता का जनता द्वारा, जनता के लिए शासन हैं जिससे देश–जाति की प्रगति और विकास होता हैं। लोकतन्त्र में दो बुनियादी बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। एक जन में अनुशासन और दूसरा राष्ट्रीय चरित्र।

धार्मिक उन्माद को रोकने का नाम धर्म–निरपेक्षता है। विभिन्न धर्मों में पारस्परिक सहिष्णुता धर्म–निरपेक्षता है। यह कोई नारा नहीं, कुछ मूल्यों का नाम है। यह एक जीवन पद्धति है।

समाजवाद वह आन्दोलन है जिसका उद्देश्य सामाजिक हित के लिये है। इसे समाज का एक ऐसा अर्थिक संगठन कहा जा सकता है, जिसमें उत्पति के भौतिक साधनों पर समस्त सरकार का स्वामित्व हो और संचालन समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था के हाथ में हो।

4.6 आदर्श उत्तर

(i) लोकतन्त्र में सभी व्यक्तियों को समान अधिकार होते हैं।

(ii) सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता धर्म निरपेक्षता कहलाता है।

(iii) इस प्रश्न के उत्तर के लिए छात्र 4.4 भाग को देखें।

4.7 मुख्य शब्द

लोकतन्त्र – लोगों का, लोगों द्वारा, लोगों के लिये शासन अर्थात् लोक या जनता द्वारा चुनी गई सरकार द्वारा जनता के हित–साधन के लिए चलाया गया शासन।

धर्मनिरपेक्षता – विभिन्न धर्मों में पारस्परिक सहिष्णुता अर्थात् सभी धर्मों, आस्थाओं, विश्वासों के प्रति सम्मान। पारस्परिक सहिष्णुता

4.8 सन्दर्भ पुस्तकें

Social Science Syllabus for Middle and High classes, by N.C.E.R.T, New Delhi.

इकाई–II

भारतीय संविधान-प्रस्तावना, मुख्य विशेषताएं व मौलिक कर्त्तव्य

(Constitution, Preamble, Salient features of Indian Constitution, Fundamental Duties)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि –

– भारतीय संविधान की प्रस्तावना का वर्णन कर सकें।

– संविधान की विशेषताओं की व्याख्या कर सकें।

– मौलिक कर्त्तव्यों की सूची बना सकें।

सरंचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारतीय संविधान की प्रस्तावना

5.3 संविधान की विशेषताएं

5.4 मौलिक कर्त्तव्य

5.5 सारांश

5.6 आदर्श उत्तर

5.7 मुख्य शब्द

5.8 सन्दर्भ पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

संविधान उन नियमों के समूह को कहते है जिनके अनुसार किसी देश का शासन चलाया जाता है। किसी भी देश का संविधान बनाते समय उस देश की आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखना होता हैं अतः प्रत्येक देश का संविधान अपने अन्दर कुछ विशेषताए लिए होता है। 26 जनवरी 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ था।

5.2 भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble of Indian Constitution)

भारतीय संविधान का आरम्भ प्रस्तावना से होता है। यह 'प्रस्तावना' केवल औपचारिक रुप से नहीं रखी गई, बल्कि यह इसका अनिवार्य अंग है। इसमें भारतीय संविधान की आत्मा निहित हैं। जिस प्रकार प्रातःकाल से दिन का अनुमान लगाया जा सकता है उसी प्रकार प्रस्तावना से भारतीय संविधान की मूलभूत धारणा स्पष्ट हो जाती है। यह प्रस्तावना इस प्रकार हैः–

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता प्राप्त कराने तथा इन सबमें व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बधुंता को बढ़ाने के लिए दढ़ संकल्प होकर अपनी इस विधान सभा मे आज दिनांक 26 नवम्बर 1949 को इस संविधान को अंगीकत, एवं तथा आत्मार्पित करते हैं।"

भारतीय संविधान की प्रस्तावना का विश्लेषण करने पर हमारे सामने निम्नलिखित चार बाते स्पष्ट होती हैंः–

1. संविधान शक्ति का स्त्रोत है।
2. राज्य का स्वरुप संप्रभुता सम्पन्न, धर्मनिरपेक्ष तथा समाजवादी होगा।
3. भारत लोकतन्त्र देश होगा।
4. यह गणराज्य घोषित किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तावना संविधान की कुंजी है, क्योंकि यह उसकी मूलभूत धारणा को व्यक्त करती है। यह संविधान के उद्देश्यों को स्पष्ट करती है तथा राज्य के स्वरुप की जानकारी देती है। यह संविधान की व्याख्या है। न्यायधीशों का मार्गदर्शन करती है। इससे हमारे राज्य तथा समाज की झलक मिलती हैं। यह प्रस्तावना ऐसे राज्य निर्माण की प्ररेणा देती है, जिसमें सबको समता, स्वतन्त्रता और न्याय प्राप्त हो, जिसमें सभी नागरिकों को भ्रातभाव की भावना में बांधकर अनेकता में एकता के स्वप्न को साकार करते हुए देश की अखण्डता को सुरक्षित रखें और जिसकी मूल शक्ति जनता जनार्दन में निहित है। 'प्रस्तावना' महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वह संविधान की आत्मा है।

5.3 संविधान की विशेषताएं (Characteristics of the Constitution)

1. विस्तत संविधान (Broad Constitution)

भारत का संविधान विशाल एवं व्यापक लेख है। यह संसार के संविधानों में सबसे विस्तत है। इसमें 395 अनुच्छेद हैं जिन्हें 22 भागों में बांटा गया हैं, इसमें अनुसूचियां भी है।

2. निर्मित संविधान (Formed Constitution)

भारत का संविधान एक निर्मित संविधान है इसे संविधान सभा ने काफी सोच विचार के पश्चात् तैयार किया था। यह 26 नवम्बर 1949 को बनकर तैयार हुआ। यह ब्रिटेन के संविधान के समान एक विकसित संविधान नहीं है।

3. लिखित संविधान (Written Constitution)

भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है। हमारी संविधान सभा ने काफी वाद विवाद के पश्चात् हमारे संविधान का प्रलेख तैयार किया था। भारतीय संविधान में शासन सम्बन्धी सभी बातें स्पष्ट रुप से लिखी गई है। नागरिकों के अधिकार भी लिखित हैं।

4. सम्पपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य (Self empowered State)

संविधान की प्रस्तावना में भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य कहा गया है। सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है जो अपना शासन प्रबंध करने में पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता है। किसी आंतरिक या बाहरी शक्ति के अधीन नहीं होता और अपनी इच्छा के अनुसार सभी निर्णय ले सकता हैं।

5. समाजवादी राज्य (Socialistic State)

1976 में 42 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में समाजवादी शब्द शामिल किया गया है। समाजवादी राज्य से तात्पर्य है कि राज्य किसी विशेष वर्ग की भलाई के लिए नही, बल्कि सारे समाज की भलाई के लिए कार्य करेगा। यह प्रयत्न किया जायेगा कि देश के विकास का फल कुछ लोगों को प्राप्त न होकर सभी लोगों को मिल सकें।

6. धर्म-निरपेक्ष राज्य (Secular State)

42 वें संशोधन द्वारा भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्ष शब्द जोड़ा गया है। वैसे तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही भारत में धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त को व्यवहार में लाया जा रहा हैं। संविधान में इस सम्बन्ध में कई व्यवस्थाएं शामिल की गई थी पर 42 वें संशोधन द्वारा इसे स्पष्ट और सुदढ़ बनाया गया है।

धर्म निरपेक्ष होने के नाते भार का अपना कोई राजधर्म नहीं है राज्य की दष्टि में सभी समान हैं। यहाँ सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त है।

7. लोकतंत्रीय राज्य (Democratic State)

संविधान के अनुसार भारत को लोकतंत्रीय राज्य घोषित किया गया है। किसी भी लोकतन्त्रीय राज्य की सभी विशेषताएं भारत में विद्यमान हैं। यहाँ शासन की अन्तिम शक्ति जनता के पास है। व्यस्क मताधिकार के द्वारा लोग अपने प्रतिनिधि चुनते हैं।

8. गणराज्य (Republic Day)

भारत लोकतन्त्रीय राज्य के साथ साथ गणतंत्रीय भी है। मिस्टर मैड़ीसन के अनुसार–गणतंत्र एक ऐसी सरकार है, जिसकी शक्तियों का स्रोत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से जनता का महान समूह है। वास्तव में गणराज्य वह राज्य होता है जिसके मुखिया का पद पैतक नहीं होता बल्कि राज्य का मुखिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से जनता द्वारा चुना जाता है।

9. कठोर एवं लचीले संविधान का मिश्रण (Mixture of Rigid and Flexible Constitution)

संविधान प्रणाली के आधार पर संविधान दो प्रकार के माने जाते हैं :–

1. कठोर 2. लचीला

कठोर संविधान वह संविधान है जिसमें कानून साधारण कानून के समान विधानमण्डल द्वारा न बदला जा सके, उसे कठोर संविधान कहते है। ऐसे संविधान को बदलते के लिए विशेष प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। अमेरिका का संविधान कठोर है।

जिस देश में साधारण कानून और संवैधानिक कानून में अन्तर नही होता अर्थात् जिस प्रकार विधानमण्डल साधारण कानून को साधारण बहुमत से बनाते व बदलते हैं, उसी प्रकार वे संविधान को भी बदल देते हैं। ऐसे देशों का कानून लचीला होता हैं।

10. संसदीय सरकार (Parliamentary Government)

भारत में ब्रिटेन के समान संसदीय शासन को अपनाया गया है। यहाँ का राष्ट्रपति संवैधानिक मुखिया है। वास्तविक शक्ति का प्रयोग प्रधानमन्त्री करता है। कार्यपालिका के सदस्य विधान पालिका में से लिए जाते हैं। वे अपने कार्यो के लिए संसद के आगे उत्तरदायी होते है।

11. संघात्मक सरकार (Federal Government)

भारत का संविधान संघीय सरकार की व्यवस्था करता है। भारत का संविधान सरकार की शक्ति का स्त्रोत है। भारत एक ओर केन्द्रीय सरकार है और दूसरी ओर राज्य सरकार। संविधान द्वारा दोनों अर्थात् केन्द्र व राज्य की शक्तियों का बंटवारा किया गया है। राष्ट्रीय महत्व के 97 विषय केन्द्र सरकार को दिए गये है। प्रादेशिक महत्व के "विषय राज्य सरकार के पास हैं। 47 विषय ऐसें हैं, जिन पर राज्य व केन्द्र दोनों को मिलकर कानून बनाने का अधिकार दिया गया हैं। सविधान की व्याख्या करने का कार्य न्यायपालिका को दिया गया है। न्यायपालिका स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष हैं। यह दोनों सरकारों के झगड़े निपटाती है और संविधान की रक्षा करती हैं।

12. शक्तिशाली केन्द्र (Powerful Centre)

संघात्मक सरकार के साथ साथ भारत में शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गई है। शक्तियों का बंटवारा

करते हुए केन्द्र को अधिक शक्तियां दी गई हैं जबकि राज्यों को कम। समवर्ती सूची पर दोनों सरकारें कानून बना सकती हैं। भारत में एक ही नागरिकता व एक ही संविधान है। राज्यों में अपने संविधान की व्यवस्था नहीं है। कुछ विद्वानों का कहना हैं – "भारतीय संविधान का ढांचा संघात्मक है परन्तु उसकी आत्मा एकात्मक हैं।"

13. मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)

भारत में संविधान द्वारा नागरिकों के मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गई हैं। संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद 14 से लेकर 35 तक इन अधिकारों का वर्णन हैं। भारत का संविधान अपने नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार प्रदान करता है।

1. समानता का अधिकार
2. स्वतन्त्रता का अधिकार
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार
4. संस्कति व शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
5. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

14. मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties)

42 वें संशोधन द्वारा संविधान में एक नया अध्याय IV A जोड़ा गया है। इसमें भारत के नागरिकों के दस कर्त्तव्य निश्चित किए गये हैं।

1. संविधान पालन, राष्ट्रीय झण्डे व राष्ट्रीय गान का सम्मान व पालन करना।
2. स्वतन्त्रता संग्राम के प्रति ऊँचे आदर्शों का सम्मान व पालन करना।
3. भारत की प्रभुसता, एकता व अखण्डता का समर्थन तथा रक्षा करना।
4. देश की रक्षा करना और आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्र की सेवा करना।
5. भारत के सभी नागरिकों में मेल मिलाप और बधुत्व की सेवा करना।
6. भारत की मिली जुली संस्कति की विरासत का सम्मान करना व उसे सुरक्षित करना।
7. वन जीवन और प्राकतिक वातावरण की रक्षा करना और जीव जन्तुओं से सहानुभूति रखना।
8. जीवन में वैज्ञानिकता, मानववाद, जिज्ञासा और सुधार की भावना का विकास करना।
9. सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करना तथा हिंसा का त्याग करना।
10. व्यक्तिगत तथा सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में ऊँचा उठने का प्रयत्न करना।

15. राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State)

संविधान के भाग चार में उन सिद्धान्तों का भी वर्णन किया गया है जिनसे देश का आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक नीति निश्चित होती है। ये सिद्धान्त भारत में नीव डालने के लिए सहायक है। प्रो० बी० के० गोखले के अनुसार, "संक्षेप में, वे ऐसे कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना चाहते हैं जिसमें न्याय, स्वतन्त्रता और समानता विद्यमान हो तथा लोग सुखी और सम्पन्न हो। नीति निर्देशक सिद्धान्तों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता हैः–

1. समाजवादी सिद्धान्त
2. उदारवादी सिद्धान्त
3. गाधीवादी सिद्धान्त
4. अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त

16. वयस्क मताधिकार (Adult Voting Right)

भारत का संविधान अपने नागरिकों के लिए व्यस्क मताधिकार की व्यवस्था करता हैं। 21 वर्ष के प्रत्येक

नागरिक को चाहे वह किसी धर्म या जाति से सम्बन्ध रखता हो उसे वोट डालने का अधिकार है। इसके साथ देश में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का अंत हो गया।

17. इकहरी नागरिकता (Single Citizenship)

सामान्य रुप से संघीय शासन में नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त होती हैं एक संघ की और दूसरी राज्य की लेकिन भारत एक संघीय राज्य होते हुए भी यहाँ दोहरी नागरिकता नहीं है।

18. स्वतन्त्र न्यायपालिका (Free Judiciary)

भारत का संविधान देश में एक स्वतन्त्र न्यायपालिका की व्यवस्था करता हैं। नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा भारतीय संविधान की रक्षा न्यायपालिका का मुख्य कार्य हैं। यह केन्द्र व राज्य के मध्य झगड़ों को निपटाती है। यदि संसद के दोनों सदन अलग अलग 2/3 बहुमत से किसी न्यायधीश को हटाने का प्रस्ताव पास करें तो राष्ट्रपति उसे हटा सकता है। न्यायपालिका को कार्यपालिका के दबाब से मुक्त रखा जाता है ताकि जज निष्पक्ष होकर निर्णय ले सके।

19. इकहरी न्याय व्यवस्था (Single Judiciary)

भारत एक संघात्मक राज्य है फिर भी यहाँ इकहरी न्याय व्यवस्था स्थापित की गई है। अमेरिका में दोहरी न्याय व्यवस्था हैं।

20. संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of Constitution)

भारत एक संघीय राज्य है। यहाँ संविधान की सर्वोच्चता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। केन्द्र व राज्य को संविधान के अनुसार ही कार्य करना पड़ता हैं।

21. न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Justice Reviewing)

संविधान की सर्वोच्चता के साथ भारत के संविधान में न्यायिक पुनर्निरीक्षण की व्यवस्था की गई है। यदि केन्द्र या राज्यों की व्यवस्थापिका कोई ऐसा कानून बनाती है या उसे अवैध घोषित करती है तो ऐसे कानूनों को फिर लागू नहीं किया जा सकता।

22. द्विसदनात्मक विधानमण्डल (Two House Assembly)

संसद के दो सदन – लोकसभा और राज्य सभा। निम्न सदन लोकसभा लोकप्रिय सदन है। इसके सदस्य मताधिकार के आधारपर चुने जाते हैं। इसका कार्यकाल 5 वर्ष है।

ऊपरी सदन राज्य सभा स्थाई सदन हैं। इसके सदस्य अप्रत्यक्ष रुप से 6 वर्ष के लिये चुने जाते हैं। हर दो वर्ष बाद 1/3 सदस्यों को हटाया जाता है। राज्यसभा में राज्यों की जनसख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

23. संकट कालीन व्यवस्था (Emergency Situation)

संकटकाल का सामना करने के लिए संविधान राष्ट्रपति को विशेष शक्तियां देता है। संकट काल के समय इसका स्वरुप लगभग एकाएक हो जाता है। भारत का राष्ट्रपति निम्नलिखित परिस्थितियों में संकटकालीन की घोषणा कर सकता है :–

(i) युद्ध/बाहरी आक्रमण, सशस्त्र विद्रोह होने की स्थिति में अथवा इसकी संभावना होने पर।

(ii) किसी राज्य की संवैधानिक व्यवस्था फेल होने पर।

(iii) जब देश की आर्थिक स्थिति खतरे में हो।

24. राष्ट्रीय भाषा (National Language)

संविधान द्वारा सम्पूर्ण देश के लिए एक राष्ट्रीय भाषा की व्यवस्था की गई है। यद्यपि देश की बहुत सारी भाषाओं को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है लेकिन देवनागरी लिपि में हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा का गौरव प्राप्त हैं। केन्द्र

व राज्य सरकारें इसे व्यावहारिक रुप से गौरव प्रदान करने के लिऐ प्रयत्नशील है।

25. अल्पसंख्यको, पिछड़े वर्गो तथा अनुसूचित जातियों के लिये विशेष व्यवस्था (Special Provisions for Minorities, Backward classes and schedule castes)

अल्पसंख्यकों के हितो की रक्षा करने तथा पिछड़े वर्गो को ऊँचा उठाने के लिए केन्द्र और राज्य विधानमण्डलों में स्थान सुरक्षित रखे गये है। सार्वजनिक सेवाओं में भी उनके लिए स्थान सुरक्षित किये जाने की व्यवस्था है। शुरू में यह व्यवस्था केवल दस वर्ष के लिए की गई थी फिर इसे 10-10 साल के लिए आगे बढ़ा दिया गया है।

5.3 मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties)

मनुष्य समाज के बिना नहीं रह सकता। अपने विकास के लिए मनुष्य समाज से हमेशा ऐसी स्थितियों की मांग करता है जो उसके विकास में सहायक हों। इन स्थितियों या सुविधाओं को 'अधिकार' कहते हैं। इन नियमों का पालन करना कर्त्तव्य कहलाता है। अतः कर्त्तव्य को अंग्रेजी में (डयूटी) कहते हैं। इस शब्द की उत्पत्ति डेब्ट ;क्मइजद्ध से हुई है, जिसका अर्थ है 'कर्जा' तात्पर्य यह है कि समाज से सुविधाएं प्राप्त करने के लिए मनुष्य को 'कर्जा' चुकाना पड़ता है। यही 'कर्जा' कर्त्तव्य कहलाता है।

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन ने कर्त्तव्य की परिभाषा देते हुए कहा है, 'आज्ञा का गूंगा' पालन कर्त्तव्य नहीं, यह आभारों एवं दायित्वों को पूरा करने की सक्रिय इच्छा है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को जो दायित्व सौंपा जाता है, उस पर कतज्ञता की आशा की जाती है। उसकी सक्रिय इच्छा के साथ पालन करना 'कर्त्तव्य' कहलाता है।

प्रजातन्त्र के वर्तमान युग में हमेशा यह प्रवति रही है कि सारा जोर अधिकारों पर ही दिया जाए, कर्त्तव्यों का निर्वहन बिल्कुल भुला दिया जाए। लेकिन अधिकार और कर्त्तव्य साथ साथ चलते हैं।

वास्तव में ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्रत्येक अधिकार अपने साथ एक कर्त्तव्य निहित रखता है। यदि एक व्यक्ति को अपना स्वयं का धर्म पालन करने का अधिकार है तो दूसरे व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि उसे उसका स्वयं का धर्म पालन करने दे। अधिकार और कर्त्तव्य समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि हमारे संविधान ने अधिकारों के साथ–साथ कर्त्तव्य भी निश्चित किए गए हैः–

हमारे संविधान ने तय किया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को निम्नलिखित कर्त्तव्य पालन करने होंगे :–

(1) संविधान का पालन करना और इसके आदर्शों, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गीत का आदर करना।

(2) स्वतन्त्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शो को हदय में संजोये रखना, उनका पालन करना।

(3) भारत की प्रभुसत्ता, एकता और अखण्डता की रक्षा करें और अक्षुष्ण रखना।

(4) देश की रक्षा करना और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करना।

(5) भारत के सभी नागरिकों में समरसता और समान भ्रातत्व की ऐसी भावना का निर्माण करना जो धर्म, भाषा, प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो और ऐसी प्रथाओं का त्याग करना जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हों।

(6) हमारी सामाजिक संस्कति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझा और उसका परिरक्षण करना।

(7) प्राकतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झीलें, नदियॉं और वन्य–जीव भी हैं, रक्षा करना और उनका संवर्धन करना तथा प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखना।

(8) वैज्ञानिक दष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करना।

(9) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखना और हिंसा से दूर रहना।

(10) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियॉं के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करना जिससे राष्ट्र

निरन्तर आगे बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) भारतीय संविधान की क्या विशेषताएँ हैं?

(ii) मौलिक कर्त्तव्य क्या हैं?

5.4 सारांश (Summary)

किसी भी देश के संविधान को जानने के लिये उसकी प्रस्तावना को पढ़ना अति आवश्यक होता है। प्रस्तावना को पढ़ने मात्र से ही संविधान की जानकारी हो जाती है। भारतीय संविधान के विश्लेषण से चार बातें स्पष्ट हो जाती हैं :–

1. संविधान शक्ति का स्त्रोत हैं।
2. राज्य का स्वरूप प्रभुता सम्पन्न, धर्मनिरपेक्ष तथा समाजवादी होगा।
3. भारत लोकतान्त्रिक देश होगा।
4. यह गणराज्य घोषित किया गया है।

5.5 आदर्श उत्तर

(i) इस उत्तर के लिए छात्र 5.3 भाग देखें।

(ii) कुछ मौलिक कर्त्तव्य इस प्रकार हैं :–

1. संविधान का पालन करना।
2. राष्ट्रीय गीत का पालन करना।
3. भारत की प्रभुसत्ता, एकता और अखण्डता की रक्षा करना।
4. सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करना।
5. हिंसा से दूर रहना।
6. देश की रक्षा करना आदि।

5.6 मुख्य शब्द

संविधानः एक मूलभूत कानूनी लेख, जिसके अंतर्गत एक देश की सरकार अपना कार्य करती है। एक आधारभूत नियम, जो सरकार के प्रमुख अंगों को परिभाषित करता है और उनका सीमांकन करता है।

5.7 सन्दर्भ पुस्तकें

Social Science Syllabus for middle and Secondary Classes by N.C.E.R.T, New Delhi.

इकाई–II

भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Indian Society)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि –

– भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कर सकें।

सरंचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले कारक
6.3 सारांश
6.4 आदर्श उत्तर
6.5 मुख्य शब्द
6.6 सन्दर्भ पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

अरस्तु ने कहा था ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज के बिना जिन्दा नहीं रह सकता।'' यह वास्तविकता है। मनुष्य का जन्म, पालन पोषण तथा विकास समाज के द्वारा तथा समाज के सहयोग से होता है। समाज के बिना मनुष्य तथा मनुष्य के बिना समाज का कोई महत्त्व नहीं है। हम भारत के नागरिक हैं। भारतवर्ष एक लोकतान्त्रिक देश है। भारतीय समाज में अनेक समानताएँ तथा असमानताएँ विद्धमान हैं। इसमें अनेक ऐसे कारक हैं जो भारतीय समाज की प्रगति में बाधक है और जिनके कारण भारतीय समाज उन्नति व विकास नहीं कर पा रहा। यहां विभिन्न धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। इतनी विभिन्नता होते हुए भी भारत में सदैव एकता पाई गई है। समय समय पर भारतवर्ष पर विदेशियों ने आक्रमण किये। लगभग 200 वर्षो तक भारत गुलाम रहा लेकिन भारतीय एकता पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। इकबाल ने ठीक ही कहा है :–

''युनान, मिश्र, रोम, सब मिट गये जहाँ से,
कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी।''

भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी भारतीय समाज के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने लिखा है कि जिस प्रकार विभिन्न नदियॉ समूह में मिलकर अपने अस्तित्व को खो देती हैं उसी प्रकार भारत में भी समय समय पर आई संस्कति अपना अस्तित्व खोकर भारतीय संस्कति में विलीन हो गई।

आज भी भारतीय समाज में अनेक कारक मौजूद हैं जो इसकी प्रगति में बाधा बने हुए हैं। हमारा समाज तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक भारतीय समाज में बाधक तत्वों को दूर न किया जाए।

6.2 भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Indian Society)

1. जनसंख्या (Population)

भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले कारकों में प्रमुख कारक जनसंख्या है। भारत की जनसंख्या निरन्तर

बढ़ रही है। जनसंख्या में वद्धि होने से श्रम–शक्ति में तो बढ़ोतरी हो रही है। परन्तु जिस दर से श्रम–शक्ति में वद्धि हो रही है उस दर से रोजगार अवसरों में वद्धि नहीं हो पा रही है। परिणाम स्वरूप बेरोजगार लोगों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही है जिससे सभी लोगों को सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो रही। जनसंख्या की वद्धि से शिक्षा भी सभी को उपलब्ध नहीं हो पाती।

2. निरक्षरता (Illiteracy)

भारत की जनसंख्या वद्धि ने निरक्षरता को जन्म दिया है। परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण सभी बच्चों को पढ़ाना गरीब परिवार के लिए सम्भव नहीं। निरक्षरता के कारण वह अपने अधिकार तथा कर्त्तव्यों को समझ नहीं पाते जिससे वह लोकतन्त्र में सही योगदान नहीं दे पाते।

3. बेरोजगारी (Unemployment)

भारत में बेरोजगारी की समस्या काफी गम्भीर और व्यापक है। बेरोजगारी समाज के लिए एक अभिशाप है जिससे समाज में चोरी, डकैती, लूटपाट की घटनायें बढ़ रही है। सब लोगों को रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता जिससे पढ़े लिखे शिक्षित व्यक्ति इधर उधर भटकते रहते हैं। अनेक वर्षो से निरन्तर प्रयत्न करने के बावजूद इस समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा है।

4. जातियों में विभिन्नता (Caste Variations)

भारतवर्ष में प्राचीन काल से चार जातियॉ प्रमुख थी। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय व शूद्र। किन्तु समय के साथ साथ तथा विदेशियों के भारत आगमन के कारण भारत में विभिन्न जातियॉ हो गई। विभिन्न जातियों के होने के कारण उनमें समय समय पर झगड़े हुए लेकिन इतना होने पर भी यहॉ सदैव विभिन्नता में एकता पाई गई है, जो आज भी भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता है।

5. भाषा (Language)

हमारे समाज को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारण भाषा भी है। भाषा का मुख्य कार्य अपने विचारों का आदान प्रदान करना है। यह अभिव्यक्ति का माध्यम है। भारतवर्ष में भाषाई विभिन्नता है। भारत में अनेक राज्यों का निर्माण केवल भाषाई विभिन्नता के आधार पर हुआ है। सभी अपनी भाषा को श्रेष्ठ मानते हैं। भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी है परन्तु अभी तक सभी राज्यों ने इसे पूर्ण रूप से नहीं अपनाया है। भाषा भी समाज को प्रभावित करती है। कभी कभी भाषा के आधार पर समाज में झगड़े हो जाते हैं।

6. धर्मो की विभिन्नता (Religious Variations)

भारत में अनेक धर्मों के लोग रहते हैं। भारतवर्ष में प्राचीन काल में केवल एक धर्म था वह था हिन्दु धर्म। इस धर्म में कुरीतियां आई जिससे बौद्ध व जैन धर्म का आगमन हुआ। संसार में अन्य धर्म को मानने वाले लोग भी थे। मुगलों के भारत आगमन से इस्लाम धर्म भारत वर्ष में आया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत को अपने आधीन किया और ईसाई धर्म का प्रचार व प्रसार किया। इस प्रकार भारतवर्ष में विभिन्न धर्मो को मानने वाले लोगों में धर्म सम्बन्धी झगड़े हुए जिन्होंने समाज को प्रभावित किया।

7. सांस्कतिक कारक (Cultural Factors)

भारतवर्ष में विभिन्न धर्म, जाति, समुदाय के लोग रहते हैं जिनकी अलग अलग संस्कति है। इन विभिन्न संस्कतियों ने भारतीय समाज को प्रभावित किया। भारत में आने वाली सांस्कतिक विचारधारा भारतीय धर्म व संस्कति में मिल गई क्योंकि हमारे देश की संस्कति विकासशील थी। इस प्रकार भारत विभिन्न संस्कतियों का संगम बन गया। इस प्रकार समाज को प्रभावित करने में संस्कति का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

8. शिक्षा (Education)

भारतीय समाज में शिक्षा की वद्धि के कारण समाज प्रभावित हुआ है। जैसे जैसे शिक्षा का प्रसार व प्रचार

हुआ है व्यक्ति के दष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ है। शिक्षा के प्रभाव ने शहरों के सामाजिक ढांचे को प्रभावित किया है। शिक्षा द्वारा लोगों में आधुनिक विचारधारा पैदा हुई है। उनमें लोकतन्त्रात्मक विचार, स्पष्ट चिन्तन मनन, तर्कशील विचार व वैज्ञानिक दष्टिकोण विकसित हुआ है।

9. सामाजिक व आर्थिक विकास (Social and Economic Progress)

आर्थिक विकास सामाजिक विकास को प्रभावित करता है। लोगों के पास जितना अधिक धन आयेगा उतना उनका जीवन स्तर ऊॅचा होगा जिससे समाज में परिवर्तन आयेगा। आज सामाजिक परिवेश में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। ज्यों ज्यों समाज उन्नति करेगा तो उसका विकास होगा।

10. भौगोलिक दशा (Geographical State)

भारत की भौगोलिक दशा ने भी भारतीय समाज को प्रभावित किया है। भारतवर्ष में जलवायु, वर्षा, पहाड़, मैदान, नदियॉ भारतीय समाज को सदियों से प्रभावित करती आई हैं। इसीलिए इसे विभिन्नता में एकता कहा जाता है। भारतवर्ष की कुछ भूमि अधिक उपजाऊ है वहॉ सामाजिक जीवन स्तर ऊॅचा है। जहां मरूभूमि है वहां समाज का स्तर निम्न है उन्हें अधिक मेहनत करनी पड़ती है। पहाड़ी इलाकों में रहने वाले लोग अधिक मेहनती होते हैं। भारत की नदियॉ भारतीय संस्कति को तो प्रभावित करती ही हैं यह उपज बढ़ाने तथा सद्भावना पैदा करने में भी मदद करती है।

11. आधुनिकीकरण और रूढ़िवादिता (Modernization and Orthodoxy)

भारतवर्ष के अन्दर शिक्षा के अभाव में आज भी रूढिवादिता तथा अंधविश्वास का बोलबाला है। इस रूढिवादिता ने निरक्षर मानव को ही नहीं शिक्षित मानव को भी रूढिवादी बना दिया है। शिक्षा के माध्यम से आज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से बढ़ रही है। यह प्रक्रिया भी भारतीय समाज को प्रभावित कर रही है तथा लोगों के विचारों में परिवर्तन ला रही है।

12. आतंक एवं उग्रवाद (Terror and Terrorism)

भारतीय समाज को प्रभावित करने में एक कारक आतंकवाद है जिससे समाज में घणा, द्वेष और कलह से असमंजस की स्थिति बन गई है। आतंक ने उग्रवाद को जन्म दिया है। शिक्षित बेरोजगारों को इन दोनों ने प्रभावित किया जिससे आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा मिला। आज जम्मू कश्मीर को सबसे अधिक आतंकवाद से प्रभावित प्रदेश माना जा सकता है। इससे समाज के विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

13. साहित्य का प्रभाव (Effect of Literature)

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य समाज की गतिविधियों को प्रभावित करता है आज ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो राष्ट्रीय एकता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को विकसित करे।

14. सूचना तथा तकनीकी का प्रभाव (Effect of Information and Technology)

सूचना तथा तकनीकी की दष्टि से भारत ने आज बहुत उन्नति कर ली है। तकनीकी के कुछ क्षेत्र में तो भारत अग्रणी बन गया है। कम्प्यूटर आधुनिक संसार के लिये न केवल उपयोगी है बल्कि अनिवार्य भी हो चुका है। भारत का इसके विकास में प्रमुख योगदान है। आज शिक्षा के प्रसार के कारण जीवन के हर क्षेत्र में भारत में अनुसंधान हो रहे हैं। नई–नई खोजों व आविष्कारों ने भारतीय जीवन व्यवस्था को प्रभावित किया है। इसने मानव की जिज्ञासा को शान्त किया है और अनुसंधान के प्रति उन्हें जागरूक बनाया है।

15. राजनैतिक कारक (Political Factors)

जिस देश में राजनैतिक परिस्थितियॉ मजबूत होंगी उस देश का सामाजिक स्तर ऊॅचा होगा। वहॉ न्याय व्यवस्था मजबूत होती है। भारतवर्ष में लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था है। आज विश्व के अन्दर भारत वास्तव में लोकतन्त्र देश होने का गौरव रखता है। यहॉ राजनैतिक परिवर्तन शान्तिपूर्ण तरीके से होते हैं। शिक्षा की कमी के कारण अभी

कुछ शासन व्यवस्था में कमियॉ हैं जो धीरे धीरे सुधर जायेंगी।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कतिक, भौगोलिक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में विविधता में एकता विद्यमान है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले कारक कौन–कौन से हैं?

6.3 सारांश (Summary)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज के बिना नहीं रह सकता। भारत एक लोकतान्त्रिक देश हैं। समाज के अन्दर विभिन्न प्रकार की समानताएँ व असमानताएँ हैं। भारत काफी समय तक गुलाम रहा तथा समय–समय पर विदेशियों ने भी आक्रमण किये। लेकिन इन सब के बावजूद भारत में एकता बनी रहीं। यहाँ पर सभी धर्मों व सम्प्रदायों के लोग रहते है लेकिन कुछ कारक भारतीय समाज की प्रगति में बाधा डालते हैं।

6.4 आदर्श उत्तर

(i) भारतीय समाज के प्रभावित करने वाले कारक निम्न हैं :–

1. जनसंख्या
3. निरक्षरता
4. जातियों में विभिन्नता
5. भाषा
6. धर्मों की विभिन्नता
7. सांस्कतिक कारक
8. शिक्षा
9. सामाजिक व आर्थिक विकास
10. भौगोलिक दशा
11. आधुनिकीकरण और रूढ़िवादिता
12. आतंक एवं उग्रवाद
13. साहित्य का प्रभाव
14. राजनैतिक कारण

6.5 मुख्य शब्द

रूढ़िवादिता : अशिक्षा के कारण एक मत पर अड़े रहना।

6.6 सन्दर्भ पुस्तकें

Social Sciences Syllabus for middle and Secondary Schools by N.C.E.R.T, New Delhi.

इकाई–II

ग्लोब के बारे में सामान्य जानकारी, अंक्षाश तथा देशान्तर रेखाएँ

(Globe: General Information about Globe, longitude and Latitude)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि –

– ग्लोब का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य बता सकें।

– ग्लोब के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकें।

– अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं की चित्र सहित व्याख्या कर सकें।

सरंचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 ग्लोब का इतिहास

7.3 ग्लोब के प्रकार

7.4 अंक्षाश तथा देशान्तर रेखायें

7.5 सारांश

7.6 आदर्श उत्तर

7.7 मुख्य शब्द

7.8 सन्दर्भ पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

हमारी पथ्वी बहुत सुन्दर है इस पर अनेक प्रकार के पेड़ पौधे, जीव–जन्तु और प्राणी हैं। इस विशाल पथ्वी पर बड़े–बड़े महाद्वीप और महासागर हैं। महाद्वीप समतल नहीं हैं। इन में पहाड़, मैदान, घाटियां आदि हैं। इसी प्रकार महासागरों की तली ऊबड़, खाबड़ और पथरीली है। इसमें भी पहाड़, मैदान व खाईयां हैं। पथ्वी की आकति गोल है। हमें अपनी दष्टि से तो पथ्वी की गोल आकति दिखाई नहीं देती इसका कारण यह है कि पथ्वी बहुत बड़ी है उसका बहुत छोटा सा भाग ही हम देख सकते हैं जो चपटा दिखाई देता है। इसी कारण हजारों वर्षो तक लोग इसे चपटा समझते रहे। लोगों के इस गलत विचार के कारण पुराने समय में नाविक समुद्री किनारों से बहुत दूर जाने से डरते थे। उन्हें भय था कि कहीं पथ्वी के किनारों पर पहुचने पर वे पथ्वी के नीचे गिर न जाएं परन्तु आज आकाश में बहुत ऊॅचाई से लिए गए चित्रों से स्पष्ट हो गया है कि पथ्वी की आकति गोल है। अपनी इसी गोल पथ्वी का नमूना पाठशाला में रखा मिलता है। पथ्वी के इस नमूने को ग्लोब कहते हैं। हम सारे ग्लोब को सामने रखकर बहुत सी रोचक बातें संसार और भारत देश के बारे में मालूम कर सकते हैं।

7.2 ग्लोब का इतिहास (History of Globe)

ग्लोब बनाने का इतिहास भी बहुत प्राचीन है। ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व यूनान वासियों ने पथ्वी को गोलाकार व अंडाकार रूप में स्वीकत किया तथा संभवतः सबसे पहले पथ्वी को ग्लोब के रूप में प्रदर्शित किया। कुछ लोगों की यह धारणा है कि ईसा से लगभग 150 वर्ष पूर्व कटेस ने संसार का सबसे पहला ग्लोब बनाया था। इसमें उसने तीन महाद्वीपों को दिखाया। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि उसने इन तीन महाद्वीपों की कल्पना की जिनकी खोज सहस्त्रों वर्षो के पश्चात् हुई। सन् 1400 से 1700 तक का युग खोज युग कहलाता है। इस युग में बहुत से लोगों ने नये देशों की खोज की। अब तक ग्लोब में जो पथ्वी सम्बन्धी विवरण होते थे वे कल्पना के आधार पर होते थे पर इन खोजों द्वारा कल्पना के स्थान पर वास्तविकता को आश्रय मिला। इस युग का सबसे पुराना ग्लोब मार्टिन बेहाइम 1492ई० में जर्मनी के नरेनवर्ग नगर में बनाया गया। इस ग्लोब में उत्तरी अमरीका नहीं दिखाया गया है। धीरे–धीरे, जैसे–जैसे खोजों द्वारा नये नये महाद्वीपों के बारे में जानकारी होने लगी ग्लोब में पथ्वी का अधिकाधिक ठीक रूप दिखाया जाने लगा। अठाहरवी शताब्दी के मध्य तक ग्लोब निर्माण में थोड़ी कल्पना रहती थी लेकिन इसके बाद ग्लोब निर्माण में पूर्णतः वास्तविकता आने लगी।

दसवीं शताब्दी में खगोल सिखाने के लिए ग्लोब का निर्माण किया गया। पथ्वी को ग्लोब रूप में देखकर ऐसी अनेक बातों का स्पष्टीकरण सरल रहता है जो समतल मानचित्र पर प्रायः कठिन होता है वैसे भी सामान्य विज्ञान अर्थशास्त्र आदि अनेक सामाजिक अध्ययन सम्बन्धी विषयों की शिक्षा देने में ग्लोब एक दश्य–साधन के रूप में काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भूगोल विषय में तो इसका बहुत विशेष स्थान है। मानचित्र की भांति ग्लोब को भी पथ्वी और धरातल पर स्थित भौतिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का चित्र प्रस्तुत में प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु जहां मानचित्रों द्वारा पथ्वी का सपाट रूप दिखाई देता है वहां ग्लोब इसकी वास्तविक गोलाकार आकति को सामने लाते हैं और इस तरह ग्लोब को पथ्वी के ऐसे गोलाकार मॉडल या प्रतिरूप के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके माध्यम से पथ्वी के आकार तथा धरातल आदि को उसके अनुपात में प्रदर्शित किया जा सकता है। इस बात का उदाहरण दक्षिण अमेरिका और ग्रीनलैंड के आकार से लगभग जाना जा सकता है। मानचित्र में ग्रीनलैंड अमेरिका के बराबर दिखाई देता है जबकि वास्तव में तथा ग्लोब द्वारा देखने पर दक्षिण अमेरिका ग्रीनलैंड से नौ गुणा बड़ा है।इसका यह कारण है कि पथ्वी के उभरे हुए भाग प्रायः विषुक्त रेखा से ही ऊपर है इसलिये ग्रीनलैंड के फैलाव का भ्रम वहां नहीं होता।

ज्ञान के विस्फोट और यातायात एवं संचार की प्रगति के कारण यह संसार एक हो गया है, इसलिए विभिन्न राष्ट्रों की दशा तथा स्थिति जानना बहुत आवश्यक है। इसको समझने के लिए ग्लोब सबसे उत्तम साधन है। कुछ प्रकरण जैसे ऋतु परिवर्तन, अंक्षांश तथा देशांश रेखाओं आदि का ज्ञान मानचित्र की अपेक्षा ग्लोब द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से दिया जा सकता है।

ग्लोब का इतना महत्व होते हुए भी अध्यापक द्वारा इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता तथा कक्षा में उपकरण का प्रयोग बहुत कम होता है। अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में भी उपकरण की तैयारी तथा उपयोग या महत्व के बारे में छात्रों को पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं होती, परिणामस्वरूप बहुत से अध्यापक विद्यार्थियों को एक बहुत लाभदायक ज्ञान से वंचित कर देते हैं। ग्लोब का निर्माण करना विद्यार्थियों के लिये लाभदायक क्रिया है। इससे उनमें रचनात्मक, कलात्मक रूचियों और योग्यताओं का विकास होता है।

7.3 ग्लोब के प्रकार (Types of Globe)

वैसे तो अध्ययन–अध्यापन के कार्य में सहायता देने के लिए विभिन्न आकारों वाले कई प्रकार के ग्लोब बाजार में सुगमता से उपलब्ध हो जाते हैं परन्तु जहां तक विद्यार्थियों का प्रश्न है वहां शैक्षिक उपयोग के लिए निम्नलिखित चार प्रकार के ग्लोब की सिफारिश की जा सकती है।

1. भौतिक ग्लोब
2. राजनैतिक ग्लोब

3. भौतिक एवं राजनैतिक ग्लोब

4. खाका ग्लोब

1. भौतिक ग्लोब (Physical Globe)

इन ग्लोबों के द्वारा पथ्वी पर स्थित भूमि और जल क्षेत्रों तथा उनकी ऊँचाई एवं गहराई आदि का तथा पथ्वी को विभाजित करने वाली अंक्षाश एवं देशांश रेखाओं को चित्रित किया जाता है और इस प्रकार ग्लोब भौतिक एवं प्राकतिक भूगोल से सम्बन्धित प्रकरणों के अध्ययन में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होता है।

2. राजनैतिक ग्लोब (Political Globe)

इस ग्लोब में संसार के सभी देशों की सीमाएं, प्रमुख नगरों, भवनों, बाधों आवागमन मार्गो तथा पर्यटन स्थल आदि का चित्रण किया जाता है।

3. भौतिक एवं राजनैतिक ग्लोब (Physical and Political Globe)

भौतिक तथा राजनैतिक ग्लोब में भौतिक तथा राजनैतिक दोनों प्रकार के ग्लोबों की विशेषताओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया जाता है।

4. खाका ग्लोब (Outline Globe)

खाका ग्लोब में भूमण्डल का भौतिक अथवा राजनैतिक दष्टि से एक खाका बनाया जाता है। महाद्वीपों, महासागरों, तथा अन्य देशों की भौगोलिक परिस्थितियों तथा राजनैतिक सीमाओं आदि की स्थिति का चित्रण भी इस प्रकार के ग्लोबों में किया जाता है। विवरण की दष्टि से ये खाली होते हैं जिनमें आवश्यकतानुसार अध्यापक और विद्यार्थियों द्वारा चाक या पेंसिल आदि से लिखा जा सकता है।

ग्लोब बनाने के लिए कागज की लुग्दी व घास की आवश्यकता होती है। इस सामग्री से ग्लोब बनाने के पश्चात् उस पर कागज की कई परतें चढ़ा दी जानी चाहिएं। जब वह सूख जाए तो इस पर रंग करके मानचित्र खीच देना चाहिए। इस प्रकार ग्लोब तैयार हो जाता है।

ग्लोब कई आकार के होते हैं। 6 ईंच से लेकर 24 ईच व्यास के ग्लोब बनाए जाते हैं। ग्लोबों की बनावट में भी भिन्नता होती है। कुछ ग्लोब मेज पर रखने तथा दीवार पर लटकाने वाले होते हैं। आजकल विद्युत संचालित उपग्रह उसके चारों ओर घूमते हैं। स्लेट की सतह वाले ग्लोब भी उपलब्ध हैं। इस प्रकार के ग्लोब पर छात्र स्वयं काम कर सकते हैं। वे इन पर महाद्वीप, नदियों तथा जलमार्ग आदि भी अंकित कर सकते हैं। विद्यार्थी स्वयं भौतिक और राजनैतिक दोनों प्रकार के ग्लोब तैयार कर सकते हैं।

बच्चे नई वस्तुओं के प्रति अधिक आकर्षित होते हैं। उन्हें ग्लोब द्वारा पथ्वी की संरचना की जानकारी देना न केवल आसान हो जाता है अपितु इससे उन्हें वास्तविक तथ्यों से भी अवगत कराया जा सकता है। खेल खेल में बच्चे पथ्वी पर विभिन्न आकतियों की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं जो उन्हें समतल मानचित्र पर आसानी से नहीं समझाई जा सकती। इससे पथ्वी पर धरातल तथा पानी के अनुपात को भी समझाया जा सकता है। रंगों के माध्यम से बच्चों को विभिन्न देशों की स्थिति की भी जानकारी दी जा सकती है।

7.4 अक्षांश तथा देशान्तर रेखाएँ (Longitude and Latitude)

ग्लोब पथ्वी का सही प्रतिरूप है। यदि हम यह पूछ लें कि ग्लोब पर दिल्ली कहॉ है तो सम्भवतः विद्यार्थी ग्लोब पर निगाह डालकर दिल्ली पर ऑगुली रख सकते हों, परन्तु वह यह नहीं बता सकता कि ग्लोब पर दिल्ली कहॉ स्थित है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये भूगोल वेत्ताओं ने ग्लोब पर रेखाएं खींची हुई हैं। इन रेखाओं को ग्लोब पर हम देख सकते हैं। ये रेखाएं दो प्रकार की हैं। एक प्रकार की रेखाएं पूर्व–पश्चिम तथा दूसरी उत्तर–दक्षिण खींची हुई हैं। इन रेखाओं की सहायता से तुम किसी स्थान की स्थिति ज्ञात कर सकते हो।

1. अक्षांश रेखाएँ (Latitudes)

ग्लोब पर इसके चारों ओर दोनों ध्रुवों के बीचों बीच एक रेखा खींची हुई है। इसे भूमध्य रेखा कहते हैं। यह भूमध्य रेखा पथ्वी को दो बराबर भागों में बॉटती है। उत्तरी आधे भाग को उत्तरी गोलार्द्ध कहते हैं। दक्षिणी आधे भाग को दक्षिणी गोलार्द्ध कहते हैं।

भूमध्य रेखा के अतिरिक्त दोनों गोलार्द्धो में और कई रेखाएं पूर्व से पश्चिम को खींची हुई हैं। इन्हें अक्षांश रेखायें कहते हैं। ये सब रेखाएँ भूमध्य रेखा के समानान्तर खींची गई हैं। 90 अक्षांश उत्तरी गोलार्द्ध में है तथा 90 अक्षांक्ष दक्षिणी गोलार्द्ध में है। इसलिए कुल मिलाकर दोनों गोलार्द्धो में 180 अक्षांश हुए। उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव 90^0 के अक्षांशों पर स्थित है। भूमध्य रेखा 0^0 अक्षांश माना जाता है। 23½° उत्तर की अक्षांश रेखा को कर्क रेखा कहते हैं। 23½° दक्षिण की अक्षांश रेखा को मकर रेख कहते हैं। 66½° उत्तर की अक्षांश रेखा को आर्कटिक वत कहते हैं। 66½° दक्षिण की अक्षांश रेखा को अन्टाक्टिक वत कहते हैं। अक्षांश रेखाओं की लम्बाई भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाते हुए कम होती जाती है। यहॉ तक कि 90° अक्षांश केवल बिन्दु रह जाते हैं।

धरातल पर किसी स्थान की, पथ्वी के केन्द्र से खींची गई कोणात्मक दूरी को अक्षांश कहते हैं।

2. देशान्तर रेखाए (Longitude)

ग्लोब पर कुछ रेखाएँ दोनों ध्रुवों से गुजरती हुई उत्तर से दक्षिण की ओर खींची गई हैं। इन्हें देशान्तर रेखाएँ कहते हैं। लन्दन के समीप स्थित ग्रीनविच नामक स्थान के पास से गुजरती हुई देशान्तर रेखा को 0° देशान्तर माना गया है। इसे मूल देशान्तर अथवा मध्याह्न देशान्तर (Prime meridian) कहते हैं।

सब देशान्तर इस मूल देशान्तर से पूर्व तथा पश्चिम की ओर गिने जाते हैं। मूल देशान्तर पथ्वी को दो बारबर भागों में बॉटता है। पूर्वी भाग को पूर्वी गोलार्द्ध कहते हैं तथा पश्चिमी भाग को पश्चिमी गोलार्द्ध कहते हैं। 180° देशान्तर पूर्वी भाग में है तथा 180° देशान्तर पश्चिमी भाग में है। इस प्रकार समस्त ग्लोब पर 360° देशान्तर हुए। ग्लोब पर मध्याह्न देशान्तर के बिल्कुल 180° की देशान्तर रेखा है। यदि हम मध्याह्न देशान्तर से पश्चिम की ओर जाएँ तो वे 180 पश्चिम देशान्तर रेखा मानी जायेगी। इस प्रकार 180° पूर्व तथा 180° पश्चिम की देशान्तर रेखा वास्तव में एक ही रेखा है। मध्याह्न देशान्तर तथा 180° की देशान्तर रेखा दोनों मिलकर एक पूरा वत बना देती है। इस प्रकार आमने–सामने की कोई भी दो देशान्तर रेखाएँ मिलकर एक पूरा वत बना लेती हैं।

ये अक्षांश तथा देशान्तर रेखाएँ केवल ग्लोब पर ही खींची हुई हैं। वास्तव में पथ्वी पर ऐसी कोई रेखाएँ नही हैं। यह कल्पित रेखाएँ हैं, जो भूगोल वेत्ताओं ने अपनी सुविधा के लिए पथ्वी पर खींची हुई मान ली है। ग्लोब पर ये रेखाएँ नगरों की स्थिति ज्ञात करने में सहायक सिद्ध होती हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) ग्लोब कितने प्रकार के होते हैं?

(ii) देशान्तर रेखायें क्या होती है?

7.5 सारांश (Summary)

पथ्वी की आकति गोल है। अपनी इसी गोल पथ्वी के नमूने को ग्लोब कहते हैं। ग्लोब के द्वारा अनेक बातों का स्पष्टीकरण सरल रहता है। ग्लोब का प्रयोग पथ्वी और धरातल पर स्थित भौतिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों किा चित्र प्रस्तुत करने में प्रयुक्त किया जाता है। विभिन्न राष्ट्रों की दशा तथा स्थिति जानने के लिए ग्लोब सबसे उत्तम साधन हैं। कुछ प्रकरण जैसे ऋतु परिवर्तन, आक्षांश तथा देशान्तर रेखाएँ इसके द्वारा समझाई जा सकती है।

7.6 आदर्श उत्तर

(i) ग्लोब चार प्रकार के होते हैं।

(ii) ग्लोब पर दोनों ध्रुवों से गुजरती हुई उत्तर से दक्षिण को खीची रेखाओं को देशान्तर रेखायें कहते हैं।

7.7 मुख्य शब्द

ग्लोब – पथ्वी का गोलाकार मॉडल या प्रतिरूप, जिसके माध्यम से पथ्वी के आकार तथा धरातल आदि को उसके अनुपात में प्रदर्शित किया जा सकता है।

खाका ग्लोब – भू–मण्डल का भौतिक अथवा राजनैतिक दष्टि से खाका

अंक्षाश रेखाएँ – ये रेखाएं भूमध्य रेखा के समानान्तर खींची गई हैं। 90° अक्षांश उत्तरी गोलार्द्ध में तथा 90° अक्षांश दक्षिणी गोलार्द्ध में हैं। ये रेखाएं पूर्व से पश्चिम को खींची हुई हैं।

देशान्तर रेखाएँ – ये रेखाएं दोनों ध्रुवों से गुजरती हुई उत्तर से दक्षिण की ओर खींची गई है।

7.8 सन्दर्भ पुस्तकें

Social Science Syllabus for Middle and High Classes by N.C.E.R.T, New Delhi

इकाई-II

भारतीय अर्थव्यवस्था का ढांचा

(Structure of Indian Economy)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि –

– भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण कर सकें।

– भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सूची बना सकें।

– भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्रों एवं प्रदेशों के नाम बता सकें।

सरंचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 भारतीय अर्थव्यवस्था

8.3 भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ

8.4 भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र एवं प्रदेश

8.5 सारांश

8.6 आदर्श उत्तर

8.7 मुख्य शब्द

8.8 सन्दर्भ पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था से अभिप्राय उस ढांचे या संरचना से है जिसके अन्तर्गत भारत की समस्त आर्थिक क्रियाओं की जानकारी या अन्य प्रकार की वह सभी क्रियाऐं होती हैं जो अर्थ से सम्बन्धित हैं। इन क्रियाओं को उत्पादन के साधनों की सहायता से सम्पन्न किया जाता है। उत्पादन के साधन वे अनिवार्य तत्व है जो उत्पादन क्रिया में परस्पर सहयोग करते हैं। इन साधनों का भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यम रूप में वर्गीकरण किया जाता है। अर्थशास्त्र में इन धारणाओं का प्रयोग विशेष अर्थो में किया जाता है। जैंसे :–

(क) भूमि :– भूमि उत्पादन का वह साधन है जो प्रकति द्वारा मुफ्त में प्राप्त होता है। जैसे – वन, धरती की उपजाऊ शक्ति, जल आदि।

(ख) श्रम :– श्रम से अभिप्राय मनुष्य के उन सभी मानसिक और शारीरिक कार्यो से है जो धन को प्राप्त करने के लिए किए जाते हैं।

(ग) पूंजी :– पूंजी मनुष्य द्वारा निर्मित वह भौतिक साधन है जिसका प्रयोग अधिक उत्पादन करने के लिए किया जाता है।

(घ) उद्यमी :– उद्यमी उत्पादन का वह साधन है जो आर्थिक निर्णय लेता है तथा जोखिम उठाता है।

इन सभी साधनों के सहयोग के परिणामस्वरूप उत्पादन होता है।

8.2 भारतीय अर्थव्यवस्था (Indian Economy)

भारत के गावों में अभी भी कुछ सीमा तक छोटे पैमाने पर सरल प्रकार का उत्पादन होता है। एक छोटा किसान अपने तथा अपने परिवार के श्रम, अपनी भूमि, पूंजी तथा उद्यम की सहायता से फसल का उत्पादन उस तरीके से करने का प्रयत्न करता है जिसे वह सबसे अधिक लाभदायक समझता है। परन्तु भारत में उत्पादन सरल तरीके से किये जाने के साथ–साथ जटिल तरीके से भी किया जाता है। बड़े तथा अमीर किसान भाड़े के मजदूरों को काम पर लगाकर, पूंजी उधार लेकर, मशीनों तथा खेती की वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके बड़े पैमाने पर खेती करते हैं। इसी प्रकार बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास होने के कारण अब उद्योगों का स्वामित्व दस्तकारों के पास नहीं रह गया। उद्योगों में उत्पादन के जटिल तरीकों का प्रयोग काफी सीमा तक किया जाता है। अत एव् आधुनिक युग में उत्पादन से अभिप्राय उत्पादन के लिये आवश्यक साधन प्रदान करने वाले लोगों के संयुक्त प्रयत्न से है। इनके संयुक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप किसी अर्थव्यवस्था में जो उत्पादन होता है उसका वितरण उन्हीं साधनों में उनकी सेवाओं के बदले में किया जाता है। श्रमिक के भाग को मजदूरी, भूस्वामी के भाग को लगान, पूंजीपति के भाग को ब्याज तथा उद्यमी के भाग को लाभ कहा जाता है।

8.3 भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं (Characteristics of Indian Economy)

भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताऐं निम्नलिखित हैं :–

(क) आर्थिक आधार पर

(ख) सामाजिक आधार पर

(ग) राजनीतिक आधार पर

8.3.1 आर्थिक आधार पर (On Economy Basis)

(i) मिश्रित अर्थव्यवस्था

भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है। यह दो अर्थो में मिश्रित है। (क) भारत में निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्र ही साथ साथ क्रियाशील है। (ख) भारत में दोहरी अर्थव्यवस्था है एक तरफ आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र है तथा दूसरी तरफ पिछड़ा हुआ कषि तथा परम्परागत लघु और कुटीर उद्योग क्षेत्र है।

(ii) विकासशील अर्थव्यवस्था

भारतीय अर्थव्यवस्था विभिन्न क्षेत्रों में निरन्तर विकास के मार्ग पर बढ़ती जा रही है। भारत में परम्परागत ग्रामीण क्षेत्र पाया जाता है जिसकी प्रधान आर्थिक क्रिया कषि है। एक छोटा सा आधुनिक क्षेत्र शहरों में पाया जाता है जिसकी प्रधान आर्थिक क्रिया उद्योग तथा वित्तिय सेवायें हैं। यह क्षेत्र धीरे–धीरे विकसित हो रहा है। यह भारत की एक विकासशील अर्थव्यवस्था होने का लक्षण है।

(iii) दोहरा स्वरूप

भारतीय अर्थव्यवस्था में अल्पविकसित तथा विकसित दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं का समावेश किया गया है। अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा कषि क्षेत्र एवं कुटीर क्षेत्र अभी अल्प विकसित अवस्था में है तथा शहरी, औद्योगिक क्षेत्र विकसित श्रेणी में है। इस प्रकार दोहरा स्वरूप विद्यमान है।

(iv) पिछड़ा औद्योगिक ढांचा

भारत में औद्योगिक ढांचा कमजोर है। औद्योगिक क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में बहुत कम योगदान है। भारत का

इस समय राष्ट्रीय आय में योगदान 29 प्रतिशत है, जबकि जापान में 43 प्रतिशत है, फ्रांस में 47 प्रतिशत तथा जर्मनी का 46 प्रतिशत है।

(v) नियोजित अर्थव्यवस्था

संसार के अल्पविकसित देशों में भारत पहला देश था जिसने विकास के लिए योजना का मार्ग अपनाया। भारत की पहली योजना 1 अप्रैल 1951 को प्रारम्भ की गई थी। तब से अब तक नौ पंचवर्षीय योजनायें पूरी हो चुकी हैं। दसवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 2002 से प्रारम्भ हुई है जो 2007 तक चलेगी।

8.3.2 सामाजिक आधार पर (On Social Basis)

1. जनसंख्या विस्फोट के रूप में

भारत की जनसंख्या 1951में 36 करोड़ 14 लाख थी। सन् 1998 में यह बढ़कर 95 करोड़ 55 लाख हो गई। आज यह 103 करोड़ से भी अधिक हो गई है। यह जनसंख्या विस्फोट की स्थिति है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष जनसंख्या में लगभग एक करोड़ की वद्धि हो जाती है।

2. बेरोजगारी तथा अर्द्ध-बेरोजगारी

भारत में बेरोजगारी तथा अल्प रोजगार की समस्या एक अत्यन्त जटिल तथा गम्भीर समस्या है। देश में बेरोजगारी व्यापक रूप से प्रचलित है तथा प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के साथ–साथ बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। भारत में इस समय 2 करोड़ 50 लाख बेरोजगार तथा अल्प बेरोजगार हैं।

3. पिछड़ी हुई सामाजिक संस्थायें

मुख्य सामाजिक संस्थायें जाति प्रथा, संयुक्त परिवार प्रथा, उत्तराधिकार प्रथा तथा धार्मिक प्रथाऐं भारत के आर्थिक विकास में बाधक हैं। इनके कारण लोग कार्य करने के पुराने ढंग को नहीं छोड़ते हैं तथा आधुनिक तरीकों का विरोध करते हैं।

4. घटिया मानव पूंजी

भारतीय श्रमिकों का जीवन स्तर निम्न तथा स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण कार्यकुशलता कम होती है। इसके फलस्वरूप श्रमिकों की आय कम है। अतः यह निर्धनता के चक्र में फंसे रहते हैं।

5. संयुक्त परिवार प्रणाली

संयुक्त परिवार प्रणाली में एक व्यक्ति के अधीन कार्य किया जाता है। सम्पत्ति संयुक्त रूपसे रखी जाती है। परिवार के सभी सदस्य मिलकर कार्य करते हैं। आय तथा व्यय संयुक्त होते हैं। सुख–सुविधा भी समान रूप से प्रदान की जाती है। परन्तु व्यक्तिवाद की भावना तेजी से विकसित हो रही है। आज प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसके परिश्रम का फल उसी को मिलना चाहिए।

8.3.3 राजनैतिक आधार पर (On Political Basis)

1. संघीय अर्थव्यवस्था :-

संविधान ने भारतीय अर्थव्यवस्था को एक संघीय अर्थव्यवस्था का ढांचा दिया है। भारतीय अर्थव्यवस्था को संघीय अर्थव्यवस्था इसलिये कहा जाता है क्योंकि यहां आर्थिक क्रियाओं को स्पष्ट रूप से केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच बॉट दिया गया है। देश की अधिकतर मुख्य आर्थिक क्रियाओं को केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित किया जाता है। देश की आर्थिक क्रियाओं का एक काफी बड़ा भाग राज्य सरकारों के नियन्त्रण में है। संक्षेप में भारत में आर्थिक क्रियाओं से संबंधित सरकारी संस्थाऐं दो स्तर पर कार्य करती हैं, एक केन्द्रीय

सरकार के अधीन तथा दूसरी राज्य सरकारों के नियंत्रण में। 1991 के बाद देश में नई आर्थिक नीति अर्थात् उदारता की नीति अपनाने की है। इसका अर्थ उद्योग तथा व्यापार को अनावश्यक प्रतिबन्धों से मुक्त करके प्रतियोगी बनाना हैं।

8.4 भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र (Main Sectors of Indian Economy)

भारतीय अर्थव्यवस्था को विभिन्न आधारों पर निम्नलिखित क्षेत्रों तथा प्रदेशों में बॉटा जा सकता है :–

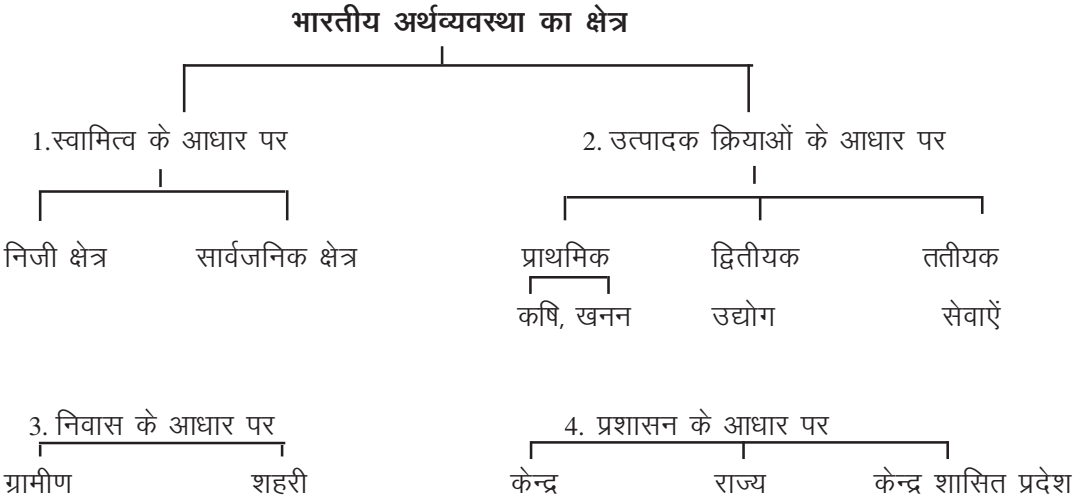

8.4.1 स्वामित्व के आधार पर

1. निजी क्षेत्र (Private Sector)

निजी क्षेत्र वह क्षेत्र है जिस पर निजी व्यक्तियों तथा संस्थाओं का स्वामित्व होता है तथा जिनका स्वामित्व और प्रबन्ध निजी व्यक्ति लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं। भारत में निजी क्षेत्र में चार प्रकार की उत्पादक संस्थाऐं शामिल की जाती हैं।

(1) गैर संगठित उद्यमी जैसे – किसान, बुनकर, दस्तकार, स्वर्णकार, कारीगर, फुटकर तथा थोक विक्रेता।

(2) लघु उद्योग तथा सहायक उद्योग : भारत में लघु तथा सहायक उद्योग उन उद्योगों को कहा जाता है जिनमें 1 करोड़ रूपये तक के मूल्य की स्थिर पूंजी का प्रयोग किया जाता है।

(3) अति लघु उद्योग उन्हें कहते हैं जिनमें 25 लाख रूपये तक की स्थिर पूंजी का निवेश होता है।

(4) बड़े पैमाने के उद्योग जैसे :– टाटा इस्पात, देहली क्लाथ मिल आदि।

2. सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)

सार्वजनिक क्षेत्र से अभिप्राय उस क्षेत्र से है जिस पर सरकार का स्वामित्व होता है जिसकी व्यवस्था एवं प्रबंध सरकार द्वारा होता है। 1951 में सार्वजनिक क्षेत्र के केवल 5 उद्योग थे जो 1998-99 में बढ़कर 236 की संख्या तक पहुॅच गये। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का काफी विकास हुआ।

8.4.2 उत्पादक क्रियाओं के आधार पर क्षेत्र (Sectors on the basis of Production Activities)

1. प्राथमिक

इसके अन्तर्गत कषि, वन, मछली पालन तथा खानें और खदान सम्बन्धी क्रियाऐं शामिल की जाती हैं।

2. माध्यमिक क्षेत्र

इस क्षेत्र में लघु तथा बड़े उद्योग निर्माण, बिजली, गैस, जलपूर्ति आदि सम्बन्धी क्रियाऐं शामिल की जाती हैं।

3. ततीयक क्षेत्र

इस क्षेत्र में निम्नलिखित आर्थिक क्रियाऐं सम्मिलित की जाती हैं। (i) यातायात, संचार तथा व्यापार (ii) बैंक, बीमा जायदाद, व्यापारिक सेवाऐं, (iii) सार्वजनिक प्रशासन, रक्षा तथा अन्य सेवाऐं, (iv) विदेशी व्यापार।

8.4.3 निवास के आधार पर क्षेत्र (Sectors on the basis of Residence)

1. ग्रामीण क्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र में गांवों तथा देहाती क्षेत्र को शामिल किया जाता है। इस क्षेत्र का मुख्य व्यवसाय कषि है। भारतीय अर्थ व्यवस्था का ग्रामीण क्षेत्र शहरी क्षेत्र की तुलना में काफी बड़ा तथा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

2. शहरी क्षेत्र

शहरी क्षेत्र में शहर तथा कस्बों को शामिल किया जाता है। शहरी क्षेत्र के लोगों का मुख्य व्यवसाय उद्योग तथा सेवाऐं हैं। भारत के शहरी क्षेत्र की समद्धि काफी सीमा तक ग्रामीण क्षेत्र की समद्धि पर निर्भर करती है।

8.4.4 प्रशासन के आधार पर (On the basis of Administration)

प्रशासन के आधार पर भारत एक संघीय राज्य है। इसके अन्तर्गत (1) केन्द्र, (2) 29 राज्य तथा (3) 7 केन्द्र प्रशासित प्रदेश शामिल हैं। भारत के विभिन्न प्रदेश आर्थिक दष्टि से समान नहीं हैं। इनमें काफी असमानता पाई जाती है। कुछ राज्य अपेक्षाकत धनी हैं तथा कुछ निर्धन हैं भारत के विभिन्न राज्यों में प्रति व्यक्ति आय भी अलग अलग हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?

(ii) स्वामित्व के आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था को कितने भागों में बांटा गया है?

8.5 सारांश (Summary)

भारतीय अर्थव्यवस्था से अभिप्राय उस संरचना से है जिसके अन्तर्गत भारत की समस्त आर्थिक क्रियाओं की जानकारी मिलती है। इन क्रियाओं को उत्पादन के साधनों की सहायता से सम्पन्न किया जाता है। इन साधनों का भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यम रूप में वर्गीकरण किया जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताऐं निम्नलिखित हैं :–

1. आर्थिक आधार पर
2. सामाजिक आधार पर
3. राजनीतिक आधार पर

8.6 आदर्श उत्तर

(i) भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं :–

1. आर्थिक आधार पर
2. सामाजिक आधार पर
3. राजनैतिक आधार पर

(ii) दो।

8.7 मुख्य शब्द

अर्थव्यवस्था : एक ढांचा या सरंचना है जिसके अन्तर्गत समस्त आर्थिक क्रियाओं की जानकारी प्राप्त होती है या अन्य प्रकार की क्रियाएं, जो कार्य से सम्बन्धित है, इसमें शामिल होती है।

8.8 सन्दर्भ पुस्तकें

Social Science Syllabus for Middle and High Classes by N.C.E.R.T., Delhi.

इकाई–II

भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्मुख प्रमुख विचारणीय विषय

(Major Issues Facing Indian Economy Today)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाऐंगें कि –

– भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष विचारणीय विषयों का वर्णन कर सकें।

सरंचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष विचारणीय विषय
9.3 सारांश
9.4 आदर्श उत्तर
9.5 मुख्य शब्द
9.6 सन्दर्भ पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

अर्थव्यवस्था से अभिप्राय सम्बन्धित देश के भौगोलिक क्षेत्र में की जाने वाली सभी आर्थिक क्रियाओं के जोड़ से है। अर्थव्यवस्था से विभिन्न समूह परस्पर निर्भर रहते हैं। उदाहरण के लिए खेतों में पैदा किया जाने वाला अनाज तथा फर्मों द्वारा उत्पन्न की गई वस्तुऐं उपभोक्ताओं को सन्तुष्ट करती हैं। दूसरी ओर उपभोक्ता खेतों तथ फर्मो को अपनी सेवाऐं प्रदान करते हैं ओर उसके परिणामस्वरूप आय प्राप्त करते हैं। अर्थव्यवस्था में होने वाले कार्यो का उद्देश्य मनुष्य की भोजन, कपड़े, आवास, जीवन की अनिवार्यताओं, आराम तथा विलास की वस्तुओं की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना है। इस प्रकार किसी भी देश में वह ढांचा जिसके अन्तर्गत सभी आर्थिक गतिविधियां को बताया जाता है **अर्थ व्यवस्था** कहलाता है। भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था है। इसके अन्तर्गत भारत की समस्त आर्थिक क्रियाओं तथा आर्थिक समस्याओं का लेखा जोखा है। ये क्रियाएं कषि, उद्योग, सेवायें या अन्य प्रकार की हो सकती है।

9.2 भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष विचारणीय विषय (Major Issues Facing Indian Economy)

आज हमारी अर्थव्यवस्था को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जिनका वर्णन निम्नलिखित हैं –

1. निम्न प्रति व्यक्ति आय (Low Per Capita Income)

भारत में प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत नीचा है। विश्व विकास रिपोर्ट 2000-2001 के अनुसार वर्ष 1999 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 450 डालर थी। यह अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में लगभग 1/68 थी। अन्तराष्ट्रीय तुलना के प्रति व्यक्ति आय की गणना के लिये अब एक नई रीति का प्रयोग किया जाने लगा है जिसमें प्रति व्यक्ति आय की गणना सम्बन्धित राष्ट्र में मुद्रा की क्रय शक्ति के आधार पर की जाती है। जबकि पारम्परिक रीति में मुद्राकी विनियम दर को आधार माना जाता था। क्रय शक्ति समता रीति के अनुसार भारत की प्रति व्यक्ति आय 1999 में 2149 डालर थी जबकि अमेरिका की यह 30600 डालर थी।

2. कषि की प्रधानता (Dominance of Agriculture)

भारत में कषि की प्रधानता है। भारत की कुल श्रम–शक्ति का लगभग 68% भाग कषि में लगा हुआ है। भारत में भूमि श्रम–अनुपात अनुकूल नहीं है। प्रति व्यक्ति भूमि बहुत कम है। अन्य शब्दों में प्रति हेक्टेयर व्यक्तियों की संख्या अधिक है। भारतीय कषि पर न केवल जनसंख्या का अधिक दबाव है, अपितु कषि पिछड़ी हुई अवस्था में है। अच्छे बीजों, उचित खाद, उपयुक्त यन्त्रों, सिंचाई व्यवस्था की कमी, कषि के पुराने ढंगों आदि के कारण कषि क्षेत्र की उत्पादकता कम है। भूमि पर जनसंख्या का अधिक भार होने के कारण जोतों के उपविभाजन तथा अपखण्डन की समस्या उत्पन्न हो गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जोतों का आकार छोटा हो गया है।

3. जनसंख्या वद्धि (Increase in Population)

भारत में जनाधिक्य की स्थिति है। इस समय भारत की जनसंख्या लगभग 103 करोड़ है। यह जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 16.7 प्रतिशत है जबकि भारत के पास विश्व के कुल भूमि क्षेत्रफल का केवल 2.42 प्रतिशत क्षेत्र ही है। जनसंख्या के विशाल आकार के साथ साथ भारत की जनसंख्या काफी तेज गति से बढ़ रही है। 1901-10 में जनसंख्या वद्धि (प्रति हजार) 6.6 थी जो बढ़कर 1991-2000 में 18.0 हो गई 1961 के पश्चात् परिवार नियोजन आदि के फलस्वरूप जन्म दर में कुछ कमी होने लगी। 1981 में जन्म दर कम होकर 36 प्रति हजार तथा 1991 में 29.2 प्रति हजार तथा 2001 में 26 प्रति हजार हो गई। जन्म दर के मत्यु दर की तुलना में अधिक होने के कारण जनसंख्या वद्धि दर तेजी से बढ़ती जा रही है।

4. असन्तुलित आर्थिक विकास (Imbalanced Economic Development)

अभी भारतीय अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास नहीं हुआ है। विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार देश का लगभग 64% भाग कषि पर निर्भर है जबकि उद्योग–धन्धों में केवल 16% , व्यापार, यातायात एवम् अन्य कार्यो में 20% लोग लगे हुए हैं।

5. पूंजी का अभाव (Lack of Capital)

राष्ट्रीय आय कम होने तथा इसका बड़ा भाग उपभोग में व्यय हो जाने से बचत कम हो पाती है। घरेलू बचत जो जी.डी.पी. का 22% 1992-93 में थी 2000-01 में बढ़कर 23.4% हो गई जो इस बात की ओर संकेत करती है कि भारत में कम आय होने के कारण बचत करने की क्षमता भी कम है।

6. औद्योगिक विकास की धीमी गति (Slow rate of Industrial developemnt)

भारत में आधुनिक ढंग के बड़े पैमाने के उद्योगों का अभाव है। आधारभूत उद्योगों के अभाव में अर्थव्यवस्था में तीव्र विकास के लिये आवश्यक पष्टभूमि तैयार नहीं हो पाती है। औद्योगिक क्षेत्र की औसत वार्षिक वद्धि दर सातवीं योजना काल में 7.5% थी जो कि लक्षित वार्षिक वद्धि दर से कम थी। आठवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन की वद्धि दर 7.2 प्रतिशत रही। नौवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन की विकास दर 6 प्रतिशत रही। भारत में औद्योगिक विकास एवम् प्रगति के मार्ग में अनेक ऐसी बाधायें हैं जिनके कारण देश में औद्योगिक विकास की गति आगे नहीं बढ़ पा रही है। इसमें प्रमुख तालाबन्दी, हड़तालें, औद्योगिक रूग्णता आदि हैं।

7. यातायात एवम् संचार के साधनों की कमी (Inadequate means of Transport and Communication)

भारत जैसे विशाल देश में यातायात एवम् संचार के साधनों का बड़ा महत्त्व है। परन्तु अभी तक इन साधनों का यथोचित विकास नहीं हो पाया। यद्यपि योजनाकाल में भारतीय रेलवे ने काफी प्रगति की है किन्तु फिर भी देश की आवश्यकताओं एवम् विस्तार को देखते हुए अभी इसमें और अधिक प्रगति होनी चाहिए। रेलवे के सामने अनेक समस्याऐं हैं जैसे बढ़ती हुई रेल दुर्घटनाओं की समस्या, ईंधन की समस्या, भीड़–भाड़ की समस्या, रेलवे के काम–काज में कार्य कुशलता बढ़ाने की समस्या। इसके अतिरिक्त भारतीय रेलवे की प्रशासनिक लागत में तेजी से वद्धि होती जा रही है।

8. निर्धनता (Poverty)

भारत एक निर्धन देश है। भारत की गरीबी की समस्या एक अत्यन्त विकट एवम् विकराल समस्या है। यहॉ की गरीबी कोई छोटी–मोटी समस्या नहीं है और न ही यह सीमित मात्रा में है। भारत में गरीबी का दर्शन खाली एवम्

चिपके हुये पेटों, वस्त्रहीन शरीरों, नंगे पांवों, चिपके हुए गालों को देखकर किया जा सकता है। भारत में गांवों तथा शहरों में करोड़ों व्यक्ति निर्धनता की रेखा के नीचे रहते हैं। योजना आयोग की संशोधित विधि के अनुसार वर्ष 1999-2000 में 26% जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे रह रही थी।

9. पिछड़ी हुई सामाजिक संस्थायें (Backward Social Organizations)

मुख्य सामाजिक संस्थायें जाति प्रथा, संयुक्त परिवार प्रथा, उत्तराधिकार प्रथा तथा धार्मिक प्रथाएं भारत के आर्थिक विकास में बाधक है। इनके कारण लोग कार्य करने के पुराने ढंग को नहीं छोड़ते तथा आधुनिक तरीकों का विरोध करते हैं।

10. रोजगार की संरचना (Structure of Employment)

पिछले पचास वर्षो से रोजगार संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। 1951 में 73 प्रतिशत कर्मचारी प्राथमिक क्रियाओं में लगे हुए थे, 11 प्रतिशत द्वितीयक क्रियाओं में तथा 16 प्रतिशत ततीयक क्रियाओं में लगे हुए थे। 1999-2000 में प्राथमिक क्रियाओं में 60 प्रतिशत लगे हुए थे।

11. आय तथा सम्पति का असमान वितरण (Unequal distrabution of Income and Property)

भारत में आय तथा सम्पति का असमान वितरण हैं। आय तथा सम्पति का कुछ लोगों के हाथ में केन्द्रीकरण है। 1970 में 40% से अधिक सम्पति 20% लोगों के स्वामित्व में थी।

12. बेरोजगारी की समस्या (Problem of Unemployment)

बेरोजगारी का अर्थ है कार्य के लिये स्वस्थ शरीर वाले, दक्ष तथा कार्य करने के लिये तत्पर व्यक्तियों को अपनी जीविका कमाने के लिऐ कार्य का प्राप्त न होना। जनसंख्या वद्धि के कारण भारत में बेरोजगारी की समस्या वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौती है। यह समस्या आर्थिक है इससे निर्धनता को बढ़ावा मिलता हैं। बेरोजगार लोग देश के उत्पादन में अपना योगदान नही कर पाते और वे अर्थव्यवस्था में औसत उत्पादन को घटा देते है। आर्थिक समस्या के साथ–साथ यह सामाजिक समस्या भी हैं। अधिक देर तक बेरोजगार रहने से व्यक्ति अपना मानसिक सन्तुलन खो देता है। बेरोजगारी से चोरी, डकैती, लूटमार, बेईमानी, आत्महत्या आदि को बढ़ावा मिलता है।

इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने कई चुनौतियां हैं जिसका सामना करके भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाकर संसार का श्रेष्ठ राष्ट्र बनाया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने मुख्य विचारणीय विषय क्या हैं?

9.3 सारांश (Summary)

भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्मुख अनेक विचारणीय विषय है जिनमें से प्रमुख विषय है निम्न प्रति व्यक्ति आय, कषि की प्रधानता, पूंजी का अभाव, असन्तुलित आर्थिक विकास, औद्योगिकरण का अभाव, यातायात के साधनों की कमी, तथा बाजार की अपूर्णता प्रमुख हैं।

9.4 आदर्श उत्तर

(i) इस प्रश्न के उत्तर के लिये छात्र 9.2 भाग को पढ़े।

9.5 मुख्य शब्द

बेरोजगारी : कार्य के लिए स्वस्थ शरीर वाले, दक्ष तथा कार्य करने के लिए तत्पर व्यक्ति को अपनी जीविका कमाने के लिए काम न मिलना।

9.6 सन्दर्भ पुस्तकें

Social Science Syllabus for Middle and High Classes by N.C.E.R.T., New Delhi.

इकाई-II

राष्ट्रीय प्रतीक

(National Presumes)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि –

– विभिन्न राष्ट्रीय प्रतीकों का वर्णन कर सकें।

सरंचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 राष्ट्रीय प्रतीक

10.3 सारांश

10.4 आदर्श उत्तर

10.5 मुख्य शब्द

10.6 सन्दर्भ पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक विशाल देश है। यहॉ विभिन्न जातियों के लोग रहते हैं। वे विभिन्न धर्मो का पालन करते हैं और भिन्न–2 भाषाऐं बोलते हैं। भारत के अनेक प्रदेश भौतिक विशेषताओं, वनस्पति, जलवायु आदि में भिन्न हैं लेकिन भारत में विविधता में एकता अंतर्निहित है। हमारे यहॉ एकता की लम्बी और मूल परम्परा रही है जो हमें बताती रहती है कि हम एक राष्ट्र और एक मातभूमि से संबद्ध हैं।हमें अपने देश पर गर्व है।

10.2 राष्ट्रीय प्रतीक (National Symbols)

विश्व के स्वतन्त्र देशों के समान, हमारे भी अपने राष्ट्रीय प्रतीक हैं। राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गान और राष्ट्रीय चिह्न हमारे सर्वाधिक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रतीक है। ये राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं और हमारे अंदर अभिन्नता की भावना भरते हैं। ये हमें हमारे मतभेदों को भूलाने योग्य बनाते हैं और हमें एक राष्ट्र का बोध कराते हैं। ये हमारी राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता के प्रतीक हैं। हम हमारे राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान करते हैं और जो कोई उनका अपमान करता हैं, सम्पूर्ण देश का अपमान करता हैं।

1. राष्ट्रीय ध्वज (National Flag)

भारतीय संविधान सभा ने राष्ट्रीय ध्वज का अनुमोदन 22 जुलाई 1947 को किया था। यह भारत के लोगों की ओर से 14 अगस्त, 1947 को सभा के मध्य रात्रि सत्र में, राष्ट्र को समर्पित किया गया था। प्रथम बार इसे 15 अगस्त 1947 को फहराया गया था। यह ध्वज आयताकार हैं। इसकी लम्बाई और चौड़ाई में 3:2 का अनुपात हैं।

हमारा राष्ट्रीय ध्वज क्षैतिजकार तीन बराबर भागों में विभाजित है। ये भाग तीन विभिन्न रंगों के हैं। सबसे ऊपरी हिस्से पर केसरिया है, बीच वाली पट्टी विशुद्ध श्वेत रंग की हैं और निचली पट्टी गहरे हरे रंग की है और

बीच में अशोक चक्र। राष्ट्रीय ध्वज के लिये हथकरघा से बनी खादी के अतिरिक्त अन्य किसी वस्त्र का उपयोग नहीं किया जाता है।

ध्वज के रंगों का अपना अलग महत्व हैं। केसरिया रंग अपने पिछले लम्बे इतिहास और परम्परा को छिपाए हैं। केसरिया रंग त्याग, बलिदान और साहस का प्रतीक हैं। यह हमारे स्वतन्त्रता सेनानियों द्वारा प्रदर्शित महान् साहस, देशभक्ति और बलिदान का स्मरण कराता हैं, जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों तक को न्यौछावर कर दिया था। श्वेत रंग सच्चाई और निर्मलता का समर्थक हैं। श्वेत रंग हमें सत्यनिष्ठ, निर्मल और सरल जीवन के लिए प्रेरित करता हैं। हरा रंग जीवन, बाहुल्यता और सम्पन्नता का प्रतीक हैं।

प० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, "हमारा तिरंगा झंडा किसी साम्राज्य का ध्वज नहीं हैं। साम्राज्यवाद का ध्वज नहीं हैं, वरन् स्वतन्त्रता का ध्वज हैं, केवल हमारे स्वयं के लिये ही नहीं, वरन् सभी लोगों की स्वतन्त्रता का एक प्रतीक हैं जो देख सकते हों।"

सभी पट्टी के बीचों बीच एक चक्र है। इसका व्यास पूरी सफेद पट्टी की चौड़ाई के बराबर है और इसमें 24 कमानियाँ हैं। चक्र की ऐतिहासिक महता हैं। इसे सारनाथ के अशोक स्तम्भ से लिया गया हैं। अशोक स्तंभ में चक्र धर्म का प्रतीक हैं। चक्र गति और उन्नति का संकेत करता हैं। ध्वज का चक्र हमें धर्म का मार्ग अपनाते हुए देश की उन्नति और खुशहाली की ओर ले जाने की प्रेरणा देता हैं।

हमारे ध्वज इस प्रकार हमारी एकता और सम्प्रभुता का प्रतीक है और हमें स्वतन्त्रता आंदोलन की याद दिलाता हैं। यह सभी महत्वपूर्ण सरकारी भवनों जैसे संसद भवन, सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, राज्य विधान मण्डल तथा अपने घरों पर राष्ट्रीय पर्वों पर फहराया जाता हैं। यह विदेशों में भारतीय दूतावास भवनों पर भी फहराया जाता हैं।

इसे आदर के रूप में तब नीचे झुकाया जाता है जब किसी महान् राष्ट्रीय नेता अथवा किसी मित्र देश के माननीय व्यक्ति की मत्यु हो जाती है।

हम अनेक प्रकार से अपने राष्ट्रीय ध्वज के प्रति सम्मान कर सकते हैं।

(1) राष्ट्रीय ध्वज को सावधानी पूर्वक पकड़ना और फहराना चाहिए। इसकी केसरिया पट्टी सदैव ऊपर की ओर रहनी चाहिए।

(2) राष्ट्रीय ध्वज के ऊपर कुछ भी नहीं रखना चाहिए।

(3) जब विभिन्न ध्वज फहराने हो तो राष्ट्रीय ध्वज को सबसे ऊपर फहराना चाहिए।

(4) यदि जुलूस में राष्ट्रीय ध्वज लेकर जाना हो तो मध्य क्रम में सबसे आगे अथवा दाएँ कंधे पर लेकर चलना चाहिए।

(5) राष्ट्रीय ध्वज (तिरंगे) को केवल महत्वपूर्ण दिवसो पर ही फहराना चाहिए और महत्वपूर्ण भवनों पर हमेशा फहराया जाना चाहिए।

(6) राष्ट्रीय ध्वज को मोटरकार अथवा अन्य वाहनों पर नहीं लगाना चाहिए।

(7) किसी भी उद्देश्यों के लिए राष्ट्रीय ध्वज का उपयोग नहीं करना चाहिए।

(8) राष्ट्रीय ध्वज को सूरज डूबने पर उतार लेना चाहिए।

लेकिन हमें यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्रीय ध्वज, भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ध्वज से सर्वथा भिन्न हैं। काँग्रेस के ध्वज में चक्र के स्थान पर बीच में चरखा हैं।

यदि हम विभिन्न देशों के राष्ट्रीय ध्वजों का अवलोकन करें तो हम आसानी से ज्ञान कर सकते हैं कि हमारा राष्ट्रीय ध्वज नाइजीरिया और हंगरी के राष्ट्रीय ध्वजों के साथ बहुत मिलता जुलता हैं। ध्वजों के तीनों रंग को ऊपर से नीचे तक उनकी स्थिति बहुत अधिक एक जैसी हैं।

2. राष्ट्रीय गान (National Anthem)

राष्ट्रीय गान और राष्ट्रीय ध्वज एक दूसरे से निकट से जुड़ें हुए हैं। राष्ट्रीय ध्वज फहराने के तुरन्त बाद राष्ट्रीय गान गाया जाता हैं। भारतीय संविधान सभा ने रवीन्द्रनाथ टैगार द्वारा रचित 'जन गण मन' को राष्ट्रीय गान के रूप में 24 जनवरी 1950 में अंगीकत किया। यह गान 27 दिसंबर 1911 को कांग्रेस अधिवेशन के कोलकता अधिवेशन में पहली बार गाया गया।

राष्ट्रीय गान हमारी मातभूमि की प्रशंसा में गाया जाता हैं। यह हमारी स्वतन्त्रता, एकता, सम्मान और गरिमा का प्रतीक हैं। राष्ट्रीय गान के गायन के समय हमें निश्चित नियमों का पालन करना चाहिए।

(1) जब राष्ट्रीय गाान गाया जाता है तो हमें सावधान की अवस्था में खड़े रहना चाहिए। उस समय किसी भी स्थिति में न हिलना चाहिए और न ही बातचीत करनी चाहिए।

(2) हमें ठीक–ठाक गाना चाहिए।

(3) हमें राष्ट्रीय गान के शब्द और अर्थ याद करने चाहिए।

(4) कोरस में गाते समय एक लय और पूरे उत्साह के साथ गाना चाहिए।

(5) राष्ट्रीय गान का गायन समय 52 सैंकेण्ड हैं, अतः इसे निर्धारित समय में गाना चाहिए।

3. राष्ट्रीय चिह्न (National Sign)

संसार के अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों की भांति, भारत का भी अपना राष्ट्रीय चिन्ह हैं। भारत का राष्ट्रीय चिह्न सारनाथ स्थित अशोक की शेर की लाट से लिया गया हैं, जैसा कि यह सारनाथ सग्रंहालय में सरंक्षित हैं। इसे सम्राट अशोक ने सारनाथ में महात्मा बुद्ध के प्रथम धर्म प्रवचन की स्मति में बनवाया था। इसे भारत सरकार ने 26 जनवरी 1950 में अंगीकत किया।

इस चिन्ह को हम सभी सरकारी दस्तावेजों, सरकारी प्रकाशनों, नोटों, सिक्को और डाक टिकटों पर देख सकते हैं। चिन्ह के दो भाग हैं– शीर्ष और आधार। शीर्ष में तीन शेर दिखाई देते हैं जो पट्टीनुमा आधर पर पीठ से पीठ मिलाए हुए हैं। वास्तव में चार शेर हैं। परन्तु चौथा शेर चित्र में दिखाई नहीं देता। आधार में बाई और एक घोड़ा, दाई और एक वषभ और बीच मे चक्र हैं। शीर्ष के नीचे आदर्श वाक्य लिखा हैं 'सत्यमेव जयते'। यह वाक्य देवनागरी लिपि में लिखा हुआ हैं। इसका अर्थ हैं –सत्य की विजय होती हैं।

चक्र धर्म का प्रतीक हैं। शेर साहस का शक्ति का और प्रभुत्व का हैं। अश्व गति और उर्जा का प्रतिनिधित्व करता हैं। वषभ कठिन परिश्रम का चिह्न हैं। ये वे गुण हैं जिन्हें इस देश के सभी नागरिकों को अपने चरित्र मे अपनाने चाहिए।

4. राष्ट्रीय गीत (National Song)

बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' को 'जन गण मन' के समान ही दर्जा प्राप्त है। पहली बार इसे भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के कोलकता अधिवेशन में 1896 में गाया गया था। तब से यह गीत स्वतन्त्रता संग्राम में लगे भारतीय लोगों की प्रेरणा का एक बड़ा स्रोत रहा।

5. राष्ट्रीय कैलेण्डर (National Calender)

एक जैसा राष्ट्रीय कैलेण्डर 22 मार्च, 1957 से ईसवीं सन् के साथ अंगीकत किया गया। यह शक संवत् पर आधारित था। यह प्रथम माह चैत्र के साथ आरम्भ होता हैं।

शक संवत् ईसवीं सन् से 78 वर्ष आगे हैं सभी सरकारी प्रकाशनों और आदेशों में शक तिथियाँ देखी जा सकती हैं।

6. राष्ट्रीय पक्षी (National Bird)

मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी हैं। यह सत्य है कि प्रकति ने मोर को अपने कलात्मक कौशल से सजाया–संवारा

है अतः मोर को राष्ट्रीय पक्षी के रूप में अंगीकत किया गया।

7. राष्ट्रीय पुष्प (National Flower)

कमल हमारा राष्ट्रीय पुष्प हैं। यह एकता का जीवंत प्रतीक है जैसे इसकी सभी पँखुड़ियां आपस में जुड़ी हुई हैं, वैसे ही सभी भारतीय नागरिकों को जुड़ा होना चाहिए।

8. राष्ट्रीय पशु (National Animal)

भारत सरकार ने 19 जुलाई 1969 को शेर को राष्ट्रीय पशु के रूप में अंगीकत किया। किन्तु बाद में देश के राष्ट्रीय पशु के रूप में शेर का स्थान बाघ ने ले लिया था।

अपनी प्रगति जांचिए

1. किन्हीं तीन राष्ट्रीय प्रतीक के नाम बताएं।

10.3 सारांश (Summary)

भारत एक विशाल देश है और विश्व के स्वतन्त्र देशों के समान हमारे भी राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गान और राष्ट्रीय चिह्न हमारे सर्वाधिक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रतीक है। ये राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं और हमारे अन्दर एक राष्ट्र का बोध कराते हैं। ये हमारी राष्ट्रीय एकता और स्वतन्त्रता के प्रतीक हैं। हम राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान करते हैं। जो कोई उनका अपमान करता हैं वह सम्पूर्ण देश का अपमान करता हैं।

10.4 आदर्श उत्तर

इस प्रश्न के उत्तर के लिये छात्र भाग 10.2 देखें।

10.5 मुख्य शब्द

राष्ट्रीय प्रतीक – ये देश की एकता और पहचान के प्रतीक हैं। ये हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की देन है।

10.6 सन्दर्भ पुस्तकें

Social Science syllabus for Middle and High Classes by N.C.E.R.T., New Delhi.

इकाई-II

चालू पंचवर्षीय योजना
(Current Five Year Plan)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि –

– चालू पंचवर्षीय योजना का वर्णन कर सकें।

– दसवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य बिन्दुओं की सूची बना सकें।

सरंचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 चालू पंचवर्षीय योजना

11.3 दसवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य बिन्दु

11.4 सारांश

11.5 आदर्श उत्तर

11.6 मुख्य शब्द

11.7 सन्दर्भ पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

11.2 चालू पंचवर्षीय योजना (Current Five Year Plan)

भारत की दसवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 2002 से प्रारम्भ हुई हैं, 2002-07 की अवधि वाली इस योजना के प्रारूप को योजना आयोग की 5 अक्तूबर 2002 की बैठक में मंजूरी प्रदान की गई थी। योजना दस्तावेज को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने बाद में 29 अक्तूबर को व राष्ट्रीय विकास परिषद् ने 21 दिसम्बर 2002 को अनुमोदित कर दिया।

देश में गरीबी व बेरोजगारी को समाप्त करने तथा दस वर्षों में प्रति व्यक्ति आय दोगुनी करने के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए 8 प्रतिशत की सालाना आर्थिक वद्धि दर का लक्ष्य 10 वीं पंचवर्षीय योजना में निर्धारित किया गया हैं। विगत वर्षों में यह दर औसतन 5.5 प्रतिशत के आसपास ही बनी हुई थी तथा नौवीं पंचवर्षीय योजना में यह 5.5 प्रतिशत रही हैं। विकास दर को 5.5 प्रतिशत के 'स्थिर स्तर से निकालकर 8 प्रतिशत तक ले जाने के लिए यह 6.8 प्रतिशत प्रति वर्ष, अरूणाचल प्रदेश के लिए 8 प्रतिशत प्रति वर्ष व असम के लिए 6.2 प्रतिशत होगा। गुजरात व कर्नाटक में घरेलू उत्पाद में क्रमशः 4 प्रतिशत व 7.2 प्रतिशत की वद्धि नौवी योजना में प्राप्त की गई हैं जबकि दसवीं योजना में इनके लिए क्रमशः 10.2 प्रतिशत व 10.1 प्रतिशत सालाना वद्धि के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। उत्तर प्रदेश में जहाँ 4 प्रतिशत वार्षिक वद्धि नौवी योजना में प्राप्त की गई हैं, दसवीं योजना के लिए 7.6 प्रतिशत सालाना वद्धि का लक्ष्य हैं विभिन्न राज्यों के लिए दसवीं पंचवर्षीय योजना के वार्षिक विकास दर के लक्ष्य अलग–अलग हैं।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय 15,92,300 करोड़ रूपये निर्धारित किया गया हैं। इसमें केन्द्र की योजना का परिव्यय 9,21,291 करोड़ रूपये तथा राज्यों व केन्द्रशासित क्षेत्रों का परिव्यय 6,71,009 करोड़ रूपये होगा, योजना के लिए बजटीय सहायता 7,06,000 करोड़ रूपए निर्धारित की गई हैं। योजनावधि में सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश से 78,000 करोड़ रूपये जुटाने का लक्ष्य है। साथ ही विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का अर्न्तप्रवाह 7.5 अरब डॉलर प्रतिवर्ष किया जाएगा। 8 प्रतिशत विकास को प्राप्त करने के लिए निवेश दर सकल घरेलू उत्पाद का 28.4 प्रतिशत होगी। इसमें घरेलू बचत दर जीडीपी का 26.8% होगी। इसमें घरेलू बचत दर जीडीपी का 26.8% होगी, जबकि बाहरी पूँजी पर निर्भरता जीडीपी के 1.6 प्रतिशत के बराबर होगी। योजना में विधुत की कुल 41110 मेगावाट अतिरिक्त क्षमता के सजन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है इसमें 25417 मेगावाट ताप विधुत की 14393 मेगावार क्षमता जलविधुत की व शेष 1300 मेगावाट परमाणु ऊर्जा से सजित की जाएगी।

योजना की पाँच वर्षो की अवधि में प्रतिवर्ष एक करोड़ की दर से रोजगार के पाँच करोड़ अवसर सजित किए जाएगे। योजना के अन्त तक कर जीडीपी अनुपात को 8.6 % से बढ़ाकर 10.3 प्रतिशत करने व गैर योजना व्यय को जीडीपी के 11.3 प्रतिशत से घटाकर 9 प्रतिशत करने का लक्ष्य हैं। योजना के अन्त तक देश में साक्षरता दर को बढ़ाकर 75 प्रतिशत करने, शिशु मत्यु दर को घटाकर 45 प्रति हजार करने तथा वनाच्छादन को बढ़ाकर 25 प्रतिशत करने का लक्ष्य हैं।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में लक्षित 8 प्रतिशत की वार्षिक आर्थिक वद्धि दर तथा साथ ही अलग अलग राज्यों के लिए लक्षित विभिन्न वद्धि दरों के लक्ष्य प्राप्त होने की स्थिति में इस योजना के अन्त में देश में निर्धनता अनुपात अर्थात् कुल जनसंख्या में निर्धनता रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली जनसंख्या का अनुपात 19.34 प्रतिशत रह जाएगा। दसवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में यह जानकारी देते हुए योजना आयोग ने बताया हैं कि उस स्थिति में सन् 2007 में देश में निर्धनों की कुल संख्या 22 करोड़ होगी तथा निर्धनता का सर्वाधिक प्रकोप बिहार व झारखण्ड व उड़ीसा में होगा।

योजना आयोग के आंकलन में दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश में निर्धनता रेखा से नीचे की जनसंख्या जहाँ 19.34 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया गया हैं, वही ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों मे अलग–अलग यह क्रमशः 21.07% प्रतिशत व 15.05 प्रतिशत सम्भावित हैं, निरपेक्ष रूप में वर्ष 2007 में देश की कुल 22 करोड़ निर्धन जनसंख्या में 17 करोड़ जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों की व 5 करोड़ से कुछ कम शहरी क्षेत्रों की होगी।

11.3 दसवीं पंचवर्षीय योजना के मुख्य बिन्दु (Main Features of Tenth Five Year Plan)

1. योजना अवधि (2002-07) के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में सालाना 8% की वार्षिक वद्धि का लक्ष्य।
2. गरीबी को 2007 तक 20 प्रतिशत तथा 2010 तक 10% के अनुपात तक कम करना।
3. दसवीं योजना में पाँच करोड़ रोजगार के अवसरों के सजन का लक्ष्य।
4. साक्षरता दर को 2007 तक 75% तथा 2012 तक 80% करने का लक्ष्य।
5. 2007 तक शिशु मत्यु दर घटाकर 45 प्रति हजार करने का और 2012 तक 28 प्रति हजार करने का लक्ष्य।
6. 2007 तक सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा तक पहुँचने का लक्ष्य।
7. वनाच्छादन को 2007 तक बढ़ाकर 25% तथा 2012 तक 33% करने का लक्ष्य।
8. प्रतिवर्ष 7.5 अरब डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का लक्ष्य।
9. पाँच वर्ष में 78,000 करोड़ रूपये का विनिवेश का लक्ष्य।
10. सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 15,92,300 करोड़ रूपए।
11. निवेश दर सकल घेरलू उत्पाद (जी. डी. पी.) की 28.4 प्रतिशत ।

12. 2012 तक सभी गाँव तक पीने पानी की सुविधा उपलब्ध करवाना।

13. कुटीर उद्योग, जो ग्रामीण क्षेत्र के लिये कषि के अतिरिक्त लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने की विशेष कोशिश का भी प्रावधान किया गया है।

इस प्रकार पंचवर्षीय योजना के माध्यम से देश की प्रगति के अवसर बढ़ेगें।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) दसंवी पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का कुल कितना परिव्यय निर्धारित किया गया हैं?

11.4 सारांश (Summary)

भारत की दसवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 2002 से प्रारम्भ हुई हैं। 2002 से 2007 की अवधि वाली इस योजना के प्रारूप को योजना आयोग की 5 अक्तूबर 2002 की बैठक में मंजूरी प्रदान की गई थी। इसका कार्य देश में गरीबी व बेरोजगारी को समाप्त करने तथा दस वर्षों में प्रति व्यक्ति आय दोगुनी करने का लक्ष्य हैं। इस प्रकार पंचवर्षीय योजना के माध्यम से देश की प्रगति के अवसर होगें।

11.5 आदर्श उत्तर

(i) कुल परिव्यय 15, 92,300 करोड़ रूपये निर्धारित किया गया है।

11.6 मुख्य शब्द

पंचवर्षीय योजना : वह योजना जो पाँच वर्षों के लिये हो।

11.7 सन्दर्भ पुस्तकें

Social Sciences Syllabus for middle and high school by N.C.E.R.T., New Delhi.

इकाई-II

शैक्षणिक विश्लेषण

(Pedagogical Analysis)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षण वह प्रक्रिया है जो उद्दीपनों के माध्यम से वांछित व्यवहार परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। शिक्षक इस कार्य का संचालन करने के लिए अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरता है। सबसे पहले वह उस विषय वस्तु का चुनाव करता है जिसे उसे पढ़ाना है। उस विषय वस्तु के मुख्य बिन्दुओं का विश्लेषण करता है। किस–किस मुख्य बिन्दु के अन्तर्गत कौन सी विषय सामग्री पढ़ानी है तथा उस बिन्दु के उपबिन्दु कौन–कौन से हैं, इन सब का पूर्व निश्चय अध्यापक के द्वारा किया जाता है।

12.2 व्यवहारगत उद्देश्य (Behavioural Objectives)

विषय वस्तु का चुनाव करने के पश्चात् अध्यापक यह निश्चित करता है कि इस प्रकरण में किन – किन तत्त्वों पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। विषय वस्तु का विश्लेषण कर लेने के बाद वह यह तय करता है कि सज्ञानात्मक, भावानात्मक एवं क्रियात्मक कौशलों के संदर्भ में विद्यार्थी के व्यवहार में क्या – क्या परिवर्तन अपेक्षित हैं। शिक्षण की योजना बनाने से पूर्व अधिगम निष्पत्तियों (प्रतिफलों) को निर्धारित करना अति आवयक है, क्योंकि विद्यार्थियों द्वारा इनकी प्राप्ति के लिए ही अपयुक्त अधिगम अनुभवों का चयन करना होता है। विषय वस्तु विभिन्न शिक्षण उद्देश्यों को विस्तार प्रदान करती है। अतः शिक्षण के लिए किसी विषय से सम्बन्धित शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों की विस्तत सूची तैयार करना कुछ जरूरी होता है। शिक्षण उद्देश्य अधिगम प्रतिफल बताते हैं अतः वे विद्यार्थी के व्यवहार में आने वाले अपेक्षित परिवर्तन का संकेत देते हैं। इसलिए व्यवहारगत उद्देश्य निश्चित करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिएः

– प्रत्येक उद्देश्य को विद्यार्थी के केवल एक ही व्यवहार की ओर संकेत करना चाहिए।

– विद्यार्थी का वह व्यवहार दष्टिगोचर होना चाहिए।

– जिनमें व्यवहार प्रकट होता है, उन परिस्थितियों का भी उद्देश्यों में उल्लेख होना चाहिए और

– व्यवहार निष्पादन के मानक का भी उल्लेख शिक्षण उद्देश्यों में होना चाहिए।

12.3 अध्यापन-अधिगम क्रियाएं (Teaching-learning Activities)

अध्यापन–अधिगम क्रियाओं में ऐसी शिक्षण विधियां एवं तकनीकें सम्मिलित की जाती है जो विद्यार्थी द्वारा शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करती हैं। विद्यार्थी को सीखने के अच्छे–अच्छे अनुभव प्रदान कराने के लिए इनमें घटनाओं की प्रकति, कार्यक्षेत्र एवं क्रम आदि का समावेश किया जाता है। विविध प्रकार के अधिगम अनुभवों की कार्यनीति बनाते समय अध्यापन, अधिगम क्रियाओं में उपलब्ध भौतिक तथा मानवीय संसाधनों को ध्यान में रखा जाता है। शिक्षण की कार्यनीति तैयार करते समय हमें प्रारम्भ में ही यह तय करना होता है कि उस विषय विशेष पर विचार किस ढंग से किया जाए। सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्य आगमनात्मक उपागम द्वारा अधिक प्रभावी होता है क्योंकि विद्यार्थी पहले अपने आसपास की विविध घटनाओं का प्रेक्षण करता है और फिर उनमें कार्यरत निहित सिद्धान्तों को समझता है। इस उपागम के द्वारा विश्लेषणात्मक सोच का विकास होता है।

12.4 मूल्यांकन तकनीक (Evaluation Techniques)

अपने शिक्षण कार्य के तथा विद्यार्थी के अधिगम के मूल्यांकन हेतु अध्यापक के पास विभिन्न तकनीकें है परन्तु उसे

पहले से ही निश्चित करना होता है कि वह किस प्रकार के मूल्यांकन तकनीक का प्रयोग करेगा। इन का प्रयोग वह शिक्षण के साथ–साथ भी कर सकता है और शिक्षण के पश्चात् भी कर सकता है।

12.5 ग्लोब, अक्षांश तथा देशांतर रेखाएं

इस उपविषय की विषय वस्तु पिछले सातवें अध्याय में दी गई हैं, उसी आधार पर इस उपविषय का शैक्षणिक विश्लेषण नीचे दिया जा रहा है। इस शैक्षणिक विश्लेषण की तरह विद्यार्थी दूसरे उपविषयों का भी शैक्षणिक विश्लेषण कर सकेंगे। इसके लिए सबसे पहले शिक्षण तत्वों को जानना जरूरी है। इस प्रकरण से सम्बन्धित तत्व इस प्रकार है :–

(i) ग्लोब (ii) अक्षांश रेखाएं

(iii) देशांतर रेखाए

शिक्षण बिन्दु	व्यवहारगत उद्देश्य	क्रियात्मक प्रयोग	मूल्यांकन
ग्लोब	विद्यार्थी : * ग्लोब का आकार बता सकेंगे। * ग्लोब तथा मानचित्र में अंतर कर सकेंगे। * ग्लोब में कुछ पर्यटन स्थल ढूंढ सकेंगे।	* अध्यापक पथ्वी के आकार की संकल्पना करने के लिए कहता है और बताता है कि पथ्वी का आकार गोल है और इसकी गेंद से तुलना करता है। जैसे गेंद के सारे भागों को सामने से हम एक साथ नहीं देख सकते उसी प्रकार संपूर्ण पथ्वी को हम स्थल पर खड़ें होकर नहीं देख सकते। इसे अंतरिक्ष में जाकर ही देखा जा सकता है। * अध्यापक ग्लोब पर विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करेगा और उन्हें भारत तथा अमेरिका ढूंढने के लिए कहेगा। * ग्लोब के सामने मोमबत्ती रखकर वह पूछेगा कि इसका प्रकाश कहाँ पड़ रहा है और इसके पीछे क्या प्रभाव है। * इसी आधार पर विद्यार्थी दिन रात तथा ऋतु परिवर्तन के बारे में समझ जाएंगे।	* पथ्वी की आकति को जानने के लिए किस चीज का प्रयोग किया जाता है? * ग्लोब पर भारत तथा अमेरिका की स्थिति बताइए। * जब भारत में दिन होता है तो अमेरिका में रात क्यों होती है? * ग्लोब के सामने मामेबत्ती रखने से क्या प्रभाव पड़ता है?

शिक्षण बिन्दु	व्यवहारगत उद्देश्य	क्रियात्मक प्रयोग	मूल्यांकन
अक्षांश रेखा विषुवत् रेखा कर्क रेखा और मकर रेखा की संकल्पना	* छात्र मानचित्र पर पूर्व–पश्चिम दिशा में खींची गई संमानान्तर रेखाओं को अक्षांश रेखाओं के रूप में पहचान सकेंगे। * अक्षांश रेखाएं 180^0 पर होती हैं– इसे समझा सकेंगे। * अक्षांश रेखाएं किस प्रकार खींची जाती हैं– इसे समझा सकेंगे। * तीन प्रमुख अक्षांश रेखाओं के नाम बता सकेंगे (विषुवत्, कर्क और मकर रेखाएं) * प्रत्येक अक्षांश के नीचे की दूरी किलोमीटर में जान जाएंगे। * अक्षांश रेखाओं को उत्तरी अक्षांश रेखाएं तथा दक्षिणी अक्षांश रेखाएं कहने के कारण की व्याख्या कर सकेंगे।	* शिक्षक मानचित्र पर खींची गई क्षैतिज रेखाओं पर छात्रों का ध्यान आकष्ट करते हुए बताता है कि इन रेखाओं को अक्षांश रेखाएं कहते हैं साथ ही छात्रों की शंका का समाधान करते हुए बताता है कि ये रेखाएं काल्पनिक हैं। इन्हें ग्लोब पर दिखाता है। शिक्षक अक्षांशों के बारे में निम्नलिखित जानकारी देता हैं :– (i) दोनों ध्रुवों के बीचों–बीच पथ्वी की सतह को घेरने वाली काल्पनिक रेखा को विषुवत् वत्त (या विषुवत् रेखा) कहते (ii) विषुवत् वत्त का अक्षांश 0^0 हैं। (iii) पथ्वी सतह पर किसी स्थान की विषुवत् वत्त से कोणात्मक दूरी को उस स्थान का अक्षांश कहते हैं। (iv) विषुवत् वत्त से उत्तरी ध्रुव तक जाने में पथ्वी की कुल परिधि का चौथाई भाग या 90^o पर करते हैं। (v) इसीलिए विषुवत् वत्त से उतरी ध्रुव या दक्षिणी ध्रुव के बीच की दूरियों को नब्बे – नब्बे अंशों को नब्बे अंशों में बांटते हैं। इसका चित्र नीचे दिया जा रहा है :– उत्तरी ध्रुव 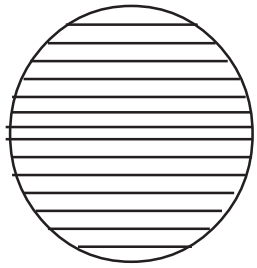 दक्षिणी ध्रुव	* विषुवत् वत्त किसे कहते हैं? अक्षांश रेखा में अंतर बताइए। कर्क और मकर रेखाओं के अंक्षाश क्या हैं?

शिक्षण बिन्दु	व्यवहारगत उद्देश्य	क्रियात्मक प्रयोग	मूल्यांकन
* देशांतर रेखाओं की संकल्पना	* देशांतर रेखाओं की परिभाषा बता सकेंगे। * छात्र बता सकेंगे कि पथ्वी पर कुल 360^0 देशान्तर रेखाएं हैं। * छात्र देशांतर रेखाओं को मानचित्र में दर्शा सकेंगे। * प्रत्येक अंश देशान्तर के बीच का समय चार मिनट क्यों है? इसे समझा सकेंगे। देशांतरों को पूर्वी और पश्चिमी देशांतर क्यों कहते हैं? यह समझा सकेंगे।	(vi) शिक्षक तीन प्रमुख अक्षांशों पर छात्रों का ध्यान आकर्षित करता हैं :– 1. 0^0 अक्षांशः विषुवत् वत्त 2. $23\text{-}1/2^0$ उत्तरी अक्षांश : कर्क वत्त। 3. $23\text{-}1/2^0$ दक्षिणी अक्षांश : मकर वत्त (vii) दो लगातार अक्षांशों के बीच की दूरी लगभग 111 किलोमीटर होती है। ध्रुवों के निकट पथ्वी की सतह कुछ चपटी होने के कारण यह दूरी कुछ अधिक होती है। (viii) शिक्षण छात्रों से पूछता है कि कर्क वत्त और मकर वत्त के अक्षांश क्रमशः $23\text{-}1/2^0$ उत्तर और $23\text{-}1/2^0$ दक्षिणी क्यों है। शिक्षक श्यामपट्ट पर एक वत्त बनाएगा और उसमें 360^0 (कोण) डालेगा। इसे देखकर छात्र समझेंगे कि एक वत्त में 360^0 अंश होते हैं। एक ध्रुव से दूसरे को मिलाने वाली ऊर्ध्वाधर रेखाओं (जो ग्लोब पर खींची होती हैं) की संख्या 360^0 है और इन्हें देशांतर रेखाएं कहते हैं। ग्लोब पर विषुवत् रेखा एक पूर्व वत्त है और इसके 360 बराबर भाग किए गए हैं। प्रत्येक भाग को उत्तर और दक्षिण ध्रुवों से अर्थ वत्ताकार ऊर्ध्वाधर रेखा द्वारा मिलाया गया है। इन ऊर्ध्वाधर रेखाओं को देशांतर या मध्याह्न रेखाएं कहते है। **छात्रः** देशांतर रेखाओं को पूर्वी या पश्चिमी देशांतर क्यों कहा जाता है? **शिक्षकः** जो देशांतर रेखा लंदन नगर के पास टेम्स नदी पर स्थित प्रकार मदद करते हैं? ग्रीनविच से गुजरता है उसे प्रधान मध्याह्न रेखा या 0^0 की देशांतर रेखा कहते है। ग्रीनविच में एक प्रसिद्ध वेधशाला स्थित है, इसीलिए इस स्थान का महत्व है। हम ग्रीनविच से पूर्व और पश्यिम दिशा में देशांतर रेखाओं की गिनती अंशों में करते हैं।	देशांतर रेखाएं किसे कहते हैं? देशांतर रेखाओं की कुल संख्या कितनी है? प्रधान मध्याह्न रेखा का क्या अर्थ है? हम देशांतरों के बीच समय की गणना किस प्रकार करते हैं? देशान्तर रेखा का क्या उपयोग है? ग्लोब पर किसी स्थान पर किसी स्थान की स्थिति कैसे ज्ञात की जा सकती है। ग्रीनविच से पूर्व और पश्चिम दिशा में देशांतर रेखाओं की गिनती किसमें की जाती है?

शिक्षण बिन्दु	व्यवहारगत उद्देश्य	क्रियात्मक प्रयोग	मूल्यांकन
अक्षांश और देशांतर रेखाओं का उपयोग	छात्र स्थानों की स्थिति बताने में अक्षांश और देशांतर रेखाओं की उपयोगिता बता सकेंगे। पथ्वी पर किसी स्थान की स्थिति मालूम करने में अक्षांश और देशांतर रेखाओं का उपयोग कर सकेंगे। प्रधान मध्याह्न रेखा के पूर्व या पश्चिम में स्थित स्थानों में स्थित स्थानों का समय निकाल सकेंगे।	ग्रीनविच के पूर्व की देशांतर रेखाओं की पूर्वी और पश्चिमी देशांतर रेखा एक ही है। शिक्षक देशांतर रेखाएं श्यामपट्ट पर खींचता है और उसे छात्र अपनी अभ्यास पुस्तिका में बनाते हैं। इससे उनमें देशांतर रेखाएं खींचने में कुशलता का विकास होता हैं। **छात्र** : किसी स्थान पर समय मालमू करने मे देशान्तर हमारी किस प्रकार मदद करते हैं या समय की गणना किस प्रकार की जाती है? **शिक्षक**: आप जानते हैं कि पथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन करती हुई 24 घंटों में चक्कर लगा लेती है। इस प्रकार 15^0 देशांतरों का घूर्णन करने में 1 घंटे का समय लगता हैं। प्रधान मध्याह्न रेखा ग्रीनविच से गुजरती है और इसका देशांतर 0^0 पूर्वी देशांतर पर समय 12 बज रहे हैं तो 1^0 पश्चिमी देशांतर पर समय 11.56 पूर्वाह्ण (दोपहर पहले) होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि ग्रीनविच के पूर्व में स्थित स्थानों का समय जानने के लिए प्रत्येक 1^0 देशांतर पर ग्रीनविच के पश्चिम के समय में 4 मिनट जोड़ने होंगे। इसके विपरीत ग्रीनविच के पश्चिम में स्थित स्थानों का समय जानने के लिए प्रत्येक 1^0 देशान्तर पर ग्रीनविच के समय से 4 मिनट घटाने होंगे। **शिक्षक** : आप अक्षांश की संकल्पना पहले ही समझ चुके हैं। अब हम अक्षांश और देशान्तर के उपयोग के बारे में समझने का प्रयास करेंगे। देशांतर रेखा की क्या उपयोगिता होती है? **छात्र** : हमें X और Y अक्षों पर दूरियां मालूम हैं और हम उनकी मदद से बिंदु की स्थिति अंकित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हमें किसी स्थान के तापमान और आर्द्रता के बीच संबंध मालूम करना है तो हम नीचे दिए चित्र के अनुसार ग्राफ बना सकते हैं।	ग्रीनविच के पूर्व में स्थित स्थान का समय जानने के लिए प्रत्येक 1^o देशांतर पर ग्रीनविच के पश्चिम के समय में कितने मिनट जोड़ते हैं? जब हमें ग्राफ कागज पर किसी बिंदु की स्थिति अंकित करना हो तो हम यह कार्य कैसे करते हैं? देशांतर रेखा की क्या उपयोगिता है?

शिक्षण बिन्दु	व्यवहारगत उद्देश्य	क्रियात्मक प्रयोग	मूल्यांकन
		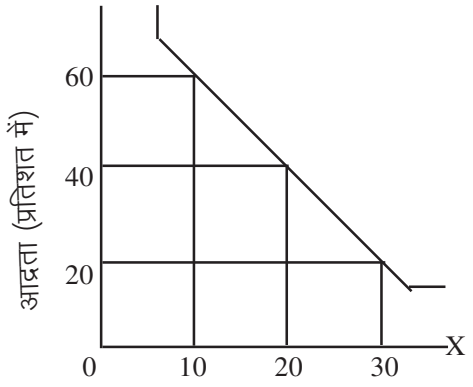 तापमान (सेल्सियस में) **शिक्षक**: बहुत अच्छा इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर हम ग्लोब में अंक्षाश और देशांतर रेखाओं की मदद से विभिन्न स्थानों की स्थितियां मालूम करते हैं। अर्थात् यदि हम ग्लोब में किसी स्थान का पता लगाना चाहते हैं और हमें उस स्थान का अक्षांश और देशांतर मालूम है तो वह स्थान ग्लोब में इन अंक्षाश और देशांतर रेखाओं के कटान बिंदु पर होगा। इस प्रकार ग्लोब पर होगा। इस प्रकार ग्लोब पर किसी भी स्थान की सही स्थिति उस स्थान के अक्षांश और देशांतर से मालूम कर सकते हैं।	ग्लोब से किसी स्थान की स्थिति कैसे ज्ञात की जा सकती है?

मुख्य शब्द

शैक्षणिक विश्लेषण – किसी भी पाठ का शिक्षण व्यवस्थित व क्रमबद्ध ढंग से करना।

इकाई-III

पाठ योजना का विकास

(Development of Lesson Plan)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :–

– पाठ योजना की आवश्यकता व महत्व बता सकें।

– पाठ योजना के सोपानों का वर्णन कर सकें।

संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 पाठ योजना की आवश्यकता एवं महत्व

1.3 पाठ योजना के सोपान

1.4 पाठ योजना का प्रारूप

1.5 सारांश

1.6 आदर्श उत्तर

1.7 मुख्य शब्द

1.8 सन्दर्भ पुस्तके

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा की सफलता सफल शिक्षण पर निर्भर करती है। सफल शिक्षण के लिये पाठ योजना का होना आवश्यक है। पाठ योजना शिक्षण–प्रक्रिया के व्यवस्थात्मक पक्ष के व्यावहारिक रूप का वर्णन करती है। अध्यापक पाठ को पढ़ाने से पूर्व यह योजना बनाता है कि उसे क्या पढ़ाना है। पाठ से सम्बन्धित कौन सी सामग्री उपलब्ध है तथा बच्चों की रूचि, आयु व मानसिक स्तर क्या है? पाठ योजना को एल०बी०सैण्ड्स ने इस प्रकार परिभाषित किया है, ''पाठ योजना वास्तव में काम की योजना है? इसमें अध्यापक का क्रियात्मक दर्शन, उसका दर्शन सम्बन्धी ज्ञान, अपने विधार्थियों के विषय में उसका ज्ञान तथा सूझ–बूझ, शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में उसकी सूझ, पाठ्य वस्तु का ज्ञान, तथा प्रभावी शिक्षण विधियों को काम में लाने की उसकी योग्यता सम्मिलित है।'' अध्यापक को जो विषय पढ़ाना है उसको अच्छी तरह से तैयार करके तीन चार हिस्सों में बांटकर अच्छी प्रकार से समझाना, पाठ योजना बनाकर पढ़ाना कहलाता है। पाठ योजना के बिना योग्य अध्यापक भी कक्षा में सफल नहीं हो पाता। पाठ योजना के रूप तो भिन्न भिन्न हो सकते हैं परन्तु इसकी आवश्यकता पर दो मत नहीं हो सकते। वास्तव में पाठ योजना इस बात का विवरण देती है कि शिक्षक को क्या–क्या उपलब्धियाँ प्राप्त करनी है तथा किन–किन साधनों द्वारा उन्हें कक्षाओं की क्रियाओं के फलस्वरूप एक निश्चित अवधि में प्राप्त किया जा सकता है?

1.2 पाठ योजना की आवश्यकता तथा महत्व (Need and Importance of Lesson Plan)

पाठ योजना की निम्नलिखित उपयोगिता तथा महत्त्व हैं :–

1. उद्देश्य स्पष्ट करने में सहायक (Helpful in clarifying objectives)

पाठ क्यों पढ़ाया जाता है? जब तक अध्यापक स्वयं इस प्रश्न के उत्तर के प्रति स्पष्ट नहीं, तब तक वह अपने शिक्षण कार्य में रूचि नहीं ले सकता। कोई भी कार्य करने से पहले व्यक्ति को उसका कार्य स्पष्ट होना चाहिए। इसी प्रकार शिक्षण कार्य आरम्भ करने से पहले अध्यापक को स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि पाठ पढ़ाने का उद्देश्य क्या है। पाठ योजना शिक्षण के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को स्पष्ट करती हैं।

2. शिक्षण विधियों का चयन (Selection of Teaching Methods)

शिक्षण के उद्देश्यों को निश्चित करके अध्यापक को उचित शिक्षण–विधियों के चयन की भी आवश्यकता होती है। कई पुरानी तथा नई शिक्षण विधियां सामाजिक अध्ययन को पढ़ाने के लिये प्रयोग की जाती हैं। कौन सी विधि विषयवस्तु को पढ़ाने के अनुकूल होगी इसका निर्णय अध्यापक पहले कर लेता है। इस निर्णय को करते समय अध्यापक को अपने विद्यार्थियों की रूचि, योग्यता, क्षमता का भी ध्यान रखना चाहिए। शिक्षण विधि के चयन के पश्चात् अध्यापक को शिक्षण विधि की प्रक्रिया को लिख लेना चाहिए ताकि उसके सुनिश्चित संचालन में अध्यापक को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े।

3. शिक्षण-सामग्री की व्यवस्था में सहायक (Helpful in arranging teaching aids)

शिक्षण विधि के अनुरूप अपने शिक्षण को प्रभावशाली तथा सुबोध बनाने के लिये अध्यापक को विभिन्न प्रकार के साधनों की आवश्यकता पड़ती है। यदि इन साधनों का पहले से निशचित करके इनकी व्यवस्था कर ली जाए तो शिक्षण कार्य को आसानी से आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है। पाठ योजना में अध्यापक इन साधनों का उल्लेख करता है और शिक्षण कार्य आरम्भ करने से पहले उनकी व्यवस्था भी कर लेता है। इस प्रकार पाठ योजना शिक्षण सामग्री की व्यवस्था में सहायक सिद्ध होती है।

4. समय तथा शक्ति में बचत (Saves Time and energy)

पाठ योजना के निर्माण से अध्यापक और विद्यार्थियों के समय में बचत होती है और उनकी शक्ति का भी अपव्यय नहीं होता । योजना के अनुसार समूचा शिक्षण कार्य स्वाभाविक गति से चलता रहता है। अध्यापक को पता है कि कब क्या करना है, इसलिये उसके भटकने की सम्भावना कम होती है। उसे यह भी पता होता है कि विद्यार्थियों की शक्ति का भी सार्थक उपयोग होता है।

5. आत्म-विश्वास में वद्धि (Increase in Self-confidence)

अध्यापक शिक्षण कार्य के लिये जितना तैयार होगा उतना ही अधिक वह अपने आप में आत्म–विश्वास को अनुभव करेगा। यह निश्चित है कि पाठ योजना से सुसज्जित अध्यापक पूर्ण विश्वास के साथ कक्षा में जाता है। उसे पहले से मालूम होता है कि उसे कहां क्या करना है, किन–किन सोपानों में से गुजरना है, विद्यार्थियों को कैसे प्रेरित एवं व्यस्त करना है आदि। इसलिये उसका आत्म–विश्वास कहीं भी शिथिल नहीं होता। आत्म–विश्वास की यह पूर्णता उसके शिक्षण कार्य को रोचक, उपयोगी, प्रभावशाली, सन्तोषजनक तथा आनन्दायक बनाती है।

6. पाठ्यक्रम को समय पर समाप्त करने में सहायक (Helpful in completing curriculum in time)

अध्यापक को निश्चित समय में निर्धारित पाठ्यक्रम समाप्त करना होता है। इसके लिये आवश्यक है कि समूचे पाठ्यक्रम को मासिक अथवा त्रैमासिक इकाईयों में बांट दिया जाये और फिर प्रत्येक इकाई को दैनिक पाठ योजना में विभाजित कर दिया जाये। इस प्रकार पाठ्यक्रम सन्तुलित रूप से समाप्ति की ओर अग्रसर होता है। पाठ योजना से अध्यापक को पता लगता रहता है कि कितना पाठ्यक्रम समाप्त हो गया और कितना शेष रहता है। इस प्रकार पाठ योजना अध्यापक को समय पर पाठ्यक्रम समाप्त करने में सहायक सिद्ध होती है।

7. मूल्यांकन में सहायक (Helpful in Evaluation)

शिक्षण के प्रति सजग रहने के लिये उसका मूल्यांकन होते रहना अत्यन्त आवश्यक है। यह जरूरी नहीं कि मूल्यांकन किसी शिक्षा–अधिकारी के द्वारा किया जाए, बल्कि अध्यापक को स्वयं अपने शिक्षण कार्य का मूल्यांकन करते रहना चाहिए और पाठ योजना उस कार्य में महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करती है। पाठ योजना के क्रियान्वन के पश्चात् अध्यापक को मालूम होता है कि वह अपने शिक्षण कार्य में कहां तक सफल हुआ, उसे वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति हुई या नहीं।

इस प्रकार शिक्षण क्रिया में पाठ योजना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुभवी अध्यापक भी पाठ योजना बनाते हैं।

1.3 पाठ योजना के सोपान (Steps of Lesson Plan)

पाठ योजना के व्यवस्थित निर्माण के लिये इसे कई सोपानों में विभाजित किया जाता है। शिक्षा शास्त्री हरबर्ट ने पाठ योजना के लिये निम्नलिखित पांच सोपानों का उल्लेख किया है :–

1. प्रस्तावना अथवा भूमिका
2. प्रस्तुतीकरण
3. तुलना अथवा सम्बन्ध–निर्धारण
4. प्रयोग
5. पुनरावत्ति

1. प्रस्तावना अथवा भूमिका (Introduction)

इसमें विद्यार्थियों को नये पाठ के लिये तैयार करना होता है। 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' के शिक्षण सूत्र का अनुसरण करते हुए विद्यार्थियों के पूर्वज्ञान का परीक्षण किया जाता है और उन्हें नया ज्ञान प्राप्त करने के लिये अनुप्रेरित किया जाता है। पूर्वज्ञान–परीक्षण के लिये अध्यापक विद्यार्थियों से केवल तीन चार प्रश्न पूछता है। इस सोपान का प्रायोजन विद्यार्थियों में नये ज्ञान के प्रति रूचि एवं जिज्ञासा उत्पन्न करता है। पूर्वज्ञान परीक्षण के पश्चात् पाठ के उद्देश्य को व्यक्त किया जाता है। अतः इस सोपान में दो बातें निहित हैं :–

1. पूर्वज्ञान परीक्षण
2. नये पाठ के उद्देश्य की घोषणा

2 प्रस्तुतीकरण (Presentation)

उद्देश्य की घोषणा के पश्चात् अध्यापक को विद्यार्थियों के सम्मुख विषय–सामग्री प्रस्तुत करनी होती है। इस सोपान में विद्यार्थियों को नया ज्ञान ग्रहण करने के लिये पर्याप्त मानसिक क्रिया करनी पड़ती है। इसलिये अध्यापक को विषय सामग्री इस प्रकार प्रस्तुत करनी चाहिए कि विद्यार्थी उसे सरलता एवं सहजता से ग्रहण कर सकें। इसके लिये विषय सामग्री को क्रमानुसार दो तीन इकाईयों में विभाजित करना और उनके प्रस्तुतीकरण के लिये उचित शिक्षण विधि का प्रयोग करना चाहिए। इकाईयों तथा शिक्षण–विधियों का पाठ योजना में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त अध्यापक को प्रयुक्त होने वाले श्रव्य–दश्य साधनों, उनके प्रयोग के समय तथा प्रयोग विधि तथा चॉक बोर्ड कार्य का भी पाठ योजना में स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहिए।

3. तुलना अथवा सम्बन्ध निर्धारण (Comparison/or Assimilation)

इस सोपान में नवीन ज्ञान तथा पूर्वज्ञान की तुलना करके दोनों में सम्बन्ध स्थापित करना होता है। इससे उसके ज्ञान में वद्धि होती है और नये ज्ञान को आत्मसात् करना उनके लिये आसान हो जाता है। विद्यार्थियों के भौतिक एवं सामुदायिक वातावरण से भी नये ज्ञान का समन्वय स्थापित किया जा सकता है, परन्तु ऐसा करते समय अध्यापक को ध्यान रखना चाहिए कि जिन बातों की तुलना की जाये या जिन बातों में समन्वय स्थापित किया जाए उनसे

विद्यार्थी अच्छी तरह परिचित हों। वस्तुतः इस 'सोपान' से चिन्तन की प्रेरणा मिलती है और उनमें स्वयं खोजने की प्रवति जागत होती है। अतः इस सोपान का आयोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि विद्यार्थियों को चिन्तन और खोज का पर्याप्त अवसर मिल सके।

4. प्रयोग (Application)

इस सोपान में विद्यार्थियों को नये ज्ञान के प्रयोग का अवसर दिया जाता है। सामाजिक अध्ययन शिक्षण के प्रयोग–सोपान में विद्यार्थियों को नक्शा भरने, ग्राफ बनाने, समय रेखा तैयार करने आदि के लिये कहा जा सकता है। इस सोपान का प्रयोजन है विद्यार्थियों को नये ज्ञान का प्रयोग करने के योग्य बनाना। प्रयोग करने से प्राप्त ज्ञान मस्तिष्क में स्थायी रूप से अंकित हो जाता है।

5. पुनरावत्ति (Recapitulation)

इस सोपान में समूचे पाठ की संक्षिप्त रूप से पुनरावत्ति की जाती है। पुनरावत्ति के लिये विद्यार्थियों से सहयोग लेना चाहिए अर्थात् प्रश्नोत्तर के माध्यम से या कोई प्रयोगात्मक कार्य करा कर या लेखन कार्य के माध्यम से समूचे पाठ की पुनरावत्ति करानी चाहिए।

अन्त में यह कहना गलत नहीं होगा कि अध्यापक के लिये यह आवश्यक नहीं होता कि वह इन सभी सोपानों का दढ़तापूर्ण पालन करे। सम्भव है ये सोपान सभी प्रकार के पाठों के लिए उपयुक्त न हो। अतः परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन कर सकता है।

1.4 पाठ योजना का प्रारूप (Format of Lesson Plan)

हरबर्ट के ऊपरलिखित पाँच सोपानों के आधार पर पाठ–योजना के निम्नलिखित पद निर्धारित किए जा सकते हैं। इन्हीं का अनुकरण करके छात्र–अध्यापक अपनी पाठ–योजना तैयार कर सकते हैं। :–

1. विषय, प्रकरण या उपविषय, कक्षा, विभाग, कालांश तथा दिनांक (Subject, Topic, Class, Period and Date)

पाठ योजना की तैयारी इन तथ्यों के निर्धारण से होती है। विषय के अनुसार उपविषय या प्रकरण तथा कक्षा का चयन किया जाता है।

2. सामान्य उद्देश्य (General Aims)

प्रत्येक विषय के शिक्षण के पीछे कुछ सामान्य उद्देश्य निर्धारित करना आवश्यक होता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति ही शिक्षण की सफलता होती है। शिक्षक के शिक्षण का व्यापक मूल्यांकन भी इन सामान्य उद्देश्यों के संदर्भ में किया जाता है।

3. व्यवहारगत उद्देश्य (Behavioural Objectives)

इन उद्देश्यों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से पढ़ाये जाने वाले पाठ से होता है। इनका निर्धारण विषयवस्तु के आधार पर किया जाता है। ये उद्देश्य प्रत्येक प्रकरण के साथ बदलते रहते हैं।

4. सहायक सामग्री (Teaching Aids)

शिक्षक को पाठ योजना में ही सहायक सामग्री को तय करना पड़ता है। जैसे – श्यामपट्ट, मॉडल, चार्ट, रेड़ियो, टेपरिकार्डर, प्रोजैक्टर आदि।

5. पूर्वज्ञान (Previous Knowledge)

शिक्षण में नये ज्ञान को शुरू करने के लिए पूर्वज्ञान के बारे में सोचना अति आवश्यक है। नवीन ज्ञान प्राप्त करने में पूर्वज्ञान आधार का कार्य करता है।

6. प्रस्तावना (Introduction)

पाठ की प्रस्तावना छात्रों के पूर्वज्ञान पर आधारित होती है। प्रस्तावना के माध्यम से नये पाठ तक पहुँचा जाता है। प्रस्तावना का पद पाठ योजना में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रस्तावना के लिए प्रकरण से सम्बन्धित पूर्वज्ञान

के बारे में प्रश्न पूछकर उसे पढ़ाये जाने वाले प्रकरण के साथ जोड़ा जाता है। इसके लिए शिक्षक तीन या चार प्रश्न पूछता है ताकि पूर्वज्ञान के साथ प्रस्तावित पाठ का सम्बन्ध जोड़ा जा सके।

7. उद्देश्य कथन (Statement of Aim)

शिक्षक प्रकरण से सम्बन्धित घोषणा करता है कि आज हम इस प्रकरण के बारे में अध्ययन करेंगे।

8. प्रस्तुतीकरण (Presentation)

पाठ योजना का क्रियात्मक पक्ष प्रस्तुतीकरण से आरम्भ होता है। प्रस्तुतीकरण में शिक्षक को छात्रों की मानसिक क्रिया को निरन्तर प्रेरित तथा उतेजित करते रहना चाहिए। प्रस्तुतीकरण में विकासात्मक प्रश्न पूछकर पाठ को आगे बढ़ाया जाता है।

9. स्पष्टीकरण (Clarification)

विकासात्मक प्रश्नों के उत्तर न मिलने पर शिक्षक स्वयं उन प्रश्नों का स्पष्टीकरण दे ताकि छात्रों के मन में किसी किस्म का द्वन्द्व न शुरू हो पाए।

10. चॉकबोर्ड कार्य (Chalk board work)

शिक्षक अपने शिक्षण बिन्दुओं को चॉकबोर्ड पर लिखता है। चॉकबोर्ड शिक्षक का अभिन्न मित्र होता है। इसके बिना शिक्षक सफल नहीं हो सकता। चॉकबोर्ड कार्य या तो शिक्षण के साथ–साथ किया जाना चाहिए या अध्यापक के कथनों की समाप्ति पर होना चाहिए।

11. पुनरावत्ति (Recapitulation)

पढ़ाये गये पाठ को दोहराना ही पुनरावत्ति कहलाता है। इससे शिक्षण की सफलता का साथ – साथ ही ज्ञान होता रहता है। पुनरावत्ति में पूछे गए प्रश्नों के सही उत्तर प्राप्त करने से ही शिक्षण की सफलता का अनुमान लगाया जा सकता है। यदि पाठ को छोटी–छोटी इकाइयों में बांट रखा है तो प्रत्येक खंड या भाग अथवा इकाई पढ़ाने के बाद पुनरावत्ति की जानी चहिए।

12. गहका र्य (Home Work)

शिक्षण में गहकार्य का महत्व किसी भी सोपान से कम महत्वपूर्ण नहीं। अतः गहकार्य अवश्य दिया जाना चाहिए। गहकार्य में विभिन्न प्रकार के प्रश्न दिए जा सकते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) पाठ योजना से क्या अभिप्राय है। पाठ योजना की उपयोगिता पर प्रकाश डालो।

(ii) शिक्षा शास्त्री हरबर्ट के पांच सोपानों का वर्णन करो।

पाठ योजना नं० 1

कक्षा	**VIII**
विद्यार्थियों की आयु का मध्यमान	13 से 15 वर्ष
पाठ की अवधि	40 मिनट
विषय	सामाजिक अध्ययन
प्रकरण	गुप्त काल में लोंगों का जीवन
तिथि	.....

सहायक सामग्री

1. श्रेणीकक्ष की सामान्य सामग्री।
2. गुप्त साम्राज्य की सीमाओं सहित भारत का मानचित्र।
3. भारत का मानचित्र, जिसमें वर्तमान राजनैतिक विभाजन दिखाया गया हो।
4. समुद्रगुप्तकालीन मुद्राओं के चित्र।

5. अजन्ता की गुफाओं के कुछ चित्र।
6. कुछ हिन्दू देवी–देवताओं के चित्र।
7. महरौली के लोह–सतम्भ का चित्र।
8. 'शकुन्तला' तथा 'पंचतन्त्र' की एक–एक प्रति।
9. गुप्त साम्राज्य की स्थापना के समय भारत की राजनैतिक स्थिति का दिग्दर्शन कराने वाला भारत का मानचित्र।

सामान्य उद्देश्य

1. बालकों में अपनी प्राचीन संस्कति के प्रति वर्ग का भाव उत्पन्न करना।
2. मानव कल्याण की दिशा में पूर्वजों के योगदान से बालकों को परिचित कराना।
3. उनमें भाईचारे, मैत्री, सहयोग, सहिष्णता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना जैसे गुण उत्पन्न करना।
4. बालकों को यह दिखाना कि हमारे वर्तमान भारतीय समाज का निर्माण एक ही दिन में नहीं हुआ, अपितु इसके लिए उसे कई युगों तथा कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ा।

व्यवहारगत उद्देश्य

बालक गुप्तकालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कतिक जीवन से परिचित हो जाएंगें।

समवाय

पाठ का समवाय बालकों के वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कतिक वातावरण से किया जाएगा।

बालकों को पूर्व ज्ञान

बालक चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के जीवन तथा उनकी विजयों के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं।

प्रस्तावना

पाठ के आरम्भ में बालकों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रश्न पूछे जाएँगे :–

1. चन्द्रगुप्त प्रथम की प्रसिद्ध विजयें बताओ।
2. समुन्द्रगुप्त की प्रसिद्ध विजयें बताओ।
3. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की प्रसिद्ध विजयें कौन–कौन सी थीं?
4. इन विजयों का क्या परिणाम हुआ?

(स्वभावतः बालक भारत की राजनैतिक एकता की चर्चा करेंगे।)

उद्देश्य - कथन

आज हम गुप्त काल के राजनैतिक जीवन ही नहीं, अपितु उस काल के सामाजिक आर्थिक तथा धार्मिक व सांस्कतिक जीवन के बारे में भी पढ़ेंगे।

प्रस्तुतीकरण

पाठ को निम्नलिखित तीन भागों में बांट दिया जाएगा :–

(अ) गुप्तकाल में राजनैतिक जीवन।

(ब) गुप्तकाल में सामाजिक व आर्थिक जीवन।

(स) गुप्त काल में धार्मिक व सांस्कतिक जीवन।

प्रथम भाग

विषय	विधि
राजनैतिक जीवन की चर्चा करते हुए अध्यापक बताएगा कि मौर्य राजाओं के पतन के पश्चात् भारत पर समय–समय पर यूनानियों, पारसियों तथा शकों ने आक्रमण किए। इन विदेशी शक्तियों ने उत्तर पश्चिमी भारत में अपना राज्य स्थापित किया। भारत के अन्य भागों में छोटी–छोटी देशी रियासतें स्थापित हो गई जो परस्पर लड़ती–झगड़ती रहती थीं। महान् गुप्त शासकों ने इन उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों से टक्कर ली तथा एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन स्थापित करके भारत में राजनैतिक एकता उत्पन्न की। गुप्त काल में शासन प्रबन्ध का वर्णन करते हुए अध्यापक बताएगा कि उस समय में सैनिक तथा असैनिक शासन व्यवस्था बहुत अच्छी थी। सारी शासन व्यवस्था का मुखिया राजा होता था। सैनिक, असैनिक तथा न्याय–व्यवस्था उसी के अधीन चलती थी। राजा की सहायता के लिए अनेक मंत्री होते थे, जो भिन्न–भिन्न विभागों की देखभाल करते थे। उन्हें अपने–अपने विभाग के कार्य की रिपोर्ट राज्य भर से नियमित रुप से मिलती रहती थी तथा समय–समय पर वे भी आवश्यक निर्देश दिया करते थे।	इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए अध्यापक बालकों को भारत का मानचित्र दिखाएगा और उन्हें बताएगा कि गुप्त साम्राज्य की स्थापना के समय भारत की राजनैतिक स्थिति कैसी थी। इसे स्पष्ट करने के लिए अध्यापक बालकों को भारत का ऐसा मानचित्र दिखएगा, जिसमें गुप्त साम्राज्य की सीमाएं होंगी। गुप्त साम्राज्य की सीमाओं का ज्ञान कराने के लिए बालकों को भारत के मानचित्र पर वैशाली, उज्जैन, सौराष्ट्र तथा बंगाल आदि भिन्न–भिन्न प्रांत दिखाए जाएंगे। गुप्त सम्राटों की तुलना वर्तमान भारतीय राष्ट्रपति से की जाएगी तथा गुप्तकाल के मंत्रियों की तुलना वर्तमान केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से की जाएगी।
गुप्त साम्राज्य प्रान्तों में विभाजित था, जिन्हे ं 'देश' कहते थे तथा प्रान्तीय गर्वनर को राजा कहकर पुकारा जाता था। उसका सम्बन्ध प्रायः राज परिवार से होता था तथा अपने प्रान्त की सुव्यवस्था के लिए वह स्वयं उत्तरदायी होता था। किन्तु सैनिक तथा असैनिक अधि ाकारियों में कोई स्पष्ट भेद नहीं होता था। उसका पद–परिवर्तन भी संभव था। प्रान्त जिलों में विभाजित थे, जो 'विषय–पति' कहलाता था। वे आजकल के जिला मजिस्ट्रेट के समान थे और अपने–अपने जिले की शान्ति व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होते थे। विषयपति की सहायता के लिए चार सदस्यों की एक समिति होती थी, जिसमें साहूकारों, कषकों, व्यापारियों तथा साहित्यिक व्यक्तियों के प्रतिनिधि शामिल होते थे। हर विषय में अनेक गांव होते थे, जो 'ग्राम' कह लाते थे। स्थानीय व्यवस्था की देखभाल के लिए ग्राम पंचायत होती थीं। राजा अपनी शासन व्यवस्था का सही–सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने अधिकारियों सहित समय–समय पर देश भर में भ्रमण किया करता था।	गुप्त सम्राट की स्थिति क्या होती थी? इसे स्पष्ट करने के लिए भारत के वर्तमान शासकीय विभाजन से तुलना की जाएगी। जैसे –राज्य, जिले, तहसील तथा गांव। भारत का वर्तमान राजनैतिक विभाजन वाला मानचित्र भी दिखाया जाएगा। मौर्यकाल के प्रान्तीय शासन–काल से तुलना की जाएगी। वर्तमान जिलाधीश व अन्य जिला–अधिकारियों की तुलना। जिले की व्यवस्था में जिलाधीश की सहायता कौन करता है? वर्तमान पंचायती राज से समवाय। वर्तमान काल के अधिकारियों के दौरों से तुलना।

विभागीय पुनरावत्ति

उपर्युक्त भाग की पुनरावत्ति हेतु निम्नलिखित प्रश्न पूछे जाएंगे :–

1. गुप्तकाल में सम्राट की स्थिति क्या होती थी?
2. गुप्त राजाओं ने शासन–व्यवस्था हेतु अपने साम्राज्य का विभाजन कैसे कर रखा था?

द्वितीय भाग

विषय	विधि
लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन की चर्चा करते हुए अध्यापक विद्यार्थियों को बताएगा कि उस काल में लोग प्रायः निरामिष भोजन करते थे और अहिंसा के सिद्धान्तों पर चलते थे। शराब की दुकानें या कारखाने नहीं होत थे। केवल चांडाल लोग ही पशुओं का वध करते थे और मांस खाते थे। किन्तु वे नगर से बाहर रहते थे। जब वे नगरों से मंडियों में जाते थे, तो उन्हें एक प्रकार की सूचना देनी पड़ती थी, ताक अन्य लोग उनके सम्पर्क से बच सकें। साधारण लोग तो प्याज तथा लहसुन तक का प्रयोग नहीं करते थे। वे ईमानदार, दानी, विनम्र तथा अतिथि–सेवक होते थे।	इस बात को स्पष्ट करने के लिए बालकों का ध्यान अशोक तथा कनिष्क जैसे महान् राजाओं तथा उनके बौद्ध धर्म ग्रहण करने की ओर ले जाया जाएगा। वर्तमान भारत सरकार की मत मद्यनिषेध नीति से तुलना की जाएगी। क्या आज भी हमारे समाज में ऐसा कोई पथकत्व है? वर्तमान सरकार के दष्टिकोण से जाति–विहीन भारतीय समाज के विचार से तुलना।
उस काल में लोग धन–धान्य से सम्पन्न थे। लोगों ने अपने खर्च से गरीबों की चिकित्सा के लिए हस्पताल बनवा रखे थे। फाह्यायन ने लिखा है कि उस काल में लोग नियमों का पालन करते थे, टैक्स बहुत कम थे, सड़कें सुरक्षित थीं और जासूसी का नाम निशान न था। लेन–देन कौड़ियों में होता था। सोने के 'सोवरन' तथा चांदी के 'दिनार' भी चलते थे। दण्ड बहुत कम थे, जिससे सिद्ध होता है कि उस समय के लोग शान्तिप्रिय तथा सभ्य थे। राज्य की आय का मुख्य साधन भू–राजस्व होता था, जो उपज के एक निश्चित भाग के रूप में लिया जाता था। उसे नकदी या अनाज के रूप में दिया जा सकता था। सरकारी अफसरों को नियमित रूप से वेतन मिलता था। कषि के अतिरिक्त कला तथा उद्योग भी उन्नति पर था।	अपने देश वासियों के वर्तमान नैतिक स्तर से तुलना। टैक्सों की वर्तमान स्थिति क्या है? मौर्यकाल से भी तुलना की जाएगी, जब दंड कठोर थे, सरकारी नियम दढ़ थे तथा जासूसी का बोलबाला था। गुप्तकालीन व्यवस्था अधिक कठोर न होते हुए भी उत्तम थी। समुद्रगुप्त की स्वर्ण मुद्राओं के चित्र दिखाए जाएंगे। वर्तमान भारतीय सरकार तथा राज्य सरकारों की आय के साधनों से तुलना की जाएगी।

विभागीय पुनरावत्ति

उपर्युक्त भाग की पुनरावत्ति हेतु निम्नलिखित प्रश्न पूछे जाएंगे :–

(1) गुप्त काल में लोगों की आर्थिक स्थिति कैसी थी?

(2) उस काल के लोगों के सामाजिक जीवन का संक्षिप्त वर्णन करो।

ततीय भाग

विषय	विधि
उस काल की धार्मिक तथा सांस्कतिक अवस्था का वर्णन करते हुए अध्यापक यह बताएगा कि उस काल में ब्राह्मणवाद फिर फैलने लगा, क्योंकि शक्तिशाली गुप्त सम्राट विष्णु के भक्त थे। इस समय तक ब्राह्मण धर्म ने परिवर्तित होकर आधुनिक हिन्दू धर्म का रूप ले लिया था, तथा इसमें विष्णु, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, पार्वती तथा अन्य अनेक देवी–देवताओं की पूजा भी सम्मिलित हो गई थी। बौद्ध धर्म का लोप हो रहा था और वह अवनति के मार्ग पर था। किन्तु गुप्त सम्राट भी असीम सहिष्णु थे। वे सभी धर्मों के अच्छे लोगों की सहायता करते थे। बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मणों के सम्बन्ध सामान्यतः सौहार्दपुर्ण थे तथा धर्म के नाम पर कोई विवाद नहीं था। यहां तक कि गुप्त सम्राटों के कुछ उच्च अधिकारी भी बौद्ध थे।	अशोक, कनिष्क तथा हमारी वर्तमान सरकार की धार्मिक नीति से तुलना। इन देवी–देवताओं के चित्र दिखाए जाएंगे। वर्तमान भारत की धार्मिक स्थिति से तुलना। वर्तमान युग में धर्म, जाति के भेद–भाव के बिना नियुक्तियों से समवाय।
इसके अतिरिक्त गुप्तकाल में साहित्यिक प्रगति चरम सीमा पर थी। इस काल में राजनैतिक एकता, आर्थिक समद्धि तथा गुप्त सम्राटों के प्रोत्साहन के कारण बौद्धिक व भावनात्मक प्रगति भी खूब हुई। गुप्त सम्राटों की राजभाषा 'संस्कत' थी। इसी भाषा में शिलालेख तथा महान् साहित्यिक ग्रंथ लिखे गये। संस्कत साहित्य के शास्त्रों, पुराणों, मनुस्मति, रामायण तथा महाभारत का पुनरावलोकन किया गया और उन्हें वर्तमान रूप दिया गया। शिक्षा भी उन्नति पर थी और गुप्त सम्राटों द्वारा पांचवी सदी में स्थापित नालन्दा विश्वविद्यालय ज्ञान तथा शिक्षा का महान् केन्द्र हुआ था। इस विश्वविद्यालय में भारत से ही नहीं, अपितु विदेशों से विद्यार्थी भी पढ़ने के लिए आया करते थे।	भारतीय तथा राज्य सरकारों द्वारा साहित्यिक व्यक्यिों को दिया जाने वाला प्रोत्साहन – हरियाणा भाषा विभाग प्रत्येक वर्ष उच्च कोटि के साहित्यिक व्यक्तियों को सम्मानित करता है। वर्तमान सरकार की शिक्षा नीति से तुलना। देश के वर्तमान विश्वविद्यालयों से नालन्दा की तुलना। वर्तमान युग में अनुसंधान हेतु दिया जाने वाला प्रोत्साहन।
भारत का महानतम कवि तथा नाटककार 'कालिदास' भी इसी युग में हुआ। कालिदास रचित 'शकुन्तला' विश्व का सबसे सुन्दर नाटक माना जाता है। इस काल में अन्य प्रसिद्ध लेखक विशाखदत्त, भारवि, दण्डी तथा हर्ष आदि भी हुए। विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' की रचना की। हर्ष समुद्रगुप्त का राजकवि था तथा इलाहाबाद स्तम्भ पर खुदे शिला लेख का लेखक भी वही था। प्रसिद्ध पुस्तक 'पंचतन्त्र' की रचना भी गुप्तकाल में ही हुई।	इग्लैड के नाटककार शेक्सपियर से तुलना। विद्यार्थियों को 'शकुन्तला' की प्रति दिखाई जाएगी। भारत सरकार का हिन्दी राजकवि कौन है? पंचतन्त्र की प्रति बालकों को दिखाई जाएगी।
वैज्ञानिक प्रगति गुप्तकाल में विज्ञान के क्षेत्र में भी बड़ी उन्नति हुई। इसी काल में आर्यलदत्ता, वराहमिहिर तथा ब्रह्मगुप्त जैसे महान् वैज्ञानिक उत्पन्न हुए। ये सभी इस युग के महान् वैज्ञानिक, गणितज्ञ तथा खगोल शास्त्री थे।	वर्तमान युग के कुछ महान् वैज्ञानिकों तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों से समवाय किया जाएगा।

विषय	विधि
कला के क्षेत्र में प्रगति इस काल में मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, भवन निर्माण आदि सभी कलाओं में विशेष प्रगति हुई। इस काल की कला का नमूना अजन्ता की गुफाओं में मिलता है, जिसे देख कर आज भी विश्व चकित रह जाता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का महान लौहस्तम्भ तथा नालन्दा में स्थित बुद्ध की आठ फुट लम्बी पीतल की प्रतिमा इस बात के प्रमाण हैं कि उस काल के शिल्पी धातु कार्य में कितने निपुण थे। गुप्तकाल की मुद्राएं भी कलापूर्ण थीं।	अजन्ता तथा महरौली के लौह–स्तम्भ के चित्र दिखाए जाएंगे। गुप्तकाल की स्वर्ण–मुद्राओं तथा अन्य मुद्राओं के चित्र दिखाए जाएंगे।
हिन्दू साम्राज्य काल इस काल में हिन्दू प्रचारक तथा व्यापारी सुदूर देशों में गये और वहां उन्होंने अपनी बस्तियां बसाई। इनसे भारत की महानता बढ़ी। बन्दरगाहों के द्वारा अनेक देशों से व्यापार भी होता था। अन्त में अध्यापक बालकों को सार रूप में यह बताएगा कि गुप्तकाल में सभी क्षेत्रों में उन्नति हुई। गुप्त शासकों ने भारत को अच्छा शासन, शान्ति, समद्धि, प्रसिद्धि, उच्च कोटि का साहित्य, सुन्दर कलाएं तथा सुधार हुआ हिन्दू धर्म व अनेक बस्तियां आदि सभी कुछ दिया। भारतीय इस काल पर हमेशा गर्व करते रहे हैं और करते रहेंगे।	गुप्त साम्राज्य की सीमाओं की ओर संकेत करते हुए सौराष्ट्र तथा गुजरात के बन्दरगाह दिखाए जाएंगे। इस बात पर बल दिया जाएगा कि इस सारी समद्धि तथा प्रगति का श्रेय गुप्त शासकों की योग्यता को है। फाह्यान जैसे विदेशी यात्रियों के वत्तांत इस बात के प्रमाण हैं कि गुप्तकाल वास्तव में सुख समद्धि का काल था।

विभागीय पुनरावत्ति

उपर्युक्त भाग की पुनरावत्ति के लिए निम्नलिखित प्रश्न पूछे जाएंगे :–

1. गुप्तकाल में धार्मिक स्थिति कैसी थी?
2. गुप्तकाल में साहित्य तथा कलाओं की प्रगति बताओ।

पुनरावत्ति

इस बात की जांच करने के लिए कि क्या बच्चों ने पाठ को समझ लिया है, निम्नलिखित प्रश्न पूछे जाएंगे –

(1) गुप्त काल के शासन–प्रबन्ध का संक्षिप्त वर्णन करो।

(2) गुप्त काल के लोगों के सामाजिक जीवन के बारे में तुम क्या जानते हो?

(3) गुप्त काल में साहित्य तथा कला के क्षेत्र में हुई प्रगति का संक्षिप्त वर्णन करो।

(4) गुप्त काल को हिन्दू युग का स्वर्ण काल कहना कहाँ तक उचित है?

प्रयोग तथा गह कार्य

(1) गुप्त काल मे लोगों के सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कतिक जीवन का वर्णन करो।

(2) बालकों से कहा जाएगा कि वे भारत के मानचित्र पर गुप्त साम्राज्य की सीमाएं तथा उसके प्रसिद्ध नगर व बन्दरगाह दिखाएं।

चॉकबोर्ड कार्य

राजनैतिक कार्य – एकता का युग, राष्ट्रीयता तथा अच्छी सरकार। शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की स्थापना। सम्राट के हाथ में सभी शक्तियाँ। राज्य का प्रान्तों जिलों तथा ग्रामों में विभाजन।

सामाजिक जीवन – समद्धि व प्रसन्नता का युग– लोग ईमानदार, सच्चरित्र तथा नैतिक – सामान्यतः मांस तथा शराब का प्रयोग निषिद्ध, नियम–पालक तथा दानी। जीवन की सभी सुख–सुविधाएं प्राप्त –चाण्डालों का जीवन।

सांस्कतिक तथा धार्मिक जीवन

संस्कत साहित्य में महान प्रगति - कालिदास तथा विशाखादत्त का युग। प्राचीन धार्मिक पुस्तकों का पुनरावलोकन। हिन्दू धर्म की उन्नति – धार्मिक सहिष्णुता, विज्ञान तथा कला के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व उन्नति। विदेशों के साथ व्यापारिक संबंध तथा विदेशों में भारतीय बस्तियां। भारतीय सभ्यता तथा संस्कति का विदेशों में प्रचार।

पाठ योजना नं० 2

कक्षा	**VIII**
विद्यार्थियों की आयु का मध्यमान	12 से 14 वर्ष
पाठ की अवधि	40 मिनट
विषय	सामाजिक अध्ययन
प्रकरण	नदी की विभिन्न अवस्थाएं
तिथि	.....

सहायक सामग्री

1. श्रेणीकक्ष की सामान्य सामग्री।
2. नदी की विभिन्न अवस्थाओं वाला चार्ट।
3. बाढ़ आई हुई नदी का दश्य।
4. गंगा नदी के मार्ग का मॉडल।
5. हरिद्वार, बनारस, इलाहाबाद तथा पटना के स्नान–घाटों के कुछ चित्र।
6. कुछ पत्थर, रेत तथा कंकर।
7. हरियाणा, पंजाब के मानचित्र, जिसमें सभी मुख्य नदियां दिखाई गई हों।

सामान्य उद्देश्य

1. बालकों को यह ज्ञान देना कि भौतिक वातावरण का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है।
2. बालकों को इस बात का ज्ञान देना कि प्रकति की इस विषय में भारत पर बड़ी कपा है।
3. बालकों में अपने देश के प्रति गर्व की भावना जागत करना।
4. बालकों में सहिष्णुता, भाईचारे, सहयोग तथा राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करना।

5. बालकों को कार्य–कारण सम्बन्धों से परिचित कराना।

व्यवहारगत उद्देश्य

बालक नदी की विभिन्न अवस्थाओं से परिचित हो जाएंगें।

समवाय

बालकों के भौतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कतिक जीवन से पाठ का समवाय किया जाएगा। समवाय को केन्द्र गंगा नदी होगी।

बालकों का पूर्व ज्ञान

बालकों को नदियों के विषय में सामान्य ज्ञान है।

प्रस्तावना

पाठ के आरम्भ में बालकों के पूर्वज्ञान से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रश्न पूछे जाएंगे :–

(1) क्या तुमने कभी कोई नदी देखी है?

(2) नदी कहां से निकलती ह?

(3) नदी कहां जाकर गिरती है?

(4) नदी समुद्र में गिरने से पूर्व किन–किन अवस्थाओं में से गुजरती है? (स्वाभाविक है कि बालक अन्तिम प्रश्नों का उत्तर ठीक ढंग से नहीं दे सकेंगे)

उद्देश्य कथन

आज हम नदी की विभिन्न अवस्थाओं तथा मानव जीवन पर उनके प्रभावों के बारे में पढ़ेगे।

प्रस्तुतीकरण

विषय	विधि
नदी कैसे बनती है? नदी की रचना की चर्चा करते हुए अध्यापक बताएगा कि जब ऊंचे–ऊंचे पहाड़ों पर बर्फ पिघलना आरम्भ होती है, तो पानी पर्वतों से नीचे विभिन्न दिशाओं में अपना रास्ता तलाश करता है। इसी बीच वर्षा ऋतु भी आरम्भ हो जाती है और पवर्तों पर खूब वर्षा होती है। वर्षा का पानी भी विभिन्न मार्गों से होता हुआ पर्वतों के नीचे से बह जाता है। इस प्रकार दोनों प्रकार का पानी विभिन्न नालों व मार्गों से होता हुआ किसी स्थान पर मिल जाता है और पानी का एक विशाल मार्ग बन जाता है। यही नदी कहलाती है।	इसे स्पष्ट करने के लिए गंगा नदी के मार्ग का मॉडल दिखाया जाएगा, जो हिमालय में गंगोत्री के स्थान से निकलती है। यह अवस्था चार्ट पर भी दिखाई जाएगी।
पर्वतों में नदी की यात्राः ऊपरी या प्रथम भाग में नदी पहाड़ों से गुजरती है। नदी की इस अवस्था को पर्वत अवस्था कहते है। इस अवस्था में नदी की गति	गंगा नदी के विषय में बताया जाएगा कि यह हरिद्वार तक पहाड़ो में से बहती हुई मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करती

विषय	विधि
तेज बड़ी तेज होती है तथा इसका मुख्य कार्य पत्थरों और चट्टानों को तोड़कर अपना मार्ग बनाना होता है। इस प्रकार पर्वतीय प्रदेश में नदी का कार्य विध्वंसात्मक होता है। शनैः –शनैः नदी का पानी मिट्टी को बहा ले जाता है और हजारों वर्षों में किसी घाटी का निर्माण हो जाता है। कभी–कभी ये घाटियां बड़ी तंग और गहरी होती है। इस अवस्था में नदी का प्रयोग यातायात के लिए नहीं किया जा सकता। किन्तु इस अवस्था में नदी के जल से बिजली उत्पन्नकी जा सकती है, जो हमारी दैनिक जीवन मे बड़े काम की वस्तु है।	है। अतः ऋषिकेश तथा हरिद्वार में नदी का बहाव बड़ा तेज है।
मैदानी अवस्था– नदी जहां से पर्वतों को छोड़कर मैदानों में प्रवेश करती है, वहीं से इसका मध्य भाग आरम्भ होता है। इस भाग में नदी की गति मन्द होती है और इसका प्रयोग यातायात व सिंचाई के लिए किया जा सकता है। मैदानों में इसके कार्य ध्वंसात्मक तथा निर्माणकारी दानों ही होते हैं। वर्षा ऋतु में बाढ़ आने पर नदियों से महान जन–धन की हानि होती है। निर्माणकारी कार्य के रुप में नदियां पहाड़ों से अपने साथ लाई हुई मिट्टी को मैदानों में बिछा देती हैं और उन्हें उपजाऊ बनाती हैं। कंकर – पत्थर पानी में घुल जाते हैं और रेत का रूप धारण कर लेते हैं, जो मकान बनाने के काम आती है। इस अवस्था में नदियों से नहरें निकाली जाती हैं। क्योंकि मैदानों मे नदियां बड़ी उपयोगी होती हैं, अतः अधिकांश लोग मैदानों में ही रहते हैं और नदियों के किनारों पर बड़े – बड़े नगर बस जाते हैं। मैदानी अवस्था में नदी का पाट भी चौड़ा हो जाता है और इसकी गति तथा इसका मार्ग बदलता रहता है।	बाढ़ आई हुई किसी नदी का चित्र दिखाया जाएगा। ऐसी अवस्था में सरकार क्या राहत कार्य करती है? बालकों के भौतिक तथा सामाजिक जीवन से समवाय। मकान बनाने में हम किस–किस सामग्री का प्रयोग करते हैं? गंगा नदी के किनारे पर बसे हरिद्वार, कानपुर, बनारस, इलाहाबाद, पटना तथा कलकता आदि नगर भारत के मानचित्र में दिखाए जायेंगे। हरियाणा और पंजाब के वे नगर भी मानचित्र में दिखाए जाएंगे, जो इन राज्यों की नदियों के किनारे बसे हुए हैं।
डेल्टा अवस्था – नदी की अन्तिम अवस्था को डेल्टा अवस्था कहते हैं। यहां आकर नदी की गति और भी धीमी हो जाती हैं और यह अपने साथ लाई हुई मिट्टी तथा कंकर पत्थरों को पीछे छोड़ जाती है। यहां आकर नदी कई भागों में बंट जाती है। इस अन्तिम अवस्था में नदी एक तिकोन की शक्ल बना लेती है, जो डेल्टा कहलाती है। इस अवस्था में नदी केवल निर्माण कार्य करती है; क्योंकि नदी द्वारा लाई गई मिट्टी से जिस नई भूमि का निर्माण होता है, वह बड़ी उपजाऊ होती है, गंगा नदी का डेल्टा भागलपुर में आरम्भ होता है, तो विश्व के सबसे बड़े डेल्टों में से एक है।	गंगा नदी के मॉडल तथा चार्ट से नदी की तीसरी अवस्था दिखाई जाएगी। डेल्टा अवस्था में नदी क्या कार्य करती है? नदियों के नाम लो, जो अच्छा डेल्टा बनाती हैं। भारत में कौन सी नदी सर्वोत्तम डेल्टा बनाती हैं?

पुनरावत्ति

यह जाँच करने के लिए कि क्या बालकों ने पाठ को भली प्रकार समझ लिया है, निम्नलिखित प्रश्न पूछे जाएंगे :–

(1) नदी की विभिन्न अवस्थाएं कौन – कौन सी होती हैं?

(2) पर्वतीय अवस्था में नदी क्या कार्य करती है?

(3) मैदानी अवस्था में नदी के क्या कार्य होते है?

(4) डेल्टा अवस्था में नदी के क्या कार्य हैं?

(5) भारत में कौन सी नदी सर्वोत्तम डेल्टा बनाती है?

प्रयोग तथा गह कार्य

(1) भारत के मानचित्र में गंगा नदी की तीनों अवस्थाएं तथा इनके किनारे पर बसे नगर दिखाओ।

(2) नदी की तीनों अवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन करो।

चॉकबोर्ड कार्य

1. **पर्वतीय अवस्था** – सामान्यतः विध्वंसात्मक कार्य। तीव्र गति – बिजली उत्पादन।
2. **पर्वतीय अवस्था** - निर्माण तथा विध्वंसात्मक कार्य, बाढ़ तथा भू–कटाव पहाड़ी मिट्टी द्वारा मैदानों को उपजाऊ बनाना। यातायात तथा सिंचाई के लिए प्रयोग, किनारे पर बड़े–बड़े नगर।
3. **पर्वतीय अवस्था** - निर्माणात्मक कार्य – मिट्टी, कंकर तथा पत्थरों आदि से नई भूमि का निर्माण, यह बड़ी उपजाऊ होती है।

पाठ योजना नं० 3

कक्षा	**IX**
विद्यार्थियों की आयु का मध्यमान	14 वर्ष
पाठ की अवधि	40 मिनट
विषय	सामाजिक अध्ययन
उपविषय	उच्चतम न्यायालय
तिथि	.....

सहायक सामग्री

1. चार्ट जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के सदस्य दिखाए गए हों।
2. राष्ट्रपति का चित्र।
3. कमरे की सामान्य सामग्री।

पाठ के उद्देश्य

1. सामान्य उद्देश्य

1. बच्चों को नागरिक वातावरण का ज्ञान देना।
2. बच्चों में मनन एवं चिन्तन शक्ति का विकास करना।
3. उन्हें न्याय के महत्व के विषय में ज्ञान देना।
4. तथा उन्हें सुरक्षा की आवश्यकता से परिचित कराना।

2. व्यवहारगत उद्देश्य

बच्चों को उच्चतम न्यायालय के संगठन, अधिकार और कर्त्तव्यों के विषय में विस्तत ज्ञान प्राप्त हो जाएगा।

पूर्वज्ञान

बच्चे स्थानीय न्याय व्यवस्था से अच्छी तरह परिचित हैं। वे पिछली कक्षाओं मे उच्चतम न्यायालय और हाईकोर्ट आदि से अच्छी तरह परिचित हैं। इस प्रकार उनके पूर्वज्ञान के आधार पर उनको उच्चतम न्यायालय का ज्ञान दिया जाएगा।

प्रस्तावना

पूर्वज्ञान परीक्षण हेतु बच्चों से निम्नलिखित प्रश्न पूछे जाएंगे :–

1. भारत कब स्वतन्त्र हुआ?
2. देश का संविधान कब लागू हुआ?
3. संविधान की रक्षा कौन करता है?

उद्देश्य कथन

अच्छा बच्चो! आज हम संविधान के रक्षक उच्चतम न्यायालय के विषय में अध्ययन करेंगे। यह कहकर उपविषय श्यामपट्ट पर लिख दिया जाएगा।

प्रस्तुतीकरण

1. पाठ को कई भागों में बांट कर पढ़ाया जाएगा।
2. पाठ्य विषय को स्पष्ट करने के लिए चित्रों का प्रयोग किया जाएगा।
3. बच्चों से पुनावत्ति के लिए प्रश्न पूछे जाएंगे।
4. श्यामपट कार्य बच्चों की सहायता से किया जाएगा।

पाठ्य वस्तु	पाठ्य विधि
प्रत्येक देश में शान्ति की स्थापना करने हेतु झगड़ों का निपटारा करने के लिए विभिन्न प्रकार के न्यायालय पाए जाते हैं। जैसे स्थानीय स्तर पर पंचायत और नगरपालिका यह कार्य करती है। प्रान्तीय स्तर पर हाईकोर्ट और केन्द्रीय स्तर पर उच्चत न्यायालय की स्थापना की गई है।	प्रश्न (1) उच्चतम न्यायालय की स्थापना क्यों की गई है?
रचना – उच्चतम न्यायालय में एक न्यायाधीश और 13 अन्य न्यायाधीश होते हैं। संविधान में संसद को उच्चतम न्यायालय के सदस्यों में कमी या वद्धि करने का अधिकार दिया गया है। राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति करते समय उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के उन न्यायाधीशों से परामर्श करता है जिन्हें वह आवश्यक समझता है। उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति से सलाह लेता है।	(2) उच्चतम न्यायालय का संगठन किस प्रकार होता है?
	(3) उच्चतम न्यायालय में कितने न्यायाधीश होते हैं?
न्यायाधीशों की योग्यताएं 1. वह भारत का नागरिक हो।	(4) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की क्या योग्यताएं होनी चाहिए?

2. वह किसी उच्च न्यायालय या दो अथवा अधिक उच्चन्यायालयों का कुल पांच वर्ष तक न्यायधीश रह चुका हो।

3. वह किसी उच्च न्यायालय में अथवा दो या अधिक में कुल 10 वर्ष तक एडवोकेट रह चुका हो।

4. वह कानून का प्रसिद्ध ज्ञाता हो।

वेतन तथा भत्ते

(5) न्यायाधीशों को वेतन और भत्ते कितने मिलते हैं?

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को 50,000 रू० मासिक और अन्य न्यायाधीशों को 40,000 रू० मासिक वेतन मिलता है। इनको अन्य भत्ते तथा रहने के लिए भवन मिलता है। इनके कार्यकाल में इनके वेतन भत्ते कम नहीं किए जाएंगे ताकि वे निष्पक्ष होकर न्याय देते रहें। जब राष्ट्रपति वित्तीय संकट की घोषणा कर देता है तो उस समय कुछ समय के लिए इनके वेतनों में कमी की जा सकती है।

अवधि

(6) न्यायाधीश किस अवधि तक अपने पद पर रह सकते हैं?

उच्चतम न्यायालय के न्याधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद

पर रह सकते हैं।

स्थान

(7) उच्चतम न्यायालय का कार्य स्थान कहां पर है?

उच्चतम न्यायालय का स्थान दिल्ली में है। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति के परामर्श से अन्य स्थानों पर भी इसकी बैठक करा सकता है।

अधिकार और शक्तियाँ

(क) प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार –

(1) कोई झगड़ा केन्द्रीय सरकार और एक या अधिक राज्यों मे हो।

(2) दो या अधिक राज्यों में हो।

(8) उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा किस प्रकार करता है?

(ख) मौलिक अधिकारों का संरक्षक –

1. उच्चतम न्यायालय लोगों के मौलिक अधिकारों और संविधान का सरंक्षक माना जाता है। इसको संविधान की व्याख्या करने का अधिकार हे। यदि कोई व्यक्ति या सरकार दूसरों के अधिकारों को कुचलती है तो वह व्यक्ति उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकता है। उच्चतम न्यायालय इस हेतु आदेश जारी कर सकता है।

2. यदि सरकार अथवा संसद कोई ऐसा कानून बना दे जो संविधान का विरोधी हो तो उच्चतम न्यायालय उसे गैर कानूनी घोषित कर सकता है। उच्चतम न्यायालय को पुनः निरीक्षण का अधिकार है।

(ग) अपीलीय क्षेत्राधिकार –

(9) अपीलीय क्षेत्राधिकार से क्या अभिप्राय है?

उच्चतम न्यायालय को हाईकोर्ट या उच्चतम न्यायालयों के फैसलों के विरूद्ध निम्न प्रकार के मुकद्दमों में अपील सुनने का अधिकार है।

1. वैधानिक
2. फौजदारी
3. दीवानी

(10) उच्चतम न्यायालय में कब अपील की जा सकती है?

उच्चतम न्यायालय में तब भी अपील की जा सकती है जबकि कोई कानूनी प्रश्न किसी मुकद्दमें में उत्पन्न हो। इस हेतु उच्च न्यायालय से एक प्रमाण पत्र भी लेना पड़ता है।

(घ) परामर्श सम्बन्धी –

(11) परामर्श सम्बन्धी क्षेत्र में उच्चतम न्यायालय का क्या स्थान हैं?

उच्चतम न्यायालय से राष्ट्रपति कई कार्यों में परामर्श को मानने के लिए विवश नहीं है।

फुटकर अधिकार –

(12) उच्चतम न्यायालय किस रूप में कार्य करता है?

उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय (Court of Record) के रूप में भी कार्य करता है। इसका अर्थ है कि इसके सारे न्याय सम्बन्धी निर्णय प्रकाशित किये जाते है। न्याय संगठन को स्वतन्त्र बनाने के लिए संविधान में इसको बहुत अधिकार दिये गये है।

पुनरावत्ति प्रश्न –

1. उच्चतम न्यायालय की व्यवस्था क्यों की गई है?
2. उच्चतम न्यायालय का संगठन किस प्रकार होता है।
3. न्यायाधीशों की नियुक्ति कौन करता है?
4. उच्चतम न्यायालय के अधिकारों के बारे में आप क्या जानते हैं?
5. उच्चतम न्यायालय का कार्य स्थान कहाँ पर है।

श्यामपट्ट कार्य

उच्चतम न्यायालय की रचना–

13. न्यायाधीश और एक मुख्य न्यायाधीश।

न्यायाधीशों की योग्यताएं –

1.5 सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने जाना शिक्षा की सफलता शिक्षण की पाठ योजना पर निर्भर करती है। पाठ योजना से अध्यापक पाठ को अच्छी तरह से समझा सकता है। इससे पाठ के लक्ष्य स्पष्ट हो जाते हैं। उचित शिक्षण विधियों का चयन करके शिक्षण सामग्री की सहायता से समय तथा शक्ति की बचत करके अध्यापक अपने आत्म विश्वास में वद्धि कर सकता है। पाठ योजना के सोपान के लिये शिक्षा शास्त्री हरबर्ट ने पांच पदो का उल्लेख किया है जिसमें प्रस्तावना अथवा भूमिका पाठ आरम्भ करने के लिये हैं। प्रस्तुतीकरण में तीन इकाईयों में उसे बांटा जाता है। तुलना द्वारा पाठ को समझाया जाता है। विद्यार्थी प्रयोग करके नये ज्ञान को मस्तिष्क में अकिंत करते है। अध्यापक अन्त में समूचे पाठ को संक्षिप्त पुनरावत्ति करवाता है।

1.6 आदर्श उत्तर

(i) पाठ योजना से अभिप्राय है कक्षा में जाने से पहले पाठ को पढ़ाने के लिये क्रियात्मक जानकारी। यह लक्ष्य के आधार पर शिक्षण विधियों का चयन करके शिक्षण–सामग्री के आधार पर पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों तक पहुँचाना है।

(ii) शिक्षा शास्त्री हरबर्ट के पांच सोपान

1. प्रस्तावना, 2. प्रस्तुतीकरण, 3. तुलना, 4. प्रयोग 5. पुनरावति

1.7 मुख्य शब्द

मूल्यांकन – वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति को जांचने के लिए की गई प्रक्रिया।

क्रियान्वन – किसी भी निर्मित योजना को कार्य रूप प्रदान करना।

1.8 संदर्भ पुस्तकें

Bining and Bining : Teaching the Social Studies in Secondary Schools, Mc Graw-Hill Book Co. New York, Toronto

शैदा. बी० डी०: सामाजिक अध्ययन शिक्षण

गुप्ता रेनुः 'सामाजिक अध्ययन शिक्षण'

11. शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया में अनेक सहायक शिक्षण सामग्री मानचित्र, एटलस, पर्यटन, चार्ट, रेडियो, अभिनय आदि प्रयुक्त किये जाते हैं जिससे पाठ्य वस्तु को रोचक बनाया जा सकता है। परन्तु पाठ्य पुस्तकें वह साधन है जिसमें पाठ्य वस्तु को सरल तथा बोधगम्य बनाया जाता है और ज्ञान को समन्वित किया जाता है। अतः शिक्षा की प्रक्रिया का पाठ्य पुस्तकें अभिन्न अंग है।

2.9 पाठ्य पुस्तकों के प्रकार (Types of Text Books)

सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं :–

1. परम्परागत पाठ्य पुस्तकें (Traditional Text Books)

इन्हें संक्षिप्त पाठ्य पुस्तकों की भी संज्ञा दी जाती है। इनकी विशेषता यह है कि पाठ्य पुस्तक को पूर्ण रूप से घटनाओं एवं तथ्यों के रूप में प्रस्तुत करती है। विषय वस्तु को समय के क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। इन पुस्तकों से बालकों का सजनात्मक विचारशक्ति के विकास के लिये अवसर नहीं मिलता है।

2. पाठ्यक्रम पर आधारित पुस्तकें (Books Based on Curriculum)

इन पाठ्य पुस्तकों को किसी स्तर के लिये प्रयुक्त किया जाता है। यह पाठ्यक्रम एवं स्तर द्वारा नियन्त्रित होती हैं। ज्ञान की दष्टि से अधिक संकुचित होती है। एक ही विषय वस्तु के लिये माध्यमिक स्तर तथा उच्चतर माध यमिक स्तर के लिये तथ्यों, घटनाओं, रूपरेखा में अन्तर पाया जाता है। इन पाठ्य पुस्तकों के निर्माण में शिक्षण उद्देश्यों को विशेष महत्व दिया जाता है।

3. सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books)

इस प्रकार की पाठ्य पुस्तकों की रूपरेखा अधिक विस्तत होती है। इसमें तथ्यों एवं घटनाओं की व्याख्या गहनता से की जाती है और भावी विकास के लिये अवसर प्रदान किया जाता है। शिक्षक इसका अध्ययन सन्दर्भ रूप में करता है, इसलिये इन्हें सन्दर्भ–पुस्तकों की संज्ञा दी जाती है।

द्वितीय प्रकार की पाठ्य पुस्तकें सभी कक्षाओं में प्रयुक्त की जाती है, परन्तु प्रथम प्रकार की पुस्तकें उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में प्रयुक्त की जाती है। सन्दर्भ पुस्तकों का प्रयोग शिक्षण तथा उच्च कक्षाओं में किया जाता है।

2.10 पाठ्य पुस्तकों के गुण तथा विशेषताएं (Merits and Characteristics of Text Books)

सामाजिक अध्ययन की पाठ्य पुस्तक कैसी होनी चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर एक और प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है। वह यह है कि पाठ्य पुस्तक का प्रयोग कौन करेगा – शिक्षक या छात्र ? पाठ्य पुस्तक स्पष्टतः छात्रों के लिए होती है। उन्हें ही इसे कक्षा में तथा घर पर पढ़ना है और इससे अधिकाधिक लाभ उठाना है तो स्वतः ही प्रश्न उठता है कि जब पाठ्य पुस्तक छात्र के लिए है तो यह किस प्रकार की होनी चाहिए ? अर्थात् इसमें कौन कौन से गुण या विशेषताऐं होनी चाहिए? इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख नीचे दिया जा रहा है :–

1. आकर्षण (Attractive)

पाठ्य पुस्तकें बच्चों की आयु, योग्यता तथा स्तर के अनुकूल होनी चाहिएं। ये पुस्तकें विद्यार्थी को आकर्षक लगे। पाठ्य पुस्तक का मुद्रण सुन्दर हो। कागज अच्छी गुणवता का होना चाहिए। जिल्द तथा मुखपष्टआदि शुद्ध एवं आकर्षक हों।

2. बालकेन्द्रित पाठ्य पुस्तक (Child Centred Text Book)

मनोविज्ञान के अनुसार बच्चे विभिन्न योग्यता तथा क्षमता के होते हैं उनका आयु वर्ग उनकी मानसिक योग्यता भिन्न होती है इसलिये पाठ्य पुस्तक बालकेन्द्रित होनी चाहिए। वह शिक्षण उद्श्यों के आधार पर लिखी हुई हो।

इकाई-III

स्व अनुदेशन नमूनों का विकास

(Development of Self-Instructional Modules)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

– स्वयं अनुदेशन की परिभाषा दे सकें।

– व्यक्तिगत अनुदेशन नमूनों की व्याख्या कर सकें।

– समूह निर्देशित अनुदेशन नमूनों का वर्णन कर सके।

– स्व अनुदेशन के विकास के बारे में जान सकें।

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 व्यक्तिगत अनुदेशन नमूने

3.3 समूह निर्देशित अनुदेशन नमूने

3.4 स्व अनुदेशन का विकास

3.5 सारांश

3.6 आदर्श उत्तर

3.7 मुख्य शब्द

3.8 सन्दर्भ पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षण एक कला है जो दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य चलती है। यह निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है। मनुष्य जन्म से लेकर मत्यु तक सतत् सीखता रहता है। वह शिक्षण, अभ्यास तथा अनुभव सेसीखता है। विद्यार्थी स्वयं अनुभव एवं अभ्यास से सीखे इसके लिये आधुनिक तकनीकों द्वारा कई प्रकार की विधियों, प्रविधियों एवं तकनीकों का शिक्षण अधिगम के क्षेत्र में प्रचलन हुआ है यह माडयूलज (नमूने) कहलाते हैं। इसमें अनुदेशन का ऐसा वातावरण बनाया जाता है जिसमें विद्यार्थी अध्यापक के हस्तक्षेप के बिना स्वयं अनुदेशन द्वारा अधिगम प्राप्त करता है। इन गतिविधियों को अध्यापक तैयार करता है इन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है :–

3.2 व्यक्तिगत अनुदेशन नमूने (Self-Instructional Module)

1. अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Instruction)
2. कम्प्यूटर की सहायता से अनुदेशन (Computer Assisted Instruction)
3. प्रयोजना (प्रोजेक्ट) (Project)
4. दत्तकार्य (Assignments)

3.3 समूह अनुदेशन नमूने (Group Instructional Modules)

1. परिचर्चा (Discussion)
2. वाद–विवाद (Debate)
3. सिम्पोजियम (Symposium)
4. पेनल परिचर्चा (Panel Discussion)

इस प्रकार स्व–अनुदेशन में विद्यार्थी अध्यापक की अनुपस्थिति में स्वयं अधिगम करता है। अनुदेश व्यक्तिगत अनुदेशन नमूनों अथवा समूह निर्देशित नमूनों की सहायता सें किया जा सकता हैं।

3.2.1 अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Instruction)

अभिक्रमित अधिगम प्रशिक्षण प्रदान करने की एक सरल तकनीक है। सीखने की प्रक्रिया को यह प्रभावशाली बनाती है इस तकनीक से व्यक्तिगत रूप से प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इसमें पाठ्य सामग्री को पहले तार्किक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है और फिर उसे छोटे–छोटे उचित पदों में विभाजित किया जाता है। पदों को फ्रेम कहा जाता है। ये फ्रेम आपस में सम्बन्धित होते हैं। इन फ्रेमों को एक–एक करके विद्यार्थी के सामने प्रस्तुत किया जाता है। वह प्रत्येक फ्रेम के प्रति सक्रिय होकर प्रतिक्रिया करता है। उसे उसकी सफलता का तुरन्त ज्ञान कराया जाता है और पुनर्बलन प्रदान किया जाता है। विद्यार्थी इन फ्रेमों में विभाजित पाठ्य सामग्री को स्वयं की गति से सीखता है और सीखकर आगे बढ़ता है। इस प्रकार विद्यार्थी सम्पूर्ण पाठ्य सामग्री को क्रमबद्ध ढंग से सीखता है। इस तकनीक को विभिन्न प्रकार के नामों से जाना जाता है जैसे अभिक्रमित अनुदेशन, व्यक्तिगत अनुदेशन, स्वतः अनुदेशन अथवा क्रमवद्ध अध्ययन। इसे सुकरात की देन माना जाता है और बी०एफ० स्किनर के क्रिया प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त पर आधारित है।

स्मिथ व मूरे के शब्दों में, ''अभिक्रमित अनुदेशन सीखी जाने वाली सामग्री को क्रमबद्ध पदों की श्रंखला में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया है जिससे विद्यार्थी प्रायः परिचित पष्ठभूमि से जटिल तथा नये प्रत्ययों, सिद्धान्तों व बोध की ओर अग्रसर होते हैं।''

मारकल के विचार इस प्रकार हैं, ''अभिक्रमित अधिगम एक ऐसी व्यूह रचना है जिसकी सहायता से शिक्षण सामग्री को एक ऐसे क्रम में नियोजित किया जाता है जिससे छात्रों में लगातार अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है और उनका मापन किया जाता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि अभिक्रमित अनुदेशन विद्यार्थियों की कमजोरियों का निदान करके उनका उपचार करने में सहायक है इसमें एक उद्दीपक और दूसरा अनुक्रिया है जिसे आवश्यकतानुसार पुनर्बलन द्वारा अनुक्रिया को उचित किया जाता है।

अभिक्रमित अनुदेशन की विशेषताऐं (Characteristics of Programmed Instruction)

1. एक समय में एक व्यक्ति को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।
2. इसमें पाठ्य सामग्री को तार्किक क्रम में व्यवस्थित करके उसे छोटे–छोटे पदों में विभाजित किया जाता है।
3. इसमें पाठ्य सामग्री को पदों में विभाजित करते समय विद्यार्थियों के प्रारम्भिक व्यवहार तथा अन्तिम व्यवहार को ध्यान में रखा जाता है।
4. इसमें पदों में विभाजित पाठ्य सामग्री को विद्यार्थी के सामने प्रस्तुत किया जाता है। विद्यार्थी इसके प्रति सक्रिय होकर प्रतिक्रिया करता है और स्वयं की गति से सीखकर आगे बढ़ता है।
5. इसमें विद्यार्थी को तुरन्त उसकी सफलता का ज्ञान कराया जाता है और पुनर्बलन प्रदान किया जाता है।
6. इसमें विद्यार्थियों के व्यवहार में हुए परिवर्तनों का मापन किया जाता है।

7. इसमें अध्यापक का कक्षा में उपस्थित होना अनिवार्य नहीं है। उसकी अनुपस्थिति में शिक्षण मशीन, कम्प्यूटर आदि की सहायता से प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

8. इसमें ट्यूटोरियल शिक्षण की भांति प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

अभिक्रमित अनुदेशन के मूलभूत सिद्धान्त (Fundamental Principles of Programmed Instruction)

अभिक्रमित अनुदेशन के पांच मूलभूत सिद्धान्त प्रो० वी० एफ० स्किनर ने परिभाषित किये हैं :–

1. छोटे पदों का सिद्धान्त (Principle of Small Steps)

इस सिद्धान्त के अनुसार अभिक्रमित अधिगम में पाठ्य सामग्री को छोटे छोटे पदों में विभाजित किया जाता है। इन पदों को फ्रेम कहा जाता है। इन फ्रेमों को एक–एक करके विद्यार्थी के सामने प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक फ्रेम में सूचना दी गई होती है और विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया के लिए प्रावधान होता है। इस सिद्धान्त की धारणा यह है कि विद्यार्थी पाठ्य सामग्री को छोटे–छोटे पदों में सरलता व प्रभावशाली ढंग से सीखते हैं और पाठ्य सामग्री पर दक्षता प्राप्त कर लेते हैं।

2. सक्रिय प्रतिक्रिया का सिद्धान्त (Principle of Active Response)

इस सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थी सक्रिय रहकर अच्छी प्रकार से सीख सकता है। यदि विद्यार्थी को कुछ सीखना है तो उसे सीखे जाने वाले कार्य के प्रति सक्रिय रहकर क्रिया करनी होगी। जो विद्यार्थी सीखने के लिए सक्रिय होता है वह अधिक सीखता है। बिना सक्रिया रहे विद्यार्थी उचित प्रतिक्रिया नहीं कर सकता और न ही अच्छी प्रकार से सीख पाता है। इस प्रकार उचित प्रतिक्रिया करने के लिए विद्यार्थी को सक्रिय रहना आवश्यक है।

3. तत्काल पुष्टि का सिद्धान्त (Principle of immediate confirmation)

इस सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थी की प्रतिक्रियाऐं सही या गलत होने की तत्काल जॉच की जाती है। अभिक्रमित अधिगम में पाठ्य सामग्री को इस तरह से प्रस्तुत किया जाता है कि जैसे ही विद्यार्थी अगले पद पर पहुॅचता है तो उसे पहले वाले पद की सही प्रतिक्रिया का पता चल जाता है। वह अपनी प्रतिक्रिया का सही प्रतिक्रिया से मिलान करके उसके सही या गलत होने का निर्धारण करता है। शाखीय अभिक्रमण में विद्यार्थी को यह भी बताया जाता है कि उसकी प्रतिक्रिया गलत है तो क्यों गलत है? उसे अपनी गलत प्रतिक्रिया को सही करने के लिए अतिरिक्त पाठ्य सामग्री के अध्ययन के लिए सुझाव भी दिये जाते हैं।

4. स्वयं गति का सिद्धान्त (Principle of Self-Pacing)

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी अपनी स्वयं की गति से सीखता है। विद्यार्थियों में व्यक्तिगत विभिन्नताऐं होती हैं। प्रत्येक विद्यार्थी शारीरिक और मानसिक योग्यताओं में दूसरे से अलग होता है। सभी विद्यार्थी अपनी स्वयं की गति से सीखते हैं और सीखकर आगे बढ़ते हैं। यदि विद्यार्थी को स्वयं की गति से सीखने के अवसर प्रदान किये जायें तो वह अधिक व तीव्र गति से सीखता है। अभिक्रमित अधिगम में विद्यार्थी फ्रेमों में विभाजित पाठ्य सामग्री को स्वयं की गति से सीखता है और सीख कर आगे बढ़ता है।

5. विद्यार्थियों के परीक्षण का सिद्धान्त (Principle of Testing Students)

इस सिद्धान्त के अनुसार अभिक्रमित अनुदेशन में विद्यार्थियों का निरन्तर परीक्षण व मूल्यांकन होता रहता है। इसमें सबसे पहले प्रारम्भिक व्यवहार को जाना जाता है और फिर अन्तिम व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। विद्यार्थियों का परीक्षण करने के लिए अभिक्रमित अनुदेश सामग्री चार या पॉच विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से दी जाती है। फिर यह सामग्री छोटे समूह को दी जाती है। उसके आधार पर सामग्री में आवश्यक संशोधन किये जाते हैं। अन्त में यह सामग्री वास्तविक परिस्थितियों में विद्यार्थियों के एक बड़े समूह को दी जाती है। इससे विद्यार्थियों की उपलब्धियों का परीक्षण व मूल्यांकन किया जाता है।

अभिक्रमित अनुदेशन के प्रकार (Types of Programmed Instruction)

प्रायः अभिक्रमित अनुदेशन को तीन श्रेणियों में बांटा जाता है –

1. रेखीय अभिक्रमण
2. शाखीय अभिक्रमण
3. मैथेटिक्स अभिक्रमण

1. रेखीय अभिक्रमण (Linear Programming)

बी०एफ० स्किनर जिन्हें सामाजिक आविष्कारक के रूप में जाना जाता है, अधिगम के इस आरूप के मुख्य प्रतिपादक हैं। इस तरह की सामग्रियों का एक पुस्तक के रूप में उत्पादन किया जा सकता है अथवा इसका रेखीय मशीन पर प्रयोग किया जा सकता है। अधिगम की इस शैली में निम्नलिखित पद लिये जाते हैं –

(क) विषयवस्तु को सूचना के छोटे–छोटे भागों और पदों में विभक्त किया जाता है जिन्हें फ्रेम कहा जाता है।

(ख) छात्र को एक समय में एक फ्रेम का प्रत्युत्तर देना होता है। इससे पहले कि वह अगले फ्रेम पर जाये उसके उत्तर की तुरन्त पुष्टि की जाती है क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी को अनुदेशन के एक ही अनुक्रम से गुजरना होता है। उसे रेखीय अनुक्रम कहा जाता है।

(ग) छात्र को अपना स्वयं उत्तर बनाना होता है। इसके लिये उसे रिक्त स्थान को शब्द अथवा वाक्यांश से भरना होता है अथवा चित्र को पूरा करना होता है।

(घ) इसके पश्चात् वह अपने रचित उत्तर को सही उत्तर से जो कि फ्रेम के बाद तुरन्त ही दिया रहता है, मिलान करता है।

प्रत्युत्तर अनुदेशक श्रंखला के अन्दर ही देना होता है। सही उत्तर अनुवर्ती फ्रेम साईड में रहता है। इस उत्तर को उस समय तक छुपा कर रखा जाता है जब तक कि शिक्षार्थी अगले पद पर जाने को तैयार न हो।

रेखीय अभिक्रम में लेखक प्रत्येक अनुवर्ती पद को छोटा बनाने का प्रयत्न करता है, ताकि शिक्षार्थियों द्वारा की जाने वाली त्रुटियों से बचा सके। छात्र अगर कोई त्रुटि करता है तो वह इच्छित उत्तर से अपना प्रत्युत्तर मिला सकता है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य क्रिया प्रत्युत्तर को ठीक करने के लिये नहीं की जाती। एक रेखीय अभिक्रम छोटे छोटे पदों द्वारा अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

रेखीय अभिक्रमण की विशेषताऐं (Characteristics of a Linear Programming)

1. यह अभिक्रमण छोटे छोटे फ्रेमों से मिलकर बनता है।
2. इसमें फ्रेम सरलता से कठिनता के क्रम में व्यवस्थित होते हैं।
3. फ्रेमों का आपस में सम्बन्ध होता है।
4. प्रत्येक फ्रेम में एक विचार या सिद्धान्त दिया होता है।
5. प्रत्येक फ्रेम के प्रति एक बार प्रतिक्रिया की जाती है।
6. प्रतिक्रिया करने पर विद्यार्थी को पुनर्बलन मिलता है।
7. विद्यार्थी अपनी स्वयं की गति से सीखता है।
8. सभी विद्यार्थी एक ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।

रेखीय अभिक्रमण की सीमाऐं (Limitations of a Linear Programming)

1. रेखीय अभिक्रमण में अधिगम काफी नीरस और उबाने वाली क्रिया बन जाता है क्योंकि विषयवस्तु के छोटे व साधारण भागों को सिखाने में बहुत समय लग जाता है।
2. इस विधि में विद्यार्थियों की स्वतन्त्रता पर अंकुश लग जाता है अतः यह विद्यार्थियों को सजनात्मक और निर्णायात्मक योग्यता को प्रोत्साहित नहीं करती।
3. इस प्रणाली का उपयोग केवल उन विषयों से सम्बन्धित सामग्री तक ही सीमित रहता है जिन्हें रेखिक रूप में ठीक ढंग से क्रमबद्ध किया जा सके।

4. इस अभिक्रम शैली में अधिगमकर्त्ता को सही उत्तर देने के लिए कई बार पर्याप्त संकेत मिल जाते हैं और इस प्रकार वास्तविक अधिगम नहीं हो पाता।

5. इस विधि में अधिगम क्रमबद्ध ढंग से प्राप्त किया जाता है परन्तु वास्तविक जीवन में अधिगम सदा क्रमबद्ध नहीं होता है।

2. शाखीय अभिक्रमण (Branching Programming)

इस विधि को आन्तरिक अभिक्रम भी कहते हैं। इसका आरम्भ नारमन ए कराऊडर ने किया था। उसने इसकी परिभाषा में इसे एक ऐसा अभिक्रम बताया जो अधिगम को छात्रों की आवश्यकता के अनुसार संगणक जैसे बाह्य उपकरण के बिना अनुकूल बनाता है इसकी मुख्य विशेषताऐं इस प्रकार हैं :–

1. फ्रेम का आकार और उसमें दी गईसूचना की सीमा एक रेखीय कार्यक्रम से कहीं अधिक होती है।
2. इसमें प्रत्येक फ्रेम पर एक से अधिक विचार दिये होते हैं।
3. इसमें दो प्रकार के फ्रेम होते हैं – (क) मुख्य फ्रेम तथा (ख) उपचारात्मक फ्रेम।
4. इसमें बहु–वैकल्पिक प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।
5. यह अभिक्रमण ट्यूटोरियल विधि पर आधारित है। इसमें अध्यापक शारीरिक रूप से उपस्थित नहीं रहता, फिर भी उससे पूरा लाभ उठाया जाता है।
6. इसमें नवीन सामग्री का प्रयोग किया जाता है, जो सीखने में अधिक सहायता करती है।
7. इसमें गलत प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक है और उस त्रुटि का पता लगाकर उसे दूर करने का प्रयास किया जाता है।
8. इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताओं व विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है, इसलिए इसके द्वारा प्रभावशाली अधिगम सम्पन्न होता है।

शाखीय अभिक्रमण के दोष (Demerits of Branching Programming)

1. यह एक महंगी तकनीक है।
2. इसमें विस्तत कार्यक्रम की पुस्तकों व दश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग किया जाता है, जो प्रायः उपलब्ध नहीं होती।
3. इसमें प्रयुक्त बहु–वैकल्पिक प्रश्नों का निर्माण करना कठिन होता है।
4. कई बार विद्यार्थी अनुमान के सहारे सही उत्तर अंकित कर देता है जिसे प्रभावशाली अधिगम नहीं कह सकते।
5. इस अभिक्रमण को कम्प्यूटर तथा शिक्षण मशीन के द्वारा नहीं दिया जा सकता।
6. यह अभिक्रमण छोटी कक्षाओं के बालकों के लिए उपयुक्त नहीं है।

3. मैथेटिक्स अभिक्रमण अथवा अवरोही अभिक्रमण (Mathetics Programming)

इस शैली के मुख्य उपदेशक टी०एफ० गिलबर्ट हैं। गिलबर्ट के अनुसार, ''मैथेटिक्स से तात्पर्य जटिल व्यवहार समूह के विश्लेषण व पुनः निर्माण हेतु पुनर्बलन के सिद्धान्तों के उस सुव्यवस्थित प्रयोग से है जो पाठ्य–सामग्री में निपुणता का प्रतिनिधित्व करता है।'' इस अभिक्रमण का विकास गणित शिक्षण के लिए किया गया था लेकिन अब इसका प्रयोग अन्य विषयों के शिक्षण में भी किया जाने लगा है। इस अभिक्रमण में पाठ्य–सामग्री को एक कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें अन्तिम फ्रेम को पहले तथा पहले फ्रेम को अन्त में प्रस्तुत किया जाता है। यह अभिक्रमण कठिन कौशलों को अर्जित करने, वांछित व्यवहार को प्राप्त करने और पाठ्य सामग्री पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने व उसमें पारंगत होने में उपयोगी सिद्ध होता है।

मैथेटिक्स अभिक्रमण में अनुदेशन अधिक प्रेरणादायक कार्य से प्रारम्भ होता है। इसमें रेखीय व शाखीय अभिक्रमण की तरह इकाई फ्रेम न होकर समस्या या अभ्यास होती है। इस अभ्यास का कोई निश्चित आकार नहीं होता। इसके अन्तर्गत व्यवहार में विभेदीकरण, सामान्यीकरण व श्रंखला को महत्त्व दिया जाता है और सभी प्रकार

के अनुदेशन में इन तीनों व्यवहारों का शिक्षण किया जाता है। इसमें पाठ्य–सामग्री को एक श्रंखला के रूप में विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। विद्यार्थी इसके प्रति अवरोही क्रम में विशिष्ट प्रतिक्रियाऐं करते हैं अर्थात् उन्हें अन्तिम क्रिया पहले करनी पड़ती है और पहली क्रिया अन्त में करनी पड़ती है। इसलिए इस अभिक्रमण को अवरोही श्रंखला अभिक्रमण भी कहते हैं। इसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

1. यह अभिक्रमण अन्तिम व्यवहार से प्रारम्भिक व्यवहार की दिशा में चलता है।
2. इसमें अधिगम की इकाई फ्रेम न होकर समस्या या अभ्यास होती है।
3. इसमें पाठ्य–सामग्री को अधिक महत्त्व दिया जाता है।
4. इसमें अध्यापक की अनुपस्थिति में भी विद्यार्थी पाठ्य–सामग्री पर अधिकार प्राप्त कर सकता है।
5. यह अनुदेशन प्रेरणादायक क्रियाओं के लिए अधिक प्रभावशाली होता है।
6. अधिगम की परिस्थिति में विभेदीकरण, सामान्यीकरण तथा श्रंखला अधिगम अधिक प्रभावशाली होता है।

मैथेटिक्स अभिक्रमण के दोष (Demerits of Mathetics Programming)

1. इसका प्रयोग सीमित है। इसके द्वारा सभी प्रकार की पाठ्य–सामग्री को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।
2. इसका निर्माण करना कठिन है।
3. इसमें विद्यार्थी की आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा जाता।
4. इसमें विद्यार्थी को स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की जाती।
5. इस विधि का प्रयोग उच्च उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नहीं किया जा सकता।
6. इसमें विद्यार्थियों के लिए उपचारात्मक शिक्षण की आवश्यकता नहीं होती।
7. इस विधि का प्रयोग प्रत्ययों व नियमों को बोधगम्य बनाने के लिए प्रभावशाली ढंग से करना कठिन है।

अभिक्रमित सामग्री का निर्माण (Construction of Programmed Materials)

अभिक्रमित अनुदेशन अथवा कम्प्यूटर सह–अनुदेशन सामग्री का निमार्ण कार्य एक चुनौतीपूर्ण कार्य है जो निम्नलिखित तीन अवस्थाओं में सम्पन्न होता है :–

1. तैयारी की अवस्था
2. विकासात्मक अवस्था
3. परीक्षण एवं संशोधन अवस्था

1. **तैयारी की अवस्था (Preparation Stage)**
   - (क) इकाई या उपविषय का चयन
   - (ख) विषय–वस्तु की रूपरेखा तैयार करना
   - (ग) उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में परिभाषित करना
   - (घ) पूर्व–व्यवहारों के परीक्षणों की रचना
   - (ङ) अन्तिम व्यवहारों के परीक्षण की रचना

2. **विकासात्मक अवस्था (Developmental Stage)**
   - (क) सामग्री को फ्रेम में प्रस्तुत करना
   - (ख) विद्यार्थी से सक्रिय अनुक्रिया की आवश्यकता
   - (ग) विद्यार्थी की अनुक्रिया की पुष्टि
   - (घ) विद्यार्थी की अनुक्रियाओं के मार्गदर्शन हेतु संकेतों का प्रयोग करना।
   - (ङ) फ्रेमों को ध्यानपूर्वक क्रम प्रदान करना।

3. **परीक्षण एवं संशोधन अवस्था (Tryout and Revision Stage)**

(क) मौलिक ड्राफ्ट लिखना

(ख) मौलिक ड्राफ्ट का सम्पादन करना

(ग) परीक्षण और संशोधन

इस प्रकार अभिक्रमित अनुदेशन का शिक्षा की एक तकनीकी के रूप में विकास हुआ है जिससे अनुदेशन क्रिया को अधिगम के सिद्धान्तों के प्रयोग में सुधारा जा सके।

3.2.2 कम्प्यूटर की सहायता द्वारा अनुदेशन (Computer Assisted Instruction (CAI)

कम्प्यूटर को शैक्षिक तकनीकी प्रथम या हार्डवेयर उपागम में ही सम्मिलित किया जाता है। यह स्वतः अनुदेशनात्मक पद्धति का एक उपकरण है जिसका प्रयोग व्यक्तिगत अनुदेशन के लिये किया जाता है। कम्प्यूटर ने व्यापार, उद्योग, तथा शासन प्रणाली को अधिक प्रभावित किया है परन्तु इसका प्रभाव विद्यालय तथा शिक्षा प्रणाली पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। शिक्षण के क्षेत्र में अनुदेशन पद्धति, शोध कार्यो तथा परीक्षा प्रणाली को कम्प्यूटर ने अधिक प्रभावित किया है।

कम्प्यूटर को विद्युत मस्तिष्क भी कहते हैं। यद्यपि अन्य शिक्षण–मशीनों में पाठ्यवस्तु को छोटे–छोटे पदों में क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है परन्तु इन मशीनों को कोई निर्णय नहीं लेना पड़ता जबकि कम्प्यूटर को पूर्वव्यवहारों के आधार पर अनुकूल अनुदेशनों का चयन करना पड़ता है। यह निर्णय कम्प्यूटर द्वारा ही लिया जाता है। इसलिये इसे विद्युत मस्तिष्क कहते हैं।

कम्प्यूटर के प्रमुख कार्य (Main Functions of Computer)

कम्प्यूटर अनुदेशन तथा शिक्षण में निम्नलिखित कार्य करता है :–

1. कार्डो पर सूचनाओं को संचित करता है। चुम्बकीय टेप तथा टेप पर सूचनाओं को संचित करता है।
2. अनुदेशन सामग्री को भी संचित करता है। एक ही प्रकरण पर 32 प्रकार की अनुदेशन सामग्री रखता है। जिससे 32 तरह की व्यक्तिगत सुविधा प्रदान की जाती है।
3. संचित सूचनाओं में से अपेक्षित प्रदत्तों का चयन करता है।
4. विद्युत टंकन मशीन की सहायता से सूचनाओं का सम्प्रेषण करता है।

कम्प्यूटर तथा शिक्षण-प्रक्रिया (Computer and Teaching Process)

लॉरेंस स्टोलुरो तथा डेनियल डेविज ने सबसे जटिल शिक्षण प्रतिमान का विकास किया जिसमें शिक्षक के स्थान पर कम्प्यूटर का अनुदेशन के प्रस्तुतीकरण के लिये प्रयोग किया गया है। स्टोलुरो तथा डेविज ने कम्प्यूटर की शिक्षण प्रक्रिया को दो पक्षों में विभाजित किया है।

1. पूर्व अनुवर्ग शिक्षण अवस्था तथा
2. अनुवर्ग शिक्षण

प्रथम पक्ष में कम्प्यूटर अनुदेशन विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये विशिष्ट छात्र को उसके पूर्वज्ञान के आधार पर करता है। द्वितीय अवस्था में कम्प्यूटर उसके अनुरूप अनुदेशन सामग्री प्रस्तुत करता है। कम्प्यूटर अनुदेशन के प्रस्तुतीकरण के बाद उसका नियन्त्रण भी करता है तथा छात्रों को पुनर्बलन भी प्रदान करता है।

कम्प्यूटर का उपयोग (Uses of Computer)

कम्प्यूटर का उपयोग आधुनिक समय में अधिक व्यापक हो गया है, उद्योग, व्यापार, सेना तथा शिक्षा में किया जाने लगा है। शिक्षा के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग चार क्षेत्र में अधिक व्यापक रूप से किया जाने लगा है।

1. शिक्षण तथा अनुदेशन प्रक्रिया में छात्रों के निदान के आधार पर सुधारात्मक शिक्षण भी किया जाता है।
2. शिक्षा के शोध कार्यो में प्रदत्तों के विश्लेषण में सभी अनुसंधानकर्त्ता करने लगे हैं।

3. कम्प्यूटर का उपयोग शैक्षिक निर्देशन तथा परामर्श में भी किया जाने लगा है।

4. परीक्षा प्रणाली में छात्रों के परीक्षाफल तैयार करने, अंकशीट तैयार करने तथा प्रमाण–पत्र भी तैयार करने में किया जाता है।

भारतवर्ष में परीक्षा प्रणाली तथा शोध कार्यों का उपयोग सामान्य रूप से किया जाने लगा है। शिक्षा बोर्डो, विश्वविद्यालयों में तो इसका प्रयोग किया ही जाता है। हरियाणा सरकार ने तो सभी स्कूलों में भी इसकी शिक्षा को अनिवार्य करने के लिए सभी स्कूलों में इसके द्वारा शिक्षा प्रदान करने की तथा इसका उपयोग करने की सरकारी स्तर पर अधिसूचना जारी कर दी है। कम्प्यूटर द्वारा अभ्यास करवाया जा सकता है। खेल खेल में पढ़ाया जा सकता है। छोटे समूहों में जानकारी दी जा सकती है नई खोज व शोध कार्य किया जा सकता है। अनुरूपण के लिये भी यह उपयोगी साधन है।

3.2.3 प्रयोजन (Project)

योकम व सिम्पसन के अनुसार प्रोजेक्ट स्वाभाविक वातावरण में किये जाने वाले स्वाभाविक एवं जीवन–तुल्य कार्य की एक बड़ी इकाई होती है। इसमें किसी कार्य को करने या किसी वस्तु को बनाने की समस्या का पूर्ण रूप से समाधान करने का प्रयास किया जाता है। प्रोजेक्ट उद्देश्यपूर्ण होता है। प्रोजेक्ट के विषय में कुछ विद्वानों ने निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं:–

किलपैट्रिक – ''प्रोजेक्ट सामाजिक वातावरण में पूर्ण संलग्नता से किया जाने वाला उद्देश्यपूर्ण कार्य है।''

स्टीवेन्सन – ''प्रोजेक्ट एक समस्यात्मक कार्य है जिसका समाधान उसके प्रकत वातावरण में रहते हुए ही किया जाता है।''

पार्कर – ''प्रोजेक्ट कार्य की एक इकाई है, जिसमें छात्रों को कार्य की योजना और सम्पन्नता के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है।''

बेलार्ड – ''प्रोजेक्ट वास्तविक जीवन का एक छोटा सा अंश होता है जिसे विद्यालय में सम्पादित किया जाता है।''

योजना का सामान्य शिक्षा में प्रयोग अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय के शिक्षा–शास्त्री एवं प्रोफैसर जॉन डीवी ने किया। किलपैट्रिक ने जॉन ड्यूवी के प्रयोजनवाद के सिद्धान्त के आधार पर योजना विधि को निश्चित रूप प्रदान किया है।

अच्छे प्रयोजन की विशेषताऐं (Characteristics of a Good Project)

1. अच्छी योजना उद्देश्यपूर्ण होती है जो बालकों को कार्य करने के लिए उत्तेजित करती है।
2. अच्छी योजना पूर्वानुभवों पर आधारित होनी चाहिए।
3. अच्छी योजना छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।
4. अच्छी योजना उपयोगी होनी चाहिए।
5. अच्छी योजना व्यावहारिक और वास्तविक होनी चाहिए।
6. अच्छी योजना में विद्यार्थी को कार्य करने व अपनी क्षमता के अनुसार क्रिया के चयन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हानी चाहिए।
7. अच्छी योजना का सम्बन्ध छात्रों की तत्कालीन आवश्यकताओं व सामाजिक वातावरण से होता है।
8. अच्छी योजना के लिए ऐसी सामग्री का चयन करना चाहिए जो सरलता से उपलब्ध हो जाए।
9. अच्छी योजना अधिक खर्चीली नहीं होनी चाहिए।
10. अच्छी योजना से छात्रों को सहयोग, चरित्र निर्माण जैसे सामाजिक अनुभव प्राप्त होने चाहिए।

प्रयोजनाओं के प्रकार (Types of Projects)

1. व्यक्तिगत प्रोजेक्ट

इनमें प्रत्येक छात्र को एक प्रोजेक्ट दे दिया जाता है, जिसे वह पूर्ण करता है। उदाहरणार्थ मानचित्र, चित्र, समय रेखा, आदि का निर्माण करना।

2. सामूहिक प्रोजेक्ट

इनमें छात्र एक दूसरे के सहयोग से किसी प्रोजेक्ट को पूर्ण करते हैं। उदाहरणार्थ विद्यालय, पोस्ट ऑफिस, सहकारी दुकान एवं बैंक का संचालन।

थामस एम० रिस्क ने अपनी पुस्तक "Principles & Practices of teaching Secondary Schools" में तीन प्रकार की योजनाओं का उल्लेख किया है; यथा –

1. उत्पादनात्मक प्रोजेक्ट

इनमें किसी भौतिक वस्तु का निर्माण किया जाता है, उदाहरणार्थ – मॉडल बनाना, खिलौने बनाना।

2. सीखने से सम्बन्धित प्रोजेक्ट

इनमें किसी रचनात्मक या सजनात्मक क्रिया के माध्यम से ज्ञान का अर्जन किया जाता है। उदाहरणार्थ – कहानी लिखना सीखना।

3. बौद्धिक या समस्यात्मक प्रोजेक्ट

ये योजनाऐं पर्याप्त मात्रा में दूसरी प्रकार की योजनाओं के समान है।

परन्तु इनका मुख्य उद्देश्य किसी वस्तु की समझदारी प्राप्त करना होता है। इनमें किसी बौद्धिक समस्या का समाधान किया जाता है, उदाहरणार्थ – नगर अपनी सरकार को किस प्रकार से वित्तिय सहायता देता है ? केन्द्रीय शासन राज्यों की शासन व्यवस्था में किस प्रकार हस्तक्षेप कर सकता है ?

किलपैट्रिक ने अपनी पुस्तक "Foundation of Method" में चार प्रकार के प्रोजेक्ट का उल्लेख किया है:–

1. **रचनात्मक प्रोजेक्ट** –

इनमें किसी वस्तु की रचना पर बल दिया जाता है। उदाहरण के रूप में मॉडल बनाना, कविता लिखना आदि।

2. रसास्वादनात्मक प्रोजेक्ट:-

इनका उद्देश्य किसी कार्य द्वारा आनन्द प्राप्त करना या किसी वस्तु के सौन्दर्य की अनुभूति करना है। जैसे संगीत सुनना, सुन्दर चित्र देखना, आदि ।

3. समस्यात्मक प्रोजेक्ट :-

इनका उद्देश्य किसी बौद्धिक समस्या का समाधान करना है, उदाहरणार्थ – देश में क्रान्ति क्यों होती है? शिक्षा के लिए सामुदायिक साधनों का उपयोग क्यों किया जाता है? आदि।

3.2.4 दत्त-कार्य (Assignment)

दत्त कार्य दैनिक पाठ योजना का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसके द्वारा कक्षा की क्रियाऐं संगठित एवं निर्देशित होती हैं। यह शैक्षिक क्रियाओं को दिशा देने का मुख्य साधन होता है। यह कक्षा के कमरे में या उससे बाहर दूसरे दिन के कार्य की तैयारी के लिए भी आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिक रूप से दत्त कार्य सीखने की क्रियाओं के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करता है। जहॉ यह सीखने के लिए अभिप्रेरक नहीं होता वहां इसे सीखने की स्थिति प्रदान करनी चाहिए और इस प्रकार प्रभावशाली शिक्षण कार्य की ओर सहायता देनी चाहिए। यदि सीखने की स्थिति उपयुक्त है तो विद्यार्थी का बहुत सा समय नष्ट होने से बच जाता है। दत्त कार्य, कार्य

की ओर वांछित अभिवतियों को स्थापित करता है और सीखने की क्रियाओं में विद्यार्थियों का पूर्ण मन के साथ सहयोग प्राप्त करता है।

दत्त कार्य का एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। एक सुनियोजित दत्त कार्य द्वारा कार्य व्यक्तियों की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित कर दिया जाता है। विशेष रूप से उस समय जब कि विद्यार्थी अपने व्यक्तिगत सुधार में और सीखने में रूचि रखते हो।

दत्त कार्य के दो अन्य महत्व भी होते हैं। यह विद्यार्थियों को सिखाता है कि वह कैसे अध्ययन करें और वह इस बात पर भी बल देता है कि वह अपने कार्य की समीक्षा करें। दत्त कार्य के कार्य की सीमाऐं भी हो सकती हैं, किन्तु यदि शिक्षक दत्त कार्य के देने से पहले पढ़े हुए पाठ की समीक्षा करा देगा तो वह विद्यार्थियों को नये कार्यो की ओर उन्मुख कर देगा।

दत्त कार्य के विशिष्ट उद्देश्य (Specific Objectives of Assignments)

दत्त कार्य के चार विशिष्ट उद्देश्यों का वर्णन किया जा सकता है :–

1. विद्यार्थियों को अभिप्रेरणा देना तथा उन्हें सीखने की क्रियाओं की ओर उन्मुख करना।
2. उद्देश्यों को स्थापित करना।
3. निश्चित सीखने के अभ्यास तथा क्रियाओं को देना।
4. अध्ययन तथा दूसरी सीखने की क्रियाओं के लिए निर्देश देना।

एक अच्छे दत्त कार्य की विशेषताऐं (Characteristics of a Good Assignment)

हम एक प्रभावशाली दत्त–कार्य की विशेषताओं का वर्णन निम्न प्रकार से कर सकते हैं :–

1. विशिष्ट उद्देश्य स्पष्ट रूप से कथित हो, उद्देश्य ही दत्त–कार्य की प्रकति का निर्धारण करते हैं। शिक्षक को चाहिए कि वह उद्देश्यों का निर्धारण एक विशेष स्थिति में विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं रूचियों को ध्यान में रखकर करें और सीखने की क्रियाओं एवं पाठ्य विषय का चुनाव उन्हीं के अनुरूप करें।
2. दत्त–कार्य विद्यार्थी की आवश्यकताओं और अभिरूचियों का पाठ्य विषय के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं।
3. वह परिणाम जो हमारे समाज की सेवा के लिए आवश्यक है, दत्त–कार्य में सम्मिलित हो।
4. दत्त–कार्य देने के साथ–साथ अध्ययन पथ–प्रदर्शिका एवं दूसरी सहायक सामग्री विद्यार्थियों को दी जाए।
5. दत्त–कार्य में व्यक्तिगत विभेद को ध्यान में रखते हुए कई प्रकार की सीखने की क्रियाओं और पदार्थो को सम्मिलित किया जाए।
6. कार्य की इकाईयों को सन्तोषजनक ढंग से पूर्ण करने के लिए निर्देशन आवश्यक रूप से दिया जाए।
7. दत्त–कार्य की तैयारी में समय, विचार तथा शक्ति के ऊपर पर्याप्त स्थान दिया जाए।
8. विद्यार्थियों का सहयोग दत्त–कार्य को निर्धारित करने में लिया जाए।
9. विद्यार्थियों की उपलब्धि के सम्बन्ध में प्रमाण का मापन अथवा निरीक्षण प्रतिदिन दिया जाए।
10. दत्त–कार्य की लम्बाई, विषय, उपलब्ध समय, विद्यार्थियों की योग्यताओं एवं तत्वों पर निर्भर होना चाहिए जो अवधान सम्बन्धित मात्रा पर प्रभाव डालते हैं। शिक्षक को चाहिए कि अत्यधिक कठिन कार्य न दे। वह पाठ जो बहुत अधिक लम्बे एवं कठिन होते हैं, विद्यार्थियों को असन्तोषजनक अनुभव प्रदान करते हैं और उनको कार्य की ओर से उदासीन बना देते हैं।

दत्त-कार्यो के प्रकार (Types of Assignments)

एक शिक्षक की जो सबसे कठिन समस्या है वह यह है कि किस प्रकार का दत्त–कार्य वह दे। दत्त–कार्यो का वर्गीकरण पाठ्य पुस्तक दत्त–कार्य, विषय सम्बन्धी दत्त–कार्य, समस्या दत्त–कार्य इत्यादि में किया जाता है जो

इसकी प्रकति पर निर्भर रहता है। पाठ्य पुस्तक दत्त–कार्य का प्रयोग शिक्षकों द्वारा सबसे अधिक होता है। इसमें शिक्षक पष्ठ, पैराग्राफ अथवा अध्याय को पढ़ने अथवा लिखने के लिए दे देता है। यह सबसे असन्तोषजनक प्रकार का दत्त–कार्य होता है क्योंकि इसमें पाठ की तैयारी का भार पूर्ण रूप से विद्यार्थियों के ऊपर डाल दिया जाता है। समस्या अथवा विषय दत्त–कार्य पाठ्य पुस्तक दत्त–कार्य से इस रूप में विभिन्न होता है कि इसमें किसी एक समस्या की ओर विचार केन्द्रित किया जाता है अथवा एक विषय को विकसित किया जाता है। विद्यार्थियों से कहा जाता है कि वह विषय सम्बन्धी तथ्यों को देखें अथवा पता लगायें। उसके मूल्यों, कारणों एवं सम्बन्धों के ऊपर अध्ययन करें तथा चिन्तन करें, इस प्रकार का दत्त–कार्य भी उसी समय अच्छा समझा जा सकता है जब विद्यार्थी को निर्देश एवं सुझाव दिये गये हो। संदर्भ पुस्तकों की सूची उसे बता दी गयी हो और उसे सिखा दिया गया हो कि पुस्तकालय आदि का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है।

शिक्षक को चाहिए कि कभी–कभी नियमित दत्त–कार्य के स्थान पर विशिष्ट दत्त–कार्य भी दे जिनमें विद्यार्थी को विशिष्ट अथवा विशिष्ट समस्याओं अथवा विषयों के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने के लिए कहा जाये। अन्त में हम कह सकते हैं कि दैनिक दत्त–कार्य इतना लचीला होना चाहिए कि वह सब विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं रूचियों की पूर्ति कर सके।

दत्त-कार्य कब दिया जाये?

दत्त–कार्य का सबसे प्रचलित समय कक्षा के घण्टे की समाप्ति के निकट है। यह समय उचित भी है। विशेष रूप से उस समय जब दत्त–कार्य घण्टे के अन्दर किये हुए कार्य पर निर्भर होता है और दूसरे दिन का कार्य का विस्तार होता है। इस रूप में दत्त–कार्य को कक्षा के कार्य का ही अंग समझना चाहिए।

जब कक्षा में किसी नये कार्य का प्रवेश करवाना है तो उनके शिक्षक कक्षा के घण्टे के आरम्भ में ही दत्त–कार्य देना अच्छा समझते हैं, इस प्रकार दत्त–कार्य की व्याख्या करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है और महत्वपूर्ण सीखने की क्रिया में रूकावट नहीं पड़ती। कभी–कभी दत्त–कार्य घण्टे के बीच में भी दिया जा सकता है। यह उस समय होता है जबकि घण्टे के बीच में ऐसी समस्या उठ खडी होती है जो अगले दिन के कार्य के लिए आवश्यक प्रतीत होती है।

अपनी प्रगति जांचिए –1

(i) व्यक्तिगत अनुदेशन के नमूने बताओं?

3.3 समूह निर्देशित अनुदेशन नमूने (Group directed Instructional Modules)

स्वं विकास के लिये समूह निर्देशित विधियां अधिक उपयुक्त रहती हैं। विद्यार्थी समूह में रहकर क्रियाशील रहता है। वह अपने अनुभव तथा दूसरों के विचारो से ज्ञान प्राप्त करता हैं। वह केवल ज्ञानात्मक विकास ही नहीं करता अपितु समूह में उसे भावात्मक विकास का भी अवसर प्राप्त होता है उसमें सहानूभूति, प्रेम, सहयोग, भातभाव की भावना का विकास होता है। लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में सामाजिक विकास आवश्यक ही नही अनिवार्य भी है। कुछ समूह निर्देशित अनुदेशन माडयूल (नमूने) इस प्रकार हैं–

3.3.1. विवेचन या परिचर्चा (Discussion)

वर्तमान समय में विवेचन प्रविधि का अधिक से अधिक प्रयोग होने लगा है। किन्तु विवेचन किसे कहते हैं, यह समझना सरल नहीं, न यह प्रविधि ही सरल है। इसकी तकनीक अत्यन्त जटिल है। यह शिक्षक की योग्यता पर केन्द्रित है। वैसे तो जब भी दो चार व्यक्ति इक्ट्ठे होकर आपस में किसी विषय पर विचार प्रकट करते हैं, हम उसे परिचर्चा का नाम दे देते हैं। किन्तु इस प्रकार की बातचीत कक्षा–शिक्षण की विवेचन प्रविधि से बहुत विभिन्न है। बेलिग्टन एवं बेलिग्टन के अनुसार विवेचन प्रविधि शिक्षक की ओर से एक प्रयास है जो विद्यार्थी की आवश्यकताओं का शिक्षक के पाठ्य विषय सम्बन्धी चिन्तन के उद्देश्यों के साथ सम्मेलन कराने के हेतु होता है। यह कक्षा की उन क्रियाओं को मनोनीत करता है जिनमें शिक्षक तथा विद्यार्थी सहयोग से कुछ समस्याओं पर विचार करते हैं।

विवेचन में प्रकरण पर बुद्धिमतापूर्ण विचार होता है। सम्बन्धों का विश्लेषण होता है तुलना होती है, मूल्यांकन होता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। विवेचन की सफलता शिक्षक की इस योग्यता पर निर्भर होती है कि वह कितना विद्यार्थियों के कार्य में सहयोग प्राप्त कर सकता है? दश्य–श्रव्य सामग्री द्वारा विद्यार्थियों को प्रकरण पर विवेचन करने की प्रेरणा दी जा सकती है। विवेचन को प्रारम्भ करने से पहले समस्या का चुनाव आवश्यक है। समस्या दो–पक्षीय होनी चाहिए। विवेचन के लिए समस्या का चुनाव उसमें प्रश्न पूछने की कला पर निर्भर करता है। प्रश्न ऐसे हों जिसमें बच्चे रूचि लें। प्रश्न जटिल नहीं होने चाहिएं ताकि विद्यार्थी परिचर्चा में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित हो।

3.3.2. वादविवाद एवं शास्त्रार्थ (Debate)

वाद विवाद एवं शास्त्रार्थ का मुख्य उद्देश्य यह है कि छात्रों को आत्माभिव्यक्ति का विकास हो। इनके द्वारा छात्रों को वस्तु चयन, भावाभिव्यक्ति, पक्ष विपक्ष के लिए विचारों के नियमन एवं जनता के सामने प्रभावपूर्ण रूप से भाषण देने का उचित प्रशिक्षण मिलता है। भाषण करते हुए वक्ता को मंच के भय से हटाकर पूरे उत्साह और आत्मविश्वास के साथ अपने आपको अभिव्यक्त करना पड़ता है। वह वक्तव्य में पूरी योग्यता प्राप्त करता है। वाद विवाद में भाग लेने पर छात्र के भाषा ज्ञान की वद्धि के साथ साथ नवीन शब्दों को सीखने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। उसे साक्षात्कार के समय आत्माभिव्यक्ति में कठिनाई नहीं आती। मीकाउन के अनुसार :

''आधुनिक जीवन में स्वस्थ खिलाड़ीपन, आत्मविश्वास, आत्मसन्तोष, शुद्ध आचरण तथा तत्सम्बन्धी गुणों की ग्राह्यता की बौद्धिक अभिरूचि, पात्रता, आत्माभिव्यंजना, नीर–क्षीर–विवेक, बुद्धि तथा प्रतिभा आदि की मात्रा स्कूलों में अत्यन्त न्यून रूप में विद्यमान है।''

वाद विवाद का प्रबन्ध अत्यन्त सरल कार्य नहीं है। अध्यापक को इसके लिये परिपूर्ण योजना की आवश्यकता है। वाद विवाद के विषय की घोषणा पर्याप्त समय पहले कर देनी चाहिए। स्थान तथा तिथि की जानकारी करवाना भी अनिवार्य है। वक्ताओं में से प्रथम वक्ता को वाद विवाद सम्बन्धी तथ्यों से जानकारी कराना एवं उसे अथ–इति की विधि समझाना आवश्यक है। निर्णायकों की नियुक्ति करके उन्हें वाद विवाद सम्बन्धी नियमों से परिचित कराना भी बहुत ही जरूरी है। वाद विवाद का विषय रूचिपूर्ण होना चाहिए, ताकि सभी लोग भावग्रहणता के आधार पर उसमें रस ले सके।

3. संगोष्ठी (Symposium)

संगोष्ठी औपचारिक होती है इसमें एक विषय चुना जाता है और इसमें एक अतिरिक्त पद होता है। संगोष्ठी के प्रथम भाग में प्रत्येक समूह सदस्य द्वारा बारी बारी से तैयार की हुई स्पीच (भाषण) दी जाती है। इसके पश्चात् समूह सदस्यों में विवेचन होता है और फिर श्रोता प्रश्न करते हैं।

4. पेनल विवेचन विधि (Panel Discussion)

कक्षा के छः या आठ विद्यार्थी किसी प्रकरण को गहराई से अध्ययन के लिये चुन लिये जाते हैं। प्रत्येक सदस्य प्रकरण के एक उपभाग को अपने अध्ययन के लिए चुन लेता है। जब सब अपने को विवेचन के लिए तैयार कर लेते हैं तो कक्षा के सम्मुख पेनल विवेचन प्रस्तुत किया जाता है। पेनल का प्रत्येक सदस्य जो उप प्रकरण उसने चुना है, उस पर एक छोटा कथन देता है। इसके पश्चात् बातचीत के रूप में पेनल विवेचन पेनल के सदस्यों के बीच प्रारम्भ हो जाता है। पेनल का एक चेयरमैन भी होता है जो विवेचन पर नियन्त्रण रखता है। पेनल विवेचन के पश्चात् प्रकरण सम्पूर्ण कक्षा के विवेचन के लिए खोल दिया जाता है। अन्त में चेयरमैन संक्षेपीकरण दे देता है।

5. गोलमेज विवेचन (Round Table Discussion)

गोल मेज विवेचन गोलमेज पेनल से इस बात में विभिन्न है कि इसमें विवेचन सदस्यों के बीच ही होता है, इसमें श्रोता कोई भाग नहीं लेते। इसका प्रयोग किसी विषय वस्तु में जनता की रूचि जागत करने के लिए ही बहुधा होता है।

समूह अनुदेशन प्रविधियों में शिक्षक का उत्तरदायित्व बहुत अधिक है या हो जाता है। उसे समय समय पर विद्यार्थियों का पथ–प्रदर्शन करते रहना चाहिए। कक्षा में यथासम्भव अस्वस्थ बहस को पनपने नहीं देना चाहिए। शिक्षक को स्वयं ही सम्पूर्ण विवेचन पर आधिपत्य नहीं जमा लेना चाहिए। पाठ्य विषय का चुनाव कुशलतापूर्वक करना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए-3

(i) समूह निर्देशित अनुदेशन नमूने पर एक लेख लिखें।

(ii) स्वयं अनुदेशन से आप क्या समझते हैं?

(iii) स्वयं अनुदेशन के विकास पर एक लेख लिखों।

3.5 सारांश (Summary)

शिक्षण एक कला है जो दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य चलती है। यह निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है। व्यक्ति शिक्षण, अभ्यास तथा अनुभव से सीखता है। आधुनिक तकनीकों द्वारा कई प्रकार की विधियों का प्रचलन हुआ है। यह माडयूल कहलाते हैं। इन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है। व्यक्तिगत अनुदेशन नमूने तथा समूह निर्देशित अनुदेशन नमूने।

व्यक्तिगत अनुदेशन नमूनों में अभिक्रमित अनुदेशन जो एक सरल तकनीक है, सीखने की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाती है। इसमें पाठ्य सामग्री को तार्किक क्रम में व्यवस्थित करके छोटे–छोटे उचित पदों में विभाजित किया जाता है। पदों को फ्रेम कहते हैं। कम्प्यूटर स्वतः अनुदेशात्मक पद्धति का एक उपकरण है जिसका प्रयोग व्यक्तिगत अनुदेशन के लिये किया जाता है। शिक्षण के क्षेत्र में अनुदेशन पद्धति, शोधकार्यों तथा परीक्षा प्रणाली को कम्पूटर ने अधिक प्रभावित किया हैं।

योजना एक समस्यामूलक कार्य है जिसका समाधान प्रकत वातावरण में रहकर किया जाता है। सामाजिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह एक उपयोगी साधन हैं।

कक्षा की क्रियाएं संगठित एवं निर्देशित करने के लिए दत्त कार्य उपयोगी है। कक्षा के घण्टे की समाप्ति के निकट इसका प्रयोग करना उचित है।

समूह निर्देशित अनुदेशन नमूनों में विद्यार्थी अपने अनुभव के साथ दूसरों के विचारों से भी ज्ञान प्राप्त करता है जिससे उसके भावात्मक विकास का अवसर प्राप्त होता है। कुछ समूह निर्देशित माडयूसल इस प्रकार हैं – परिचर्चा या विवेचन जिसमें विद्यार्थी शिक्षकके सहयोग से कुछ समस्याओं पर विचार करते हैं। आत्माभिव्यक्ति के लिये वाद विवाद प्रभावपूर्ण साधन है। वाद–विवाद का विषय रूचिपूर्ण होने पर सभी व्यक्ति इसमें रस ले सकते हैं।

पेनल विवेचन तथा गोलमेज विवेचन में किसी भी प्रकरण को लेकर कक्षा के छः या आठ विद्यार्थी किसी प्रकरण का गहराई से अध्ययन करते है तथा प्रत्येक सदस्य एक उपभाग को अपने अध्ययन के लिए चुन लेता है और इसका बाद कक्षा के सम्मुख पेनल विवेचन प्रस्तुत किया जाता है। गोलमेज विवेचन सदस्यों के बीच ही होता है। समूह अनुदेशन प्रविधियों में शिक्षण का उत्तरदायित्व बहुत हो जाता है।

3.5 आदर्श उत्तर

(i) अध्याय की अनुपस्थिति में छात्र द्वारा अधिगम की क्रिया को स्वयं अनुदेशन कहते हैं।

(ii) इस प्रश्न के उत्तर के लिये छात्र भाग 3.4 को देखें।

3.6 मुख्य शब्द

स्व अनुदेशन : अध्यापक की अनुपस्थिति में छात्र द्वारा स्वयं अपनी गति से सीखने की प्रक्रिया को स्व अनुदेशन कहते है।

3.7 सन्दर्भ पुस्तकें

Kochar, S.K. Teaching of Social Science

S.K. Foundation of Education Technology.

Walia, J.S. Mangal, Essentials of teaching & Learning

बी०डी० शैदा सामाजिक अध्ययन शिक्षण

यूनिट-III

स्व अनुदेशन सामग्री का विकास

(Development of Self-Instructional Material)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

- स्लाइडस व ट्रांसपेरैन्सिस का निर्माण कर सकें।
- बुलेटिन बोर्ड तैयार कर सकें।
- मानचित्र का प्रभावपूर्ण उपयोग कर सकें।
- चार्ट तैयार कर सकें।
- ग्राफ की रचना कर सकें।
- मॉडल का निर्माण कर सकें।
- रेडियो, वीडियों, कम्प्यूटर व शिरोपरी प्रोजेक्टर का प्रयोग कर सकें।
- अभिनय द्वारा अनुदेशन कर सकें।
- सामुदायिक स्त्रोतों का प्रयोग कर सकें।
- सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला का वर्णन कर सकें।

संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 सामाजिक अध्ययन में स्व–अनुदेशन सामग्री
4.3 स्लाईडस व ट्रांसपेरैन्सिस का निर्माण
4.4 बुलेटिन बोर्ड
4.5 मानचित्र
4.6 चार्ट
4.7 ग्राफ
4.8 मॉडल
4.9 रेडियो विडियों, कम्यूटर व शिरोपरी प्रौजैक्टर का प्रयोग
4.10 अभिनय
4.11 सामुदायिक स्त्रोतों का प्रयोग
4.12 सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला की रचना
4.13 सारांश

4.14 आदर्श उत्तर

4.15 मुख्य शब्द

4.16 सन्दर्भ पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले यूनिट में आपने अनुदेशात्मक माडयूल का विकास व उसके प्रयोग के बारे में पढ़ा। इस यूनिट में आप शिक्षा में प्रयोग की जाने वाली दश्य–श्रव्य साधनों के बारे में पढ़ेंगें। बुलेटिन बोर्ड, मानचित्र, मॉडल, रेडियो व कम्पयूटर का प्रयोग करने से शिक्षा को प्रभावी बनाया जा सकता है। अनुदेशन सामग्री शिक्षण तथा अधिगम के लिए महत्वपूर्ण औजार का कार्य करती है। अध्यापक के द्वारा सूचनाएं प्रदान करने, तथ्यों को विस्तत करने तथा अध्ययन में रुचि जाग्रत करने के लिए उपयुक्त सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिए। सामाजिक अध्ययन विषय इतना विस्तत है कि अध्यापक को इसकी विषय वस्तु समझाने तथा अपनी शिक्षण विधि को प्रभावशाली बनाने के लिए अनुदेशात्मक सामग्री के प्रयोग की आवश्यकता महसूस होती है।

ई.सी. डैन्ट के शब्दों में, "अनुदेशात्मक सामग्री कक्षा–कक्ष में या अन्य शिक्षण परिस्थितियों में प्रयोग की गई वह सम्पूर्ण सामग्री है जो लिखे गए या बोले गए शब्दों को समझने में सहायता प्रदान करती है।"

(*"Instructional material is all materials used in the classroom or in other teaching situations to facilitate the understanding of the written or spoken word." -E.C. Dent)*

सामाजिक अध्ययन विश्व के विभिन्न कोनों में स्थित स्थानों के अतीत तथा वर्तमान दोनों से सम्बन्धित है। अनुदेशात्मक सामग्री अधिगम के लिए उद्दीपन का कार्य करती है। सामाजिक अध्ययन के अध्यापक के द्वारा अपने अनुदेशन को रुचिकर तथा विस्तत रूप से स्पष्ट करने के लिए न केवल विभिन्न शिक्षण विधियों का ही प्रयोग किया जाता है बल्कि चार्ट, ग्राफ, मॉडल,मानचित्र आदि सामग्री का भी प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विद्यार्थी की योग्यता, रुचि, मनोवत्तियां, आवश्यकता आदि को आधार बनाया जाता है। अतः शिक्षण प्रक्रिया को सरल, सजीव तथा प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि इस साम्रगी का इस प्रकार प्रयोग किया जाए की इसका स्वरूप विद्यार्थियों को अधिक से अधिक सरल एवं स्पष्ट हो जाए।

अनुदेशात्मक सामग्री के दो प्रमुख तत्व हैं – (1) माध्यम (medium) तथा विधा (mode)। विधा उद्दीपक का वह रूप है जिसे विद्यार्थियों के सम्पर्क में लाया जाता है। इस प्रकार रेखाचित्र, छायाचित्र (photograph), प्रतिमूर्ति (model) आदि अनेक प्रकार की विधियों का निर्माण करते हैं। इनको प्रदर्शित करने के लिए अनेक प्रकार के माध्यम प्रयोग में लाए जाते हैं, जैसेः – पुस्तक, प्रोजैक्ट, चलचित्र आदि। इस प्रकार बिना माध्यम के विधा का उपयोग सीमित है और विधा के माध्यम अपर्याप्त एवं निरर्थक है।

4.2 सामाजिक अध्ययन में स्व अनुदेशन सामग्री का विकास (Self Instructional Material in Social Studies)

सामाजिक अध्ययन भूत तथा वर्तमान दोनों से सम्बन्ध रखता है। यह संसार के विभिन्न देशों के विषय में जानकारी देता है। अनुदेशन सामग्री अधिगम में उद्दीपक का काम करती है। इस प्रकार अनुदेशन सामग्री महत्वपूर्ण शिक्षण अधिगम का आधार है। स्थाई स्मति के लिये शिक्षा का सीधा सम्बन्ध हदय व मस्तिष्क से होना चाहिए। उसके लिए ऐसी सामग्री का प्रयोग किया जा रहा है जिसका सम्बन्ध देखने व सुनने से होता है। यह सामग्री स्पष्ट धारणा बनाने का सबसे अच्छा साधन है। एक प्राचीन कहावत है '' एक बार देखना सौ बार सुनने से या बताने से अधिक अच्छा है।'' में भी सत्यता का अंश पाया जाता है।

दश्य–श्रव्य साधन अनुभव प्रदान करते हैं। उनके प्रयोग से वस्तुओं व शब्दों का सम्बन्ध सरलतापूर्वक जुड़ जाता है। बालकों के समय की बचत होती है। इनके प्रयोग से बालकों का मनोरंजन होता है और कल्पना शक्ति व निरीक्षण शक्ति का भी विकास होता है। विभिन्न शिक्षण विधियों के प्रयोग के साथ ऐसी अनुदेशन सामग्री का प्रयोग जिसमें चार्ट, मॉडल, ग्राफ आदि आते हैं शिक्षण को मनोरंजक बना देते हैं।

आवश्यकता तथा महत्व (Need and Importance)

1. विषय की स्पष्टता (Clarity of the Subject)

अनुदेशनात्मक सामग्री सामाजिक अध्ययन के मूर्त तथ्यों का स्पष्टीकरण करने में सहायता करती है। केवल सिद्धान्तिक तथ्यों पर मेहनत करने की अपेक्षा यदि अध्यापक कुछ सहायक सामग्री की सहायता ले, तो वह विषय को विद्यार्थियों के लिए स्पष्ट तथा अर्थपूर्ण बना सकता है।

2. विषय को रुचिकर बनाना (To make the subject interesting)

अनुदेशात्मक सामग्री सामाजिक अध्ययन के अधिगम में रुचि जागत करने तथा बनाए रखने में सहायक होती है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि यह एक सामान्य विचारधार है कि यह नीरस है परन्तु सहायक सामग्री की सहायता से यह विषय अधिक लम्बे समय तक नीरस तथा अवास्तविक नहीं रहेगा।

3. शिक्षण के सूत्रों पर आधारित (Based on maxims of teaching)

अनुदेशात्मक सामग्री को सहायता से अधिगम के महत्वपूर्ण सूत्रों जैसे 'सरल से जटिल', 'मूर्त से अमूर्त', 'ज्ञात से अज्ञात' और क्रिया द्वारा सीखना आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

4. समय तथा ऊर्जा की बचत (Saving of time and energy)

सामाजिक अध्ययन एक बहुत विस्तत विषय है और सम्पूर्ण विषय को समझाना कोई आसान कार्य नहीं हैं। अध्यापक को कुछ ऐसी सामग्री की आवश्यकता होती है जिससे वह बहुत से अमूर्त तथ्यों को सरलता से स्पष्ट कर सके।

5. वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास (Development of scientific attitude)

सूचीबद्ध सामग्री से सहमत होने की अपेक्षा, आज के समय में विद्यार्थी अन्य अनुदेशनात्मक सामग्री के प्रयोग के द्वारा या निरीक्षण के द्वारा सामान्यीकरण प्राप्त करना चाहते हैं। यह विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण विकसित करने में सहायक होगा।

6. अभिप्ररेणा प्रदान करना (Provide motivation)

यह सामग्री सीखने की अभिप्रेरणा देने में सहायक होती है। इनमें सजीवता, स्पष्टता और नाटकीय प्रभाव होता है। सभी विद्यार्थी स्लाईड पर देखना, मेले में जाना, रेडियो पर सूनना, कम्प्यूटर पर काम करना पसन्द करते हैं। ये विद्यार्थियों के ध्यान को केन्द्रित करने, नई रुचियों तथा क्रियाओं को तीव्र करने में सहायक होती है। इनके द्वारा उन्हें अधिक तेजी से सीखने, लम्बी अवधि तक याद रखने, अधिक उचित सूचना प्राप्त करने तथा अर्थों को समझने में सहायता मिलती है। वे विद्यार्थियों की जिज्ञासा की सन्तुष्टि में सहायक होती हैं।

7. धीमी गति से सीखने वालों के लिए प्रभावशाली (Effective for slow learners)

प्रत्येक कक्षा में विभिन्न प्रकार के विद्यार्थी होते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी केवल भाषण से समझने के योग्य नहीं होता। ये सामग्री धीमी गति से सीखने वालो तथा अध्ययन में मन्द विद्यार्थियों के लिए बहुत लाभकारी है। ऐसे विद्यार्थी पाठ्य–पुस्तक से आवश्यकता ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते। वे प्रारुप, चार्ट, ग्राफ, सामुदायिक संसाधनों के प्रयोग के द्वारा तथ्यों को आसानी से समझ सकते हैं तथा याद कर सकते हैं।

8 अध्यापक तथा विद्यार्थी में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का विकास (Develop friendly relations between pupil and teacher)

अनुदेशात्मक सामग्री का प्रयोग करते हुए अध्यापक एक सच्चा मित्र तथा निर्देशक होता है। इस प्रक्रिया में अध्यापक का दष्टिकोण मैत्रीपूर्ण रहता है। सामुदायिक संसाधनों के प्रयोग के लिए अध्यापक के द्वारा विद्यार्थियों को बाहर ले जाता हे। इस प्रकार प्राकतिक तथा खुशहाल वातावरण प्रदान किया जाता है, जो अधिगम में महत्वपूर्ण ढंग से सहायता

करता है।

9. नवीन अनुभव तथा नवीन ऊर्जा की पूर्ति (Supply new experiences and new energy)

जो कुछ ज्ञान विद्यार्थियों ने अपने पहले के अनुभवों से प्राप्त किया होता है उसे ही मौखिक वर्णन के अन्तर्गत दोहराया जाता है, परन्तु एक चित्र, एक प्रारुप वास्तव में उनके अनुभवों की सीमा को विस्तत करता है। विश्लेषण, तुलना, सामान्यीकरण तथा संश्लेषण की योग्यता अनुभवों के विस्तत आधार पर निर्भर करती है।

10. विचारों के संगठन में सहायक (Helps in association of ideas)

जब इस सामग्री का प्रयोग किया जाता है तो विद्यार्थी को अपने विचार स्मरण करना या उन्हें अन्य विचारों से संगठित करना आसान हो जाता है। इनकी सहायता से पहचान की योग्यता का भी विकास होता है।

11. इन्द्रिय अनुभव प्रदान करना (Provide direct sensory experience)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अधिगम अनुभव दोनों की महत्वपूर्ण हैं। प्रारंभिक श्रेणियों में सीखने की प्रक्रिया के प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्यक्ष अनुभवों का बड़ा महत्व है। क्योंकि ज्ञानेन्द्रियां सीखने का द्वार हैं इसलिए पाठ बहुत सी इन्द्रियों से सम्बन्धित होना चाहिए। यह अवलोकरन भी किया गया है कि जो उत्प्रेरक, एक साथ कई ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करता है उन्हें याद करना आसान होता है। जोसेफ जे. वैबर के अनुसार, "हमारी 40% धारणाएं दश्य अनुभवों पर, 25% श्रव्य अनुभवों पर, 17% स्पर्श, 3% स्वाद तथा सूंघने पर और 15% विविध इन्द्रियां अनुभवों पर आधारित होती है।"

("About 40% of our concepts are based on visual experience, 25% on auditing experience, 17% upon touching and feeling, 3% on taste and smell and 15% on miscellaneous organic sensation." - Joseph, J. Weber)

12. प्रत्यक्ष अनुभवों का विकल्प (Substitute for direct experience)

विद्यार्थियों को हर विषय सामग्री के लिए प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करना अध्यापक के बस में नहीं हैं। इसलिए प्रत्यक्ष अनुभवों के प्रतिस्थापन के रूप में प्रारूप, स्लाईड आदि का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है।

13. अधिगम स्थायी बनाने में सहायक (Help in making learing permanent)

प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि अनुदेशात्मक सामग्री के प्रयोग से विद्यार्थी न केवल जल्दी सीखते ही हैं बल्कि वे तथ्यों को याद भी रखते हैं जब बालक देखता है, सुनता है, छूता है, स्वाद चखता है और सूंघता है तो उसके अनुभव अभूर्त बन जाते हैं तथा अधिगम स्थायी हो जाता है।

14. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति (Meet the requirements of individual differences)

विद्यार्थियों में विस्तत विभिन्नताएं पाई जाती हैं। कुछ केवल सुनकर ग्रहण करते हैं, कुछ दश्य प्रदर्शन से सीख सकते हैं जबकि अन्य कार्य करने से सीखते हैं। विभिन्न प्रकार की सामग्री का प्रयोग उनकी योग्यताओं, क्षमताओं के अनुसार उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होता है।

15. क्रियाओं के लिए अवसर प्रदान करना (Provide opportunities for activities)

अनुदेशात्मक सामग्री की सहायता से अधिगम प्रक्रिया अभिप्रेरणायुक्त तथा कार्यकारी बन जाती है। केवल निष्क्रिय श्रवण, सामाजिक अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक नहीं होता। इस सामग्री का प्रयोग कक्षा–कक्ष के निष्क्रिय वातावरण को जीवन्त बनाने में सहायक होता है।

16. विद्यार्थियों के शब्द ज्ञान में वद्धि करने में सहायक (Help in increasing vocabulary of the students)

अनुदेशात्मक सामग्री की सहायता से विद्यार्थी नए शब्द सीखते हैं। सामुदायिक संसाधनों का प्रयोग करते समय जब वे अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं तो वे उन्हें ध्यानपूर्वक सुनते हैं और बहुत से नए अनुभव प्राप्त करते हैं।

17. ऐच्छिक व्यावहारिक उपलब्धियां प्राप्त करने में सहायक (Help in getting desired behaviour outcomes) जो कुछ भी कक्षा में अध्ययन किया जाता है, यह सामग्री सामूहिक योजना, आलोचनात्मक चिन्तन तथा सामूहिक वाद–विवाद के लिए आधार प्रदान करती है। जो विद्यार्थियों को देखने व सुनने के योग्य बनाती है। यह दूसरों के योगदान के प्रति प्रशंसात्मक दष्टिकोण विकसित करने में भी सहायता करती है, जैसे – जैसे वे सामान्य व्यक्यिों की क्रियाओं तथा आवश्यकताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं तो उनके प्रति उनके दष्टिकोण में सुधार आता है।

4.3 स्लाईडस व ट्रांसपेरैन्सिस का निर्माण (Preparation of Slides & Transparencies)

स्लाइडस एवं ट्रांसपेरेसिज प्रक्षेपित दश्य सामग्री के अन्तर्गत आती है। इन्हें एपीडाइस्कोप, मैजिक लेन्टर्न तथा प्रोजेक्टरों आदि दश्य उपकरणों की सहायता से पर्दे पर प्रक्षेपित कर कक्षा शिक्षण में प्रयुक्त किया जा सकता है। परिभाषा की दष्टि से इन्हें ऐसी प्रक्षेपित दश्य सामग्री की संज्ञा दी जा सकती है जो किसी पारदर्शी तत्व जैसे – प्लास्टिक, शीशा, सेल्यूलोज ऐसिटेट फिल्म तथा सिल्होइट आदि का ऐसा भाग है जो एक विशिष्ट आकार वाला (जैसे – 2"+2" या 3½"x4) होता है और जिस पर तस्वीरें या रेखाचित्र होते हैं और जिन्हें प्रेषित प्रकाश के माध्यम से अच्छी प्रकार देखा जा सकता है तथा प्रोजेक्टर आदि प्रक्षेपित उपकरणों द्वारा पर्दे पर बड़ा करके दिखाया जा सकता है।

पारदर्शक (ट्रांसपेरेसिज) बनाने के लिये भी प्लास्टिक की पतली ट्रांसपेरेन्ट शीट की आवश्यकता होती है। मारकर की सहायता से विद्यार्थी इस पर चित्र, रेखाचित्र तथा लिखित सामग्री को स्वयं हाथ से बना सकते हैं या फोटोस्टेट करवा सकते हैं। इसे प्रोजेक्टर पर प्रक्षेपित उपकरणों द्वारा पर्दे पर बड़ा करके दिखाया जाता है।

शैक्षिक मूल्य (Educational Value)

1. फिल्म खण्डों के द्वारा विषय सम्बन्धी शिक्षा सरलता से दी जा सकती है।
2. फिल्म खण्ड के किसी चित्र को रजतपट पर जितने समय तक चाहे अध्यापक रख सकते हैं तथा उस पर चित्र सम्बन्धी टिप्पणी करके विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर कर सकते हैं।
3. इसके कई चित्रों को जोड़कर चल चित्रों की भांति इसकी रील को भी रोचक तथा नियमित बनाया जा सकता है तथा चित्रों को आगे पीछे किया जा सकता है।
4. फिल्म खण्डों को प्रोजेक्टर द्वारा सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है जो कि सस्ते मिल जाते हैं तथा गाँव में जहाँ बिजली नहीं है मिट्टी के तेल, लैम्प का भी प्रयोग किया जा सकता है।
5. सैलुलॉयड का बना फिल्म खण्ड प्रदर्शित करते समय टूटता नहीं है जिससे शैक्षिक बाधा की आशंका नहीं रहती।
6. ये कम व्यय से बन जाते हैं तथा इनका शैक्षिक मूल्य अधिक है।
7. इनको किसी भी कमरे में किसी भी समय दिखाया जा सकता है।
8. हल्के होने के कारण इन्हें सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से ले जाया जा सकता है।
9. सामाजिक अध्ययन में इसका प्रयोग विभिन्न देशों, फसलों, नदियों, संस्कतियों, रहन सहन के ढंगों को दिखाकर किया जा सकता है।
10. फिल्म खण्ड का प्रयोग दश्य तथा श्रव्य ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करके चिरस्थाई ज्ञान प्राप्त कराता है। कठिन से कठिन शब्द, व्याख्या चित्रों के माध्यम से समझाई जा सकती है।
11. पुनर्बलन के लिए ये बहुत महत्वपूर्ण है। पाठ के सारांश को इसके द्वारा सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता है।
12. यदि इसके साथ वर्णन भी रिकार्ड करके समझाया जाए तो ज्ञान प्राप्ति में जहाँ आसानी होती है वहाँ अध्यापक को अतिरिक्त व्याख्या नहीं करनी पड़ेगी।
13. इसका प्रयोग कक्षा से पूर्व, कक्षा में विद्यार्थियों को सक्रिय बनाने के लिये तथा पुनरावति के समय भी किया जा सकता है।

विद्यार्थियों को कक्षा में सक्रिय बनाने के लिए यह प्रभावपूर्ण, अर्थपूर्ण तथा महत्वपूर्ण शिक्षण को जन्म देती है।

4.4 बुलेटिन बोर्ड (Bulletin Board)

विद्यार्थियों में लेखन और चित्रात्मक दश्य सामग्री का प्रदर्शन करने के लिए बुलेटिन बोर्ड काम में लाया जाने वाला एक सुलभ साधन है। यह विद्यालय का सूचना केन्द्र होता है। यह एक प्रदर्शन पट्ट होता है जो मुख्यतः बुलेटिन, विज्ञप्तियों, समाचारों, विद्यालय की कक्षा शिक्षण तथा अन्य गतिविधियों की सूचना देने के लिए काम में लाया जाता है। अर्थाभाव के कारण भारत में अनेक विद्यालयों में बुलेटिन बोर्ड की सुविधा उपलब्ध नहीं है। बुलेटिन बोर्ड पर शिक्षक समाचार पत्र और पत्रिकाओं की कटिंग, मानचित्र, नवीन प्रकाशित पुस्तक का टाईटल पेज, पोस्टर इत्यादि को विद्यार्थियों के ज्ञान में वद्धि करने के लिए दीवार पर लगा सकते हैं। इस पर ड्राईंग पिन की सहायता से सामग्री का प्रदर्शन किया जा सकता है। बुलेटिन बोर्ड को विद्यालय की निरन्तर पत्रिका भी माना जा सकता है। यह पूर्ण रूप से विद्यार्थियों के रचनात्मक प्रयत्नों का परिणाम होता है।

सामान्य बुलेटिन बोर्ड को आफिस, पुस्तकालय और प्रयोगशाला आदि की दीवारों पर स्थापित किया जाता है। इसके निर्माण के लिए प्रायः लकड़ी और प्लाईवुड इत्यादि से बने उपयुक्त फ्रेमों का इस्तेमाल किया जाता है, फिर लकड़ी और प्लाईवुड की शीट पर मुलायम पदार्थ जैसे सोफ्ट वुड़, कार्क मैटिरियल आदि की शीट लगाई जाती है जिसमें पिन वगैरह अच्छी तरह से लग सकती है। इसके ऊपर गहरे रंग का कोई मोटा कपड़ा लगा देते हैं, जो प्रदर्शित सामग्री को उपयुक्त धरातल देने का कार्य करता है। अंत में इस पर जालीयुक्त फ्रेम लगाकर बन्द कर देते हैं।

बुलेटिन बोर्ड का प्रयोग (Use of Bulletin Board)

1. बुलेटिन बोर्ड की व्यवस्था का उत्तरदायित्व अनुभवी व उत्साही अध्यापक को सौंपना चाहिए।
2. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री अधिक नहीं होनी चाहिए।
3. विशेष शैक्षिक उद्देश्य की ही सूचना प्रदर्शित की जानी चाहिए।
4. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री को स्वच्छता, व्यवस्था व क्रम से लगाना चाहिए।
5. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री ऐसी हो जो विद्यार्थियों द्वारा अच्छी तरह देखी व समझी जा सके।
6. विद्यार्थियों की बनाई हुई संग्रहित सामग्री के प्रदर्शन को इसमें अधिक महत्व देना चाहिए।
7. प्रदर्शित की हुई सामग्री को उपयुक्त शीर्षक देकर अलग अलग बुलेटिन बोर्डो पर विभाजित कर देना चाहिए।
8. विद्यार्थियों को निर्देश देने चाहिए कि वे स्वयं किसी सामग्री का प्रदर्शन न करें व प्रदर्शित सामग्री को खराब न करें।
9. प्रदर्शित की हुई सामग्री को लगातार बदलते रहना चाहिए।
10. रूचि बढ़ाने और ध्यान आकर्षित व केन्द्रित करने के लिए नवीनतम सूचनाओं और गतिविधियों का विवरण ही बुलेटिन बोर्ड पर देना चाहिए।

बुलेटिन बोर्ड के लाभ (Advantages of Bulletin Board)

बुलेटिन बोर्ड के निम्नलिखित लाभ हैं :–

1. बुलेटिन बोर्ड पर लगे चित्रों को देखकर विद्यार्थियों में जिज्ञासा उत्पन्न होती है जिससे उनमें स्वयं कुछ करने की इच्छा पैदा होती है।
2. यह विद्यार्थियों की प्रतिभा को आगे लाने के अवसर प्रदान करता है।
3. यह विद्यार्थियों के ज्ञान एवं बोध स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक होता है।
4. बुलेटिन बोर्ड विद्यालय में उपयुक्त वातावरण पैदा करता है।
5. विद्यार्थियों के प्रोत्साहन के लिए पुरस्कत विद्यार्थियों के फोटो लगाकर व सुन्दर प्रदर्शित सामग्री द्वारा इसे आकर्षक बनाया जा सकता है।

6. बुलेटिन बोर्ड के लिए विद्यार्थियों द्वारा बनाये गये चित्र अथवा लिखी हुई कविता, लेख जैसी मौलिक कतियों को मूर्तरूप प्रदान किया जा सकता है।
7. कुछ विषय ऐसे होते हैं जिन्हें आसानी से कक्षा में नहीं लाया जा सकता, जैसे जनसंख्या वद्धि इत्यादि। बुलेटिन बोर्ड के द्वारा अध्यापक इन विषयों को विद्यार्थियों को सरलता से समझा सकता है।
8. बुलेटिन बोर्ड की सामग्री को विद्यार्थी सामूहिक रूप से तैयार करते हैं जिससे सहयोग की भावना का विकास होता है।
10. बुलेटिन बोर्ड के माध्यम से विषय वस्तु को शीघ्र समझाया जा सकता है जिससे समय की बचत होती है।
11. इससे विद्यार्थियों को रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

4.5 मानचित्र (Maps)

मानचित्र द्वारा पथ्वी के धरातल से सम्बन्धित भागों को प्रदर्शित किया जाता है। भूगोल, इतिहास जैसे विषयों के शिक्षण में मानचित्र का प्रयोग आवश्यक है। यह साधन किसी भी स्थान की उचित भौगोलिक स्थिति व दूरी मापने में सहायता करता है। कौन सा देश पथ्वी पर कहां स्थित है व हमारे देश से कितना दूर है, भारत के पूर्व में कौन से देश हैं, पश्चिम में कौन से देश हैं, उत्तर में कौन–कौन से देश हैं, आदि की जानकारी मानचित्र से ही मिल सकती है। मानचित्र विभिन्न प्रकार के राजनैतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक साधनों की जानकारी देने में सक्षम होते हैं। मानचित्र एक ऐसा माध्यम है जिससे पूरे विश्व को कक्षा–कक्ष में प्रदर्शित किया जा सकता है।

मानचित्र के उपयोग (Uses of Map)

मानचित्र के उपयोग निम्नलिखित हैं :-

1. मानचित्र पाठ को रूचिकर बनाने में सहायता करते हैं।
2. मानचित्र पथ्वी के धरातल से सम्बन्धित भागों, दूरी, किसी विशेष फसल, खनिज पदार्थ, धन सम्पदा आदि के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।
3. मानचित्र की सहायता से ऐतिहासिक घटनाओं को विद्यार्थियों के समक्ष उपयोगी ढंग से पढ़ाया जा सकता है।
4. मानचित्र की सहायता से कठिन ज्ञान भी सरल हो जाता है।
5. इससे जलवायु तथा वनस्पति की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

मानचित्र का चयन और प्रयोग में सावधानियां (Precaution in selection and Use of Maps)

मानचित्र को निम्नलिखित रूप से प्रयोग करना चाहिए :–

1. राजनैतिक, भौगोलिक तथा आर्थिक जिस प्रकार से मानचित्र का उपयोग जिस परिस्थिति में किया जाना है, उसी का चुनाव किया जाना चाहिए।
2. विद्यार्थियों की योग्यता व कक्षा को ध्यान में रखकर मानचित्र का चयन किया जाना चाहिए।
3. मानचित्र को इस प्रकार दिखाना चाहिए जिससे कक्षा के सभी विद्यार्थी उस पर प्रदर्शित वस्तुओं को अच्छी तरह देख सकें।
4. विषय वस्तु की स्पष्टता को इनके चयन में पूरा महत्व दिया जाना चाहिए।
5. संकेतों तथा पैमानों की दष्टि से इसका उपयुक्त होना जरूरी है ताकि दूरी तथा अन्य आंकड़ों का सही चित्रण किया जा सके।
6. रंग, रेखांकन, सूचना व्यक्त करने वाले शब्दों या संकेतों की दष्टि से भी इसे उपयुक्त होना चाहिए।
7. इनमें प्रदर्शित बातों पर ध्यान दिलाने के लिए संकेतक का प्रयोग करना चाहिए।
8. बार–बार प्रयोग में लाने के लिए इनका उपयुक्त होना जरूरी है।

9. एक मानचित्र द्वारा कुछ सीमित जानकारी दी जानी चाहिए।
10. मानचित्र को दीवार पर उतनी देर टांगना चाहिए जितनी आवश्यकता हो।
11. मानचित्रों का निर्माण छात्रों द्वारा ही होना चाहिए। इससे बच्चों में ज्ञानार्जन की प्रवति को बढावा मिलता है।
12. मानचित्रों में आवश्यकता से अधिक रंगों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
13. मानचित्र की सतह खुरदरी होनी चाहिए ताकि पीछे बैठे हुए विद्यार्थियों को साफ दिखाई दे सके।
14. प्रयोग किया जाने वाला मानचित्र सरल व सस्ता होना चाहिए।
15. मानचित्र में ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित स्थल सही ढंग से प्रदर्शित किए जाने चाहिएं।

4.6 चार्ट (Charts)

चित्र या ग्राफों के रूप में जो कुछ अलग–अलग प्रदर्शित किया जा सकता है उन सभी को सुविधापूर्वक अलग–अलग या इक्ट्ठे रूप में प्रदर्शित करने का कार्य चार्टों द्वारा अच्छी तरह किया जा सकता है। डेल के अनुसार, ''चार्ट एक दश्य सामग्री चिन्ह हैं जो विषय–वस्तु के सार, तुलना या किसी दूसरी क्रिया की व्याख्या करने में सहायता देता है।'' चार्ट की सहायता से संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों ही प्रकार की सूचनाओं व तथ्यों को प्रदर्शित किया जा सकता है। कक्षा शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर चाहे वह पूर्व ज्ञान परीक्षा या प्रस्तावना से सम्बन्धित हो या विषय वस्तु के क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण, पुनरावति, अभ्यास अथवा गहकार्य प्रदान करने से, चार्ट सभी स्तर पर अध्यापक को उसके कार्य में सहायता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि सभी विषयों से सम्बन्धित पाठ्य सामग्री के शिक्षण–अधिगम कार्यो में चार्टो से पूरी सहायता लेने का प्रयास किया जाता है। तथ्यों या विचारों को एक क्रमबद्ध लड़ी में प्रस्तुत करने के लिए चार्ट अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए – इतिहास शिक्षण में महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं को स्पष्ट किया जा सकता है।

चार्टों के प्रकार (Types of Charts)

चार्ट कई प्रकार के होते हैं। अध्यापक पाठ के अनुसार चार्ट तैयार करवा कर शिक्षण उपागम के रूप में प्रयोग कर सकता है। कुछ चार्ट इस प्रकार हैंः–

1. समय चार्ट (Time chart)

इसे समय सारणी भी कहते हैं। इनके प्रयोग से अधिकतर ऐतिहासिक तिथियों, घटनाओं, कालक्रमानुसार विभिन्न शासकों व युद्धों का वर्णन क्रम के अनुसार प्रस्तुत किया जाता है।

2. तालिका चार्ट (Table Chart)

इनमें कई प्रकार के खाने बनाकर विचारों, घटनाओं तथा विवरणों को क्रमानुसार व्यवस्थित किया जाता है। ऐतिहासिक घटनाओं का क्रम, शासकों का क्रम, युद्धों आदि की सूची भी समयानुसार इन चार्टो द्वारा दी जाती है।

3. धारा चार्ट (Flow Chart)

इसके द्वारा किसी वस्तु का क्रमिक विकास तथा राजे महाराजाओं का उत्थान व पतन दर्शाया जाता है। कानून की रचना का चार्ट बनाया जाता है।

4. चित्र सम्बन्धी चार्ट (Picture Chart)

इसमें विभिन्न चित्रों को इक्ट्ठा करके दर्शाया जा सकता है, जैसे– यातायात के साधन, सिंचाई के साधन, डाक के साधन आदि।

5. संगठन चार्ट (Organisation Chart)

इसका प्रयोग सामाजिक अध्ययन में विशेषकर किया जाता है। विभिन्न शासन प्रबन्धों का केन्द्र राज्य, संसद, न्यायालय, कार्यपालिका, पंचायत आदि के संगठन रूप चार्ट पर दिखाया जाते है।

6. वक्षाकति चार्ट (Tree Chart)

किसी भी वस्तु के क्रमिक विकास को इस चार्ट द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। वक्ष का तना मुख्य रूप होता है, उसकी टहनियाँ उसके विकास को दर्शाती हैं। वनस्पति विज्ञान में पेड़ पौधों का विकास तथा जीव विज्ञान में जीव–जन्तुओं का क्रमिक विकास इसके अच्छे उदाहरण हैं। जिस प्रकार से तने से डालियां–पत्तियां निकल कर विकास करती है, उसी प्रकार चार्ट का विकास होता है।

7. ग्राफ चार्ट (Graph Chart)

ऐसे चार्ट अधिकतर भूगोल एवं सामाजिक अध्ययन में प्रयोग होते हैं। इन चार्टों द्वारा ऑकड़ों का प्रदर्शन किया जाता है जैसे वर्षा तथा तापक्रम, वर्षा तथा जनसंख्या आदि। ये पॉच प्रकार के होते हैं– क्षेत्रफल, पाई, चित्र, लाइन एवं लम्बा ग्राफ।

चार्टो का प्रभावपूर्ण उपयोग (Effective Use of Charts)

चार्टो का दश्य साधन के रूप में अच्छी तरह प्रयोग करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिएः–

1. चार्टो के द्वारा निश्चित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलनी चाहिए।
2. यद्यपि विभिन्न प्रकार के चार्ट पुस्तकालय तथा बाजार में उपलब्ध हो सकते हैं परन्तु जहाँ तक संभव हो सके इनका निर्माण अध्यापक की देखरेख में छात्रों द्वारा किया जाना चाहिये।
3. जिस विचार, तथ्य, सूचना अथवा प्रक्रिया को चार्ट द्वारा प्रदर्शित करना हो उसके ऊपर भली–भांति विचार कर चार्ट की दश्य सामग्री को इस प्रकार दिखाया जाना चाहिए कि उससे प्रस्तुत विषय को स्पष्ट एवं प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया जा सके।
4. विषयवस्तु, छात्रों के स्तर, उपलब्ध शिक्षण–अधिगम परिस्थितियों आदि बातों को ध्यान में रखकर ही उपयुक्त प्रकार के चार्टो का चयन किया जाना चाहिये।
5. एक चार्ट का केवल एक ही उद्देश्य होना चाहिये। एक ही चार्ट में बहुत सी बातों को शामिल कर लेने में उसकी स्पष्टता पर असर पड़ता है।
6. जिस उद्देश्य से चार्ट को प्रदर्शित किया जा रहा है उसी को स्पष्ट करने से सम्बन्धित आवश्यक सामग्री ही उसमें होनी चाहिए। अनावश्यक व्यर्थ की बातें नही।
7. चार्टो में दश्य सामग्री की उत्तमता एवं प्रभावपूर्णता पर पूरा–पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। इस दष्टि से रंगों, अक्षरों, आकतियों के आकर्षण तथा आकार आदि पर पूरा 'ध्यान' दिया जाना चाहिए।
8. कक्षा में जिस चार्ट की जिस समय आवश्यकता हो उसको उसी समय प्रदर्शित किया जाना चाहिये। चार्ट को इस तरह प्रदर्शित किया जाना चाहिये कि उसका सम्पूर्ण भाग विद्यार्थियों को अच्छी तरह दिखाई दे सके।

चार्टो का प्रयोग कुशल अध्यापक द्वारा ही सम्भव है। अध्यापकों को उचित समय पर ही प्रदर्शन करना चाहिए। जैसे जैसे विषय बढ़ता जाए तभी अध्यापक को एक–एक कागज हटाना चाहिए ताकि विद्यार्थियों की रूचि बनी रहे। चार्ट का प्रयोग अन्य दश्य–श्रव्य सामग्री की बजाय अधिक प्रभावशाली है।

4.7 ग्राफ (Graphs)

ग्राफ से तात्पर्य चित्रात्मक और ग्राफिक दश्य साधन से है जिसके द्वारा संख्यात्मक व सांख्यिकी आंकड़ों को प्रदर्शित किया जाता है। इनकी सहायता से किसी भी वास्तविकता को सूक्ष्म प्रतीकात्मक और सामान्यीकत रूप में विद्यार्थियों के सामने इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि ग्राफ को देखने मात्र से ही वास्तविक अनुभवों की जानकारी मिल सके। ग्राफ संख्या सम्बन्धित आंकड़ों को शीघ्र और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का एक साधन है। यह सांख्यिकी आंकड़ों की तुलना तथा सम्बन्ध दर्शाता है। ग्राफों का प्रयोग प्रायः सभी विषयों के अध्ययन में किया जाता है। ग्राफ मुख्यतः चार प्रकार के होते हैंः–

ग्राफों के प्रकार (Types of Graph)

1. रेखा ग्राफ (Line graph)

रेखा ग्राफ में पाठ्य सामग्री से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों को सरल रेखा के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इतिहास विषय में समय रेखा ग्राफ इसी तरह के ग्राफों का प्रतिनिधित्व करता है। रेखा ग्राफ को एक बार देखने से ही घटना को समझा जा सकता है।

2. बार ग्राफ (Bar Graph)

बार ग्राफ में आंकड़ों के तुलनात्मक अध्ययन को छड़ों के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इन ग्राफों का निर्माण बड़ी आसानी से किया जाता है और ये समझने में आसान होते हैं। इनमें छड़ों की मोटाई एक जैसी रखी जाती है और लम्बाई के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

3. वत्ताकार ग्राफ (Pie Graph)

किसी वस्तु का विस्तत वर्णन करने के लिए इन ग्राफों का प्रयोग किया जाता है। इन्हें पाई ग्राफ भी कहा जाता है। इन ग्राफों को बनाने के लिए वत्त खींचकर उन्हें विभिन्न खण्डों में इस प्रकार विभाजित किया जाता है कि प्रत्येक खण्ड सम्पूर्ण वत्त के एक निश्चित भाग को व्यक्त कर सके। इसमें एक खण्ड किसी विशेष सूचना का प्रतिनिधित्व करता है।

4. चित्रात्मक ग्राफ (Pictorial Graph)

इस प्रकार के ग्राफों में सांख्यिकी आंकड़ों के तुलनात्मक अध्ययन में चित्रों की सहायता ली जाती है।

ग्राफ की शैक्षिक उपयोगिता (Educational Use of Graph)

ग्राफों की शैक्षिक उपयोगिता को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया गया है :–

1. ग्राफ पाठ का विस्तारपूर्वक वर्णन करने में सहायता करते हैं। इनकी सहायता से पाठ को रूचिकर बनाया जा सकता है।
2. ग्राफ मन्दबुद्धि बच्चों के अधिगम में सहायता करते हैं।
3. ग्राफ तुलनात्मक अध्ययन करने में सहायता करते हैं।
4. ग्राफ में सभी बातों को विस्तत रूप से बताया जाता है।

4.8 मॉडल (Models)

मॉडल उसी चित्र का एक स्थूल रूप है जिसके द्वारा वस्तु का प्रतिरूप, लम्बाई, चौड़ाई, ऊॅचाई व मोटाई को ध्यान में रखकर बनाया जाता हे। यह लकड़ी, मिट्टी, प्लास्टर ऑफ पेरिस या लोहे के बने होते हैं। जिन बड़े आकार वाली वस्तुओं को हम कक्षा में नहीं ला सकते, उनका छोटा रूप मॉडल के नाम से लाकर दिखाया जा सकता है।

उदाहरण के लिए बड़ी–बड़ी मशीनों, रेल के इंजन, हवाई जहाज, ऐतिहासिक महल, पढाते समय उसका मॉडल ही प्रयोग में लाया जाता है। विश्व के प्रमुख शिक्षा शास्त्री W. Schuller के अनुसार, ''मॉडलों की परिभाषा, पहचान योग्य वास्तविक वस्तुओं के त्रि–आयामीय प्रतिरूप के रूप में दी जा सकती है।'' मॉडल को देखकर विद्यार्थियों को असली वस्तु का ज्ञान शीघ्रता से हो जाता है चित्र केवल कक्षा में उस वस्तु का ज्ञान ही दे पाते हैं परन्तु माडल से हमें अन्य बातों का भी आकार देखकर ज्ञान प्राप्त होता है। यह अधिक प्रभावपूर्ण होते हैं। देखने में सुन्दर व शिक्षाप्रद साधन कहे जाते हैं।

मॉडल का प्रयोग शिक्षा में तो होता ही है, साथ ही साथ व्यापारिक प्रतिष्ठानों में भी इन्हें रखा जाता है इन्हें देखकर बच्चों में स्वयं कार्य करने की प्रवति विकसित हो जाती है।

सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में प्रायः इस बात पर बल दिया जाता है कि विद्यार्थियों का जहां तक संभव हो प्रत्यक्ष अनुभव कराया जाए। भाखड़ा बांध, ताज महल, गंगा नदी आदि की जानकारी देने के लिए यदि विद्यार्थियों को इन स्थानों पर ले जाया जाए तो विद्यार्थियों को ज्ञान प्राप्त करने में अधिक सुविधा होगी। परन्तु इन स्थानों पर जाना इतना आसान नहीं, इस अभाव की पूर्ति के लिए शिक्षण में मॉडलों का प्रयोग किया जाता है। मॉडल किसी वस्तु, स्थान, व्यक्तित्व तथा घटना का प्रतिरूप होता है जिसे कक्षा में ले जाना सम्भव है। यह वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। किसी वस्तु के मॉडल से तात्पर्य उस वस्तु की उपयुक्त एवं सुविधाजनक दष्टि से अच्छी तरह से नकल की हुई ऐसी बनावट या प्रतिरूप से है जिसे प्रदर्शित कर अच्छी तरह उस वस्तु या उसकी प्रक्रिया के बारे में जानकारी हो सके। इस प्रकार स्वाभाविक परिस्थितियों में उपलब्ध वास्तविक वस्तुओं एवं उनकी प्रक्रियाओं के बारे में अप्रत्यक्ष ज्ञान प्रदान करने की दष्टि से पदार्थों और नमूनों के बाद त्रि–आयामी साधन का विशेष रूप से महत्व है वह मॉडल ही है।

मॉडल की शैक्षिक उपयोगिता (Educational Use of Model)

शैक्षिक उपयोगिता के दष्टिकोण से मॉडल के प्रयोग से निम्नलिखित लाभ हैं :–

1. मॉडल के द्वारा जटिल से जटिल रचना और कार्य प्रणाली के अध्ययन करने में सहायता मिलती है। इससे हम वस्तुओं तथा उनकी प्रक्रियाओं की जानकारी आसानी से दे सकते हैं।
2. मॉडल सामाजिक अध्ययन सीखने की प्रक्रिया को रोचक तथा सजीव बनाते हैं। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में पाठ के प्रति आकर्षण पैदा हो जाता है।
3. विभिन्न विषयों में ऐसे त्रि–आयामी पदार्थो के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिए जिन्हें न तो चित्र, चार्ट आदि के द्विआयामी साधनों द्वारा पढ़ाया जा सकता है और न जिनके लिए वास्तविक वस्तु या नमूने इत्यादि की व्यवस्था की जा सकती है, मॉडलों का उपयोग उपयुक्त माना जाता है।
4. मॉडल विद्यार्थियों की सजनात्मक शक्ति का विकास करते हैं तथा शिक्षण प्रक्रिया में विद्यार्थियों को सहभागी बनाने में भी सहायता प्रदान करते हैं।
5. मॉडल बड़ी वस्तुओं को छोटे रूप में प्रदर्शित कर ज्ञान प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिये पथ्वी का आकार तथा उससे सम्बन्धित आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए उसके छोटे प्रतिरूप ग्लोब का प्रयोग करना उचित रहता है। इस प्रकार इनका प्रयोग काफी प्रभावपूर्ण सिद्ध हुआ है।

4.9 रेडियो, विडियों, कम्पयूटर, व शिरोपरी प्रोजैक्टर का प्रयोग (Application of Radio, Video, Computer & O.H.P. Radio)

4.9.1 रेडियो (Radio)

शैक्षिक तकनीकी के इस युग में रेडियो एक प्रभावशाली श्रव्य साधन के रूप में कक्षा शिक्षण में बहुत उपयोगी है। रेडियो की उपयोगिता के सम्बन्ध में रिनोल्ड़ ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है – ''रेडियो शिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन है। कक्षा शिक्षण के पूरक के रूप में इसकी सम्भावनाएं बहुत बढ़ जाती है। इसकी शिक्षण संभावनाएं स्कूल दिवस में पॉच या छः घंटे तक ही सीमित नहीं है। यह प्रातः काल से देर रात तक उपलब्ध रहता है। यह समुदायों के प्रौढ़ों तथा बालकों को संसार के कला और ज्ञान के उत्तम भंडार से परिचित कराता है। किसी दिन शैक्षिक उपयोग में इसका प्रयोग इतना सामान्य हो जाएगा जितना कि पाठ्य पुस्तकों तथा श्यामपट्ट का है। रेडियो वास्तव में केवल स्कूली बच्चे को ही नहीं वरन् जनसाधारण को भी शिक्षित करने का एक उपयोगी साधन है।'' रेडियो पर शैक्षिक पाठों के प्रसारण से दूर–दराज के छात्रों को अत्यधिक लाभ पहुँचा है। रेडियो पर शिक्षा शास्त्रीयों और अन्य विद्वानों के भाषण प्रसारित किये जाते हैं जिसका लाभ सभी विद्यार्थी उठाते हैं। आकाशवाणी पर प्रसारित होने वाले पाठों की सूची बहुत पहले से ही प्रसारित कर दी जाती है। अतः स्कूल के मुख्याध्यापक तथा विषय से सम्बन्धित अध्यापकों को आकाशवाणी के शैक्षिक कार्यक्रमों का पहले ही ज्ञान होना चाहिए। रेडियो के शिक्षा के प्रसार में एक और लाभ है कि इससे किसी विशेष भाषण या किसी कलाकार की रचना को बार–बार सुना जा सकता है। रेडियो द्वारा चुनाव, नागरिक कर्त्तव्य, अधिकार, देश की समस्याओं का विवेचन आदि से सम्बन्धित कार्यक्रम का सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के लिए बहुत महत्व है।

रेडियो प्रसारण के प्रकार (Types of Radio Broadcast)

रेडियो प्रसारण दो प्रकार के होते हैं –

1. साधारण प्रसारण (Simple Broadcast)

इस प्रसारण के अन्तर्गत साधारण घटनाओं तथा स्थितियों की सामान्य जानकारी दी जाती है।

2. शैक्षिक प्रसारण (Educational Broadcast)

ये प्रसारण विशेष रूप से छात्रों के लिये तैयार किये जाते हैं। ये प्रसारण रेडियो – पाठों के रूप में शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किए जाते हैं।

सामाजिक अध्ययन में रेडियो की उपयोगिता (Use of Radio in Social Studies)

1. रेडियो द्वारा प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, शिक्षा–शास्त्रियों व कलाकारों के विचारों, भाषाओं तथा उनकी कलाकतियों के बारे में सुनने का अवसर मिल जाता है, जो कि प्रत्येक व्यक्ति या छात्र को व्यक्तिगत रूप से सम्भव नहीं।
2. रेडियो प्रसारण कक्षा में शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में अध्यापक को बहुत अधिक सहायता प्रदान करते हैं।
3. दूर–दराज के क्षेत्रों में जहां शैक्षिक सुविधाएं बहुत सीमित है, रेडियो प्रसारणों का अधिक महत्व है।
4. कम खर्चीला होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति इससे लाभ उठा सकता है।
5. रेडियो प्रसारणों से अध्यापक स्वयं भी ज्ञान प्राप्त करता है। कई नए तथ्यों तथा प्रत्ययों एवं सिद्धान्तों का ज्ञान अध्यापक को होता है।
6. बढ़ती हुई जनसंख्या के संदर्भ में भी रेडियो का शिक्षण के क्षेत्र में शैक्षिक सुविधाओं में प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

4.9.2 विडियो (Video)

आजकल दूरदर्शन के विस्तार के कारण वीडियो का प्रचलन भी शिक्षा एवं मनोरंजन के क्षेत्र में बढ़ रहा है। इसी का दूसरा नाम दश्य–श्रव्य कैसट है। शिक्षा के क्षेत्र में यह तकनीक एक आन्दोलन के रूप में उभरकर आई जो नए आयामों, नयी खोज के प्रतीक हैं।

अब छात्र दश्य–श्रव्य कैसटों के आधार पर शिक्षण ग्रहण कर सकता है। अध्यापक को दोहराना बुरा लग सकता है इसे नहीं। इसके उपकरणों में वीडिया एवं टी० वी० का होना आवश्यक है। शिक्षण के विभिन्न विषयों पर वीडियो कैसेट अर्थात् फिल्मों के वीडियो टेप उपलब्ध है जो कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT). केन्द्रीय प्रौधोगिक शिक्षण संस्थान एवं इन्दिरा गांधी खुले विश्वविद्यालय ने सभी पाठ्यक्रमों पर कैसेट तैयार कर लिए है जो कि अपने अध्ययन केन्द्र में प्रयोग होते हैं।

सामाजिक अध्ययन में वीडियो की उपयोगिता (Use of Vedio in Social Studies)

शैक्षिक क्षितिज में वीडियो टेक्नॉलाजी का आविष्कार एक नया आयाम है। शिक्षा मंत्रालय ने कुछ विषय ई०टी० एण्ड टी द्वारा विकसित करवाये हैं। इन्हें विडियो एवं टी०वी० द्वारा देखा जा सकता है। हम अपनी आवश्यकतानुसार वीडियो कैमरे की सहायता से दश्यों की शूटिंग कर सकते हैं और वीडियो एवं टी०वी० की सहायता से विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकते हैं। इसमें सजीवता व वास्तविकता का समावेश हो जाता है और छात्रों के समक्ष विषयवस्तु को बड़े ही प्रभावशाली रूप में लाया जा सकता है जो निम्न है –

1. वीडियो द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान अधिक स्थायी होता है, क्योंकि इसमें देखने और सुनने की दोनों ज्ञानेन्द्रियां सक्रिय रहती हैं।
2. वीडियो टेप औद्योगिक तथ्यों तथा उनके प्रभावों एवं ऐतिहासिक घटनाओं और वैज्ञानिक अनुसंधानों का साक्षात्कार कराने में बहुत ही सहायक हैं।

3. अच्छे वीडियो टेप द्वारा बालकों की निरीक्षण शक्ति का विकास एवं कल्पना शक्ति का विकास किया जा सकता है।
4. इनके द्वारा मन्द एवं तीव्र बुद्धि के सभी बालकों का जहॉ एक ओर मनोरंजन होता है, वहॉ दूसरी ओर वे सभी तरह की शिक्षा भी ग्रहण करते हैं।
5. वीडियो टेप की सहायता से बालकों को विभिन्न देशों की स्थितियॉ, परिस्थितियॉ आदि का ज्ञान आसानी से दिया जा सकता है।

4.9.3 कम्प्यूटर (Computer)

कम्प्यूटर एक मशीन संचालित माध्यम है। यह कठोर उपागम है। पिछले कुछ दशकों से विकसित देशों में शिक्षण अधिगम में सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला यन्त्र कम्प्यूटर ही है। कम्प्यूटर स्व अनुदेशनात्मक प्रणाली पर आधारित है। इसके द्वारा विद्यार्थी प्रतिपुष्टि आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। भारत में शिक्षा के क्षेत्र में इसका उपयोग अभी कम है। परन्तु अनेक शिक्षा संस्थाओं में इसका उपयोग किया जाने लगा है। यह अनुदेशन व अभिक्रमण सॉफ्टवेयर अथवा मदुल उपागम से सम्बन्धित हैं। इनपुट यूनिट में एक की बोर्ड होता है जिसके द्वारा C.P.U. को अनुदेशन दिया जाता है जो कि अनुदेशन के अनुसार जानकारी को संग्रह विश्लेषण के साथ उस पर नियन्त्रण रखता है। आऊटपुट यूनिट संग्रहित डाटा C.P.U. से प्राप्त करती है व इसे कम्प्यूटर स्क्रीन पर पढ़ा जा सकता है तथा प्रिन्टर पर लिखित रूप से निकाला जा सकता है।

कम्प्यूटर का प्रयोग विशिष्ट कार्यो के क्रियान्वयन तक ही सीमित नही रह गया है। अब सूचना क्रांति की दिशा में कम्प्यूटर की अदभुत उपयोग क्षमता सामने आई है। आज समूचा विश्व कम्प्यूटर जाल या नेटवर्क से जुड़ गया है। कोई भी व्यक्ति अपने कम्प्यूटर को इंटरनेट से जोड़कर घर बैठे विश्व के किसी भी कोने में स्थित कम्प्यूटर में सुरक्षित जानकारी मात्र कुछ सैकेण्डों में हासिल कर सकता है। यही नहीं दूर–दराज स्थित किसी दुकान से मनचाही वस्तु की खरीद–फरोख्त के आर्डर, विभिन्न देशी–विदेशी शैक्षिक संस्थाओं से सम्बन्धित जानकारी कम्प्यूटर बटनों के निर्देश पर प्राप्त करना सम्भव हो गया है। इंटरनेट प्रणाली को सूचना समुद्र की भांति समझा जा सकता है, जिससे वांछित सूचनाएं एकत्र की जा सकती है। इंटरनेट पद्धति में सम्पूर्ण सूचनाएं कम्प्यूटरों में भरी होती है। इन्हें तकनीकी भाषा में 'वेब सर्वर' कहा जाता है। ये सभी कम्प्यूटर एक दूसरे से जुड़े होते हैं और सम्पूर्ण नेटवर्क को वर्ल्ड वाइड वेब के नाम से जाना जाता है। इस पूरी प्रणाली में प्रत्येक कम्प्यूटर में निहित जानकारी को होम पेज के नाम से जाना जाता है। अगर इस होम पेज को एक पुस्तक, वेब साइट को पुस्तक अलमारी और वेब सर्वर को पुस्तकालय के रूप में देखा जाये तो इंटरनेट सिस्टम को लाखों पुस्तकालयों से बनी एक विशाल लाइब्रेरी के रूप में देखा जा सकता है।

कम्प्यूटर का उपयोग (Uses of Computer)

शिक्षण अधिगम में कम्प्यूटर का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके उपयोग को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया गया है:–

1. कम्प्यूटर में विद्यार्थियों से सम्बन्धित जानकारी रखी जा सकती है।
2. किसी भी पूर्व अर्जित ज्ञान का अभ्यास करने के लिए कम्प्यूटर का प्रयोग किया जा सकता है।
3. इसके द्वारा विद्यार्थियों की प्रगति व विकास की जानकारी प्राप्त होती है।
4. कम्प्यूटर से जो कुछ भी पूछा जाता है, उसका वह तुरन्त जवाब देता है।
5. विद्यार्थियों को कम्प्यूटर गेम की सहायता से सिखाया जा सकता है।
6. कम्प्यूटर द्वारा विद्यार्थी करके सीखते हैं जिससे वह कठिन समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करते हैं।
7. कम्प्यूटर के द्वारा व्यक्तिगत व सामूहिक शिक्षण करना सम्भव है।
8. कम्प्यूटर के द्वारा विद्यार्थियों को सीखने के पर्याप्त अवसर मिलते हैं और उन्हें सीखने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।
9. कम्प्यूटर के द्वारा विद्यार्थियों को तुरन्त प्रतिपुष्टि प्राप्त होती है।
10. शिक्षण अधिगम का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहां कम्प्यूटर का प्रयोग न किया जाता हो।

कम्प्यूटर की सीमाएं (Limitations of Computer)

1. यह एक महंगा उपकरण है इसलिये सभी स्कूल इसे प्रयोग नहीं कर सकते। इसका रखरखाव भी कठिन होता है।
2. कम्प्यूटर द्वारा कार्य करते हुए विद्यार्थी चुप रहते हैं जिससे सूचनाएं उन पर थोंपी जाती हैं।
3. कम्प्यूटर द्वारा विद्यार्थियों की भावनाओं व संवेगों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।
4. कम्प्यूटर के उपयोग के लिए विकसित तकनीकी की जानकारी होनी चाहिए, जो प्रायः नहीं होती।
5. कम्प्यूटर कभी अध्यापक का स्थान नहीं ले सकता।

4.9.4 शिरोपरि प्रोजेक्टर (Overhead Projector)

शिरोपरि प्रोजेक्टर एक मशीन संचालित माध्यम है। अध्यापक अपनी कक्षा में विद्यार्थियों की ओर अपना मुॅह किये हुए उनका पूर्ण स्वाभाविक ढंग से सामना भी करता रहे और साथ ही पर्दे पर प्रक्षेपण करते हुए समय समय पर मानचित्र को आवश्यकतानुसार प्रोजेक्टर पर दिखा दे। जिस समय ग्लोब, आरेख तथा किसी ग्राफ की आवश्यकता हो उस समय पर्दे पर उनका प्रक्षेपण मिल जाए। अध्यापक की इस प्रकार की कक्षा शिक्षण सम्बन्धी आवश्यकता को शिरोपरि प्रक्षेपी यानी OHP बखूबी निभा सकता है। अपने शिक्षण के दौरान अध्यापक द्वारा अपनी मेज पर ही इस उपकरण को रखा जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार प्रक्षेपित सामग्री, स्लाइड आदि को पर्दे पर प्रक्षेपित कर उसी के द्वारा आसानी से दिखाया तथा समझाया जा सकता है।

वैसे तो इस प्रक्षेपी उपकरण में प्रक्षेपी तकनीक के उपयोग के कारण अन्य प्रक्षेपी उपकरणों मैजिक लैन्टर्न, एपीडाइस्कोप तथा स्लाइड़ प्रोजेक्टर की भॉति विद्युत लैम्प परवर्तक कन्डेन्सर और प्रोजेक्शन लैन्स, स्लाइड कैरियर आदि वस्तुओं का ही उपयोग किया जाता है परन्तु उनका आयोजन इस ढंग से रखा जाता है कि कुछ दूरी पर ही प्रक्षेपित सामग्री तथा उपकरण को रखा जाकर पर्दे पर स्पष्ट और बड़ी आकति प्रतिबिम्ब के रूप में प्राप्त हो सके। इस कार्य हेतु जो विशेष प्रबन्ध इस उपकरण में किये जाते हैं उनमे सर्वप्रथम विद्युत लैम्प की किरणों का दर्पण पर पड़ना है इसके पश्चात् दर्पण पर पड़ने के बाद किरणें स्लाइड के अन्दर से गुजरती है। इसमें स्लाइड को रखने के लिए 25x25 cm. का बड़ा सुराख या एपरेयर काम में लाया जाता है। पर्दे पर प्रक्षेपित सामग्री का अच्छा प्रतिबिम्ब प्राप्त करने के लिए प्रोजैक्शन लैन्स को आगे पीछे खिसकाकर प्रतिबिम्ब को फोकस किया जाता है। इस उपकरण को ठण्डा करने की भी इसमें उपयुक्त व्यवस्था होती है। इस उपकरण में प्रकाश व्यवस्था बहुत तेज लैम्प (1000 Watt) से की जाती है।

''शिरोपरि प्रोजैक्टर'' की शैक्षिक उपयोगिता (Educational Use of Overhead Projector)

शिरोपरि प्रोजैक्टर की शैक्षिक उपयोगिता को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया गया है :–

1. शिरोपरि प्रोजैक्टर का प्रयोग व संचालन सरल होता है।
2. शिरोपरि प्रोजैक्टर का प्रयोग करते समय परदा अध्यापक के पीछे होता है और विद्यार्थी सामने। वह कक्षा में स्वाभाविक रूप से पढ़ सकता है और विद्यार्थियों की क्रियाओं व गतिविधियों पर भी नजर रख सकता है।
3. शिरोपरि प्रोजैक्टर को अध्यापककी मेज पर ही रखा जाता है। यह ज्यादा स्थान नहीं घेरता। इसके नियन्त्रण में अध्यापक को सुविधा रहती है।
4. इस प्रोजैक्टर के लिए प्रयुक्त होने वाले कमरे में अन्धेरा करने की आवश्यकता नहीं होती।
5. इस प्रोजैक्टर में स्लाइड और पर्दे का प्रयोग होने के कारण श्यामपट्ट की आवश्यकता नहीं होती।
6. श्यामपट्ट पर लिखित या चित्रित सामग्री के स्पष्टीकरण के लिए अध्यापक बार–बार श्यामपट्ट के पास जाता है, किन्तु शिरोपरि प्रोजैक्टर की सहायता से प्रक्षेपित सामग्री के ऊपर पैन्सिल या संकेतक का प्रयोग करने अध्यापक को बार–बार श्यामपट्ट के पास नहीं जाना पड़ता।

4.10 अभिनय प्रणाली (Dramatization)

आधुनिक समय अतीत की अपेक्षा इतना बदल चुका है कि सामाजिक विज्ञान के तथ्यों एवं घटनाओं के अध्ययन से अतीत को नहीं समझा जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि छात्र में अतीत की वस्तुओं, घटनाओं एवं व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न नहीं होती है। यद्यपि इतिहासकार अपनी कल्पना शक्ति से पुस्तकों को रूचिकर बनाने का प्रयास करते हैं। अतः सामाजिक शिक्षण से इन परिस्थितियों में छात्रों में अभीष्ट व्यवहार परिवर्तन लाना कठिन होता हैं। इसके लिये सामाजिक विज्ञान स्त्रोत–पद्धति तथा नाटकीय विधि एकमात्र साधन है। जब विद्यार्थी गौतम बुद्ध, अशोक, शिवाजी तथा महाराणा प्रताप आदि के नाटक में भाग लेते हैं या देखते हैं तब उन्हें उनके चरित्र का शुद्ध बोध होता है। सामान्यीकरण नहीं करना पड़ता है। छात्रों को सामाजिक अध्ययन का ज्ञान खेल के रूप में दिया जाता है। छात्रों को अधिक क्रियाशील रहना पड़ता है। नाटकीय विधि में ज्ञानेन्द्रियों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण की यह अधिक प्रभावशाली विधि है। इसे कला की संज्ञा भी दी जाती है। इसकी विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. यह विधि पूर्ण रूप से मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है।
2. इसमें मस्तिष्क के सभी पक्षों को विकसित किया जाता है। भावात्मक पक्ष को प्रधानता दी जाती है।
3. सीखने की प्रक्रिया कार्य द्वारा सम्पादित होती है।
4. इसमें ज्ञान छात्रों को खेल के रूप में दिया जाता है।
5. विषयवस्तु को मूर्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसे समझना और याद करना सुगम होता है।
6. इसमें भावात्मक सीखने के अनुभवों के साथ ज्ञानात्मक सीखने के अनुभव भी दिये जाते हैं।

नाटकीय–भावनात्मक में शिक्षक को ही व्यवस्था करनी होती हैं। प्रमुख महान् पुरूषों के लिये नाटक की व्यवस्था की जाती है जो छात्रों के जीवन को प्रभावित कर सकें। इसमें छात्रों को ही भाग लेना चाहिए। इसके लिये योजना शिक्षक तैयार करता है। ऐतिहासिक पात्रों को मौलिक वस्त्रों में प्रस्तुत करना चाहिये। शिक्षक का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। जिससे छात्र नाटक में भाग लेने के इच्छुक रहें। नाटकीय विधि में चार सोपानों का अनुसरण किया जाता है –

1. योजना तैयार करना।
2. नाटक की तैयारी।
3. क्रियान्वयन।
4. मूल्यांकन।

नाटक की योजना तैयार करना शिक्षक का उत्तरदायित्व होता है परन्तु छात्रों का सहयोग अवश्य लिया जाये। स्थल की तैयारी छात्रों को शिक्षक के निर्देशन में करनी होती है। क्रियान्वयन के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि नाटक में स्वाभाविकता होनी चाहिए। नाटक के अन्त में छात्रों को गह कार्य भी देना चाहिए। छात्रों को नाटक लिखने के लिये प्रोत्साहित किया जाये।

नाटक के लिए विषय वस्तु (Content for Drama)

1. कष्ण सुदामा
2. श्री राम
3. महात्मा बुद्ध की जीवन गाथा
4. पोरस तथा सिकन्दर
5. पथ्वीराज और संयोगिता
6. चन्द्रगुप्त और चाणक्य
7. महाराणा प्रताप की जीवनी

8. शिवाजी के जीवन की घटनाऐं
9. वीर शहीदों की गाथाऐं
10. भीम और दुर्योधन का युद्ध

नाटकीय विधि का प्रयोग (Use of Dramatization)

1. जब किसी खण्ड का अध्ययन खत्म कर लिया गया हो और शिक्षक उसे नाटक के रूप में प्रयोग करना चाहता हो तो उसके लिए छात्रों को विशेष तौर पर तैयार करके ही नाटकीय विधि का प्रयोग किया जाए तो ज्यादा प्रायोगिक होगा।
2. जब हमारी पाठ्य वस्तु का कोई विशेष खण्ड पढ़ाया जा चुका हो और उसके लिए हमारे पास स्रोत भी उपलब्ध हों तो तब नाटक की व्यवस्था करने से ज्यादा प्रभावशाली अध्ययन होगा। यहां पर हमारे खण्ड का प्रभावशाली व्यक्ति भी नाटक को प्रभावित करता है।
3. नाटकीय विधि का प्रयोग हमारी प्रस्तावना के संदर्भ में भी किया जा सकता है। प्रस्तावना को अधिक महत्वपूर्ण बनाने के लिए नाटकीय विधि का प्रयोग करके पाठ्य पुस्तकों का विकास किया जा सकता है।
4. हमारा शिक्षक ऐतिहासिक नाटकों के अध्ययन के लिए प्रेरणा देकर उसमें जो अधिक महत्वपूर्ण तथा अच्छा हो वह नाटकीय ढंग से प्रस्तुतीकरण में सहायक है।

नाटकीय विधि की विशेषताऐं (Characteristics of Dramatization)

1. भावनात्मक अभिवति का विकास (Development of Emotional Aptitude)

नाटकीय विधि से छात्रों में भावनात्मक अभिवति जागत होती है और वे इसमें अपने आपको जुड़ा हुआ पाते हैं।

2. सहयोग (Co-operation)

इस विधि द्वारा छात्रों में इकट्ठे कार्य करने की प्रवति का विकास होता है जिससे आपस में सहयोग की भावना का विकास होता है।

3. सामाजीकरण (Socialization)

नाटकीय विधि छात्रों को सीधा समाज से जोड़ देती है। वे जो समाज में घट चुका है उसी का जीवन्त उदाहरण दोहराकर सीधा समाज से जुड़ जाते हैं जिससे उनका समाजीकरण होता है।

4. स्थायी एवं सरल (Permanent and Simple)

नाटकीय विधि द्वारा ऐतिहासिक विषय वस्तु को सीखना आसान होता है तथा अधिक स्थाई रहता है।

5. चारित्रिक गुणों का विकास (Development of Character)

नाटकीय विधि छात्रों के चरित्र विकास की प्रक्रिया को पूरा करने में सहायक है। वे नाटकों में प्रत्यक्ष रूप से हिस्सा लेकर अपने चरित्र में ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश करते हैं।

6. कलात्मकता (Art)

इस विधि से छात्रों में कलात्मक रूचि का विकास होता है।

7. एकता का विकास (Development of Unity)

इस विधि द्वारा राष्ट्रीय एकता तथा भावनात्मक एकता का विकास होता है।

8. क्रियाशीलता (Activity)

नाटकीय विधि में हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियां अधिक क्रियाशील व प्रभावित रहती हैं जिससे शिक्षण अधिक सरल व सुगम है।

9. अधिक रूचिपूर्ण (More Intersting)

क्योंकि इस विधि में शिक्षण खेल द्वारा किया जाता है जिससे यह अधिक रूचिकर होता है।

10. ध्यान केन्द्रीयकरण (Concentration)

इस विधि में सीखने की क्रिया कार्य द्वारा सम्पादित की जाती है जिसके कारण छात्रों का ध्यान अधिक केन्द्रित रहता है।

11. आत्म निरीक्षण (Self Inspection)

इस विधि से छात्र अपना आत्म निरीक्षण कर सकते हैं तथा वे दूसरों का निरीक्षण भी कर सकते हैं।

12. शैक्षिक मूल्यों का विकास (Development of Educational Values)

इस विधि द्वारा सभी प्रकार के शैक्षिक मूल्यों का विकास होता है। इस विधि की सभी क्रियाएं शिक्षाप्रद होती हैं।

13. कल्पना शक्ति का विकास (Development of Imagination Power)

इस विधि से छात्रों की कल्पना शक्ति के विकास के लिए अधिक अवसर मिलते हैं।

14. इस विधि में महान पुरूषों के चरित्र की विशेषताओं के वास्तविक रूप का अनुभव करते हैं इसमें छात्रों को उनका सामान्यीकरण नहीं करना पड़ता।

नाटकीय विधि की सीमाएं (Limitations of Dramatization)

1. नाटकीय विधि में अनुशासनहीनता की समस्या हमेशा उत्पन्न होती रहती है।
2. इस विधि में सभी छात्र भाग नहीं ले पाते केवल कुछ छात्र ही इसमें क्रियाशील रह पाते हैं।
3. इस विधि का प्रयोग करना इतना सरल नहीं होता है जिससे यह विधि इतनी प्रभावशाली नहीं रहती।
4. कुछ बच्चों के माता पिता उनको नाटकों आदि में भाग लेने से मना कर देते हैं। छात्राओं के मामले में यह कुछ ज्यादा ही होता है।
5. यह विधि अधिक समय लेती है तथा इसमें खर्च भी अधिक होता है।
6. भाषा की कठिनाई का भी कई बार सामना करना पड़ता है।
7. नाटकों की रचना करते समय छात्रों के मानसिक स्तर का ध्यान नहीं रखा जाता है इसमें प्रकरण पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
8. कई बार नाटकों का आकार अधिक बड़ा होता है उसका स्मरण करना आसान नहीं होता।
9. नाटकीय विधि में शिक्षकों में विशेष गुणों की आवश्यकता होती है जिनका उनमें अभाव होता है जैसे मौलिकता, नेतत्व की भावना आदि।

सावधानियाँ (Precautions)

1. छात्रों को बाध्य न करें उन्हें स्वेच्छा से भाग लेने पर छोड़ देना चाहिये।
2. विषय वस्तु की शुद्धता एवं पात्रों की वास्तविकता पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।
3. नाटक की व्यवस्था विद्यालय में ही करें तथा उसमें छात्रों को ही भाग लेने दें।
4. नाटक में मंचन से पहले शिक्षक को अभ्यास करना चाहिये।
5. नाटकीय विधि में खुद के भाषण का भी प्रयोग होना चाहिये जिससे मनुष्य में खुद की भावना व चरित्र सामने आ सके।

अपनी प्रगति जांचिए -1

(i) स्लाइडस का शिक्षा में क्या योगदान हैं?

(ii) बुलेटिन बोर्ड के लाभ बताईये।

(iii) मानचित्र का प्रयोग करते समय किन किन सावधानियों का ध्यान रखेगें।

(iv) चार्ट कितने प्रकार के होते हैं?

(v) ग्राफ कितने प्रकार के होते हैं?

(vi) शिक्षा में रेडियों से आप क्या समझते हैं?

(vii) अभिनय प्रणाली से आप क्या समझते हैं?

4.11 सामुदायिक स्रोतों का प्रयोग (Use of Community Resources)

व्यक्ति और समाज का परस्पर गहरा तथा अनिवार्य संबंध है। दोनों को अलग–अलग करना असंभव है। मनुष्य को सामाजिक जीव इसलिए कहा जाता है क्योंकि समाज में इसका जन्म होता है, समाज में उसका विकास होता है और समाज में स्वस्थ समायोजन स्थापित करना ही उस के जीवन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होता है। अतः स्वस्थ जीवन यापन के लिए मनुष्य का सामाजीकरण अत्यंत आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति–अर्थात् मनुष्य के सामाजीकरण के लिए समाज की स्थापना करता है। स्कूल ऐसी सामाजिक संस्था है जो व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास कर के उसे सामाजिक विकास में स्वस्थ एवं उपयोगी योगदान प्रदान करने के योग्य बनाती है। शिक्षा–शास्त्री जहां इस बात पर जोर देते आ रहे हैं वहां इस बात पर भी बल देते हैं कि शिक्षा–समुदाय या समाज केन्द्रित होनी चाहिए। शिक्षा का समाज–केन्द्रित होना दो बातों की ओर लक्ष्य करता है। एक यह कि बच्चों को स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाया जाये। उनमें वे तमाम अभिवतियां तथा योग्यताएं विकसित की जायें जो उन्हें समाज में स्वस्थ समायोजन स्थापित करने के योग्य बनाती हों और उन्हें सामाजिक विकास की ओर प्रेरित कर सकती हों। दूसरा यह कि बच्चों की शिक्षा सामाजिक अनुभूतियों पर आश्रित होनी चाहिए। बच्चा जब स्कूल में दाखिल होता है तो उस प्रकार की अनुभूतियां होती हैं। उनकी शिक्षा इन्हीं अनुभूतियों पर आधारित होनी चाहिए। यह तभी संभव हो सकता है जब स्कूल और समुदाय में अलग–थलग रख कर उस के द्वारा न तो व्यक्ति का उचित समाजीकरण किया जा सकता है और न ही शिक्षण को प्रभावशाली, उपयोगी तथा मनोवैज्ञानिक बनाया जा सकता है। स्कूल और समुदाय के परस्पर संबंध के महत्व को दर्शाते हुए श्री के०जी० साईदायन ने कहा है, ''समुदाय का स्कूल स्पष्टतयः समुदाय की आवश्यकताओं तथा समस्याओं पर आधारित होना चाहिए। उस का शिक्षाक्रम सामुदायिक जीवन का संक्षिप्त रूप होना चाहिए। उस में वह सभी महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट बातें प्राकतिक रूप से प्रतिबिंबित होनी चाहिए जो सामुदायिक जीवन में विद्यमान हैं।''

शिक्षा में नवीनतम झुकाव यह है कि शिक्षा समुदाय केन्द्रित हो। यह समुदाय की, समुदाय द्वारा तथा समुदाय के लिए हो। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए स्कूल तथा समुदाय को एक दूसरे के निकट लाया जाना चाहिए। बच्चों को यदि शिक्षा द्वारा जीवन के लिए तैयार किया जाना है अथवा शिक्षा को ही जीवन बनाना है तो शिक्षा को बच्चे के लिए सजीव अनुभव बनाया जाना चाहिए। शिक्षा केवल स्कूलों में ही नहीं अपितु समुदाय में भी विस्तत पैमाने पर दी जानी चाहिए। हम यह जानते हैं कि बच्चा अपने समय का अधिकांश भाग स्कूल में नहीं समुदाय में व्यतीत करता है। तब क्यों न समुदाय को स्कूल की प्रयोगशाला बना दिया जाए जहां बच्चों ने सजीव अनुभव प्राप्त करने हैं। यह पुनरूत्थान ही राष्ट्र को शक्तिशाली बनाकर इसे स्वयं को बनाए रखने के लिए ही नहीं अपितु दूसरों को बनाए रखने के लिए भी जीवन और शक्ति देगा। यह पुर्नत्थान तभी हो सकता है यदि स्कूल अपनी विलगता अथवा तटस्थता ही को छोड़ दें और एक नई भूमिका समुदाय स्कूलों की भूमिका को अपनाए। इस भूमिका का अभिप्रायः एक ओर स्कूल तथा समुदाय और दूसरी ओर समुदाय तथा स्कूल के मध्य स्थित दिवारों को तोड़ना अथवा उन्हें दूर करना है। आवश्यकता इस बात की है कि स्कूल तथा समुदाय दोनों संस्थाओं के निरंतर प्रवाह को बनाए रखने के लिए नियमित व्यवस्था हो। इस विचारधारा के अनुसार ये दोनों संस्थान एक दूसरे से अलग तथा तटस्थ नहीं होने चाहिएं अपितु वह एक दूसरे को अविभाज्य रूप में मिल जाएं। इनमें से प्रत्येक दूसरे को सीखने का महत्वपूर्ण

साधन मानें और उसे रहने के लिए बेहतर समद्ध तथा प्रसन्नतापूर्वक स्थान बनाएं।

समुदाय अपने विभिन्न स्रोतों के द्वारा सामाजिक अध्ययन के ज्ञान में वद्धि करता है। इन स्त्रोतों का प्रयोग करने में प्रशासन, अध्यापक, स्थानीय नागरिक, अभिभावक तथा छात्र सभी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक सुनियोजित कार्यक्रम स्कूल तथा समुदाय को एक दूसरे के बहुत समीप ला सकता है। इस प्रयास के द्वारा स्कूल–कार्यक्रम समुदाय के जीवन का अंग बन सकता है। छात्रों द्वारा समुदाय में अनुभवों से प्राप्त किए प्रथम स्तर का ज्ञान विवेकशील नागरिकता का निर्माण करता है। स्थानीय समुदाय का संबंध अतीत से और समस्त संसार से है। इसमें वे सभी आशाएं शामिल हैं जो मनुष्यों को प्रत्येक स्थान पर प्रेरित करती है। इसकी अपनी श्रेष्ठता तथा इसका अपना अर्थ है। एक अध्यापक जो कि उस समुदाय का उपयोग तथा उसकी प्रशंसा नहीं करता जहां उसका स्कूल स्थित है छात्रों को शिक्षित बनाने के महत्वपूर्ण स्रोत को दष्टि विगत कर रहा है।

इसका अभिप्रायः यह है कि स्कूल समुदाय के समीप जाए तथा उसे प्रयोगशाला समझे। उसके स्रोतों की खोज करे, उसकी संस्कति को समझे, उसकी समस्याओं के समाधानों का सुझाव दे। इससे छात्रों को न केवल भौतिक व्यवस्था अपितु मानव व्यवस्था का भी अन्वेषण करने के अवसर उपलब्ध होगें। भौतिक व्यवस्था में आकार, जलवायु, स्थान, वर्णन, भूमि, खनिज, तथा अन्य ऐसी ही समस्याऐं शामिल हैं जिनके परिणामस्वरूप श्रेणियां तथा जातियां बनती हैं। इस अध्ययन के लिए समुदाय की सम्पूर्ण जांच तथा इसके स्रोंतों की शैक्षिक उद्देश्यों के लिए पूर्ण उपयोगिता आवश्यक है।

4.10.1 महत्वपूर्ण स्रोत (Important Sources)

प्रत्येक समुदाय अपने विभिन्न स्रोतों के उपयोग के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। एक साधन संपन्न अध्यापक को इन सब स्त्रोंतों का पूर्ण उपयोग करना चाहिए। उसे अपने छात्रों को उपलब्ध स्त्रोतों का अध्ययन प्रारम्भ कराने से पहले इनकी सूची तैयार करने में सहायता देनी चाहिए। इस सूची में उन सभी स्थानों के विषय में जानकारी अथवा सूचनाएं शामिल होनी चाहिए जो सामाजिक अध्ययन की शिक्षा को समद्ध बना सकते हैं। प्रत्येक रूचिकर स्थान को इस सूची में अलग स्थान मिले और उस के विषय में विशेष जानकारी दी जाए। इस जानकारी में ये बातें शामिल होनी चाहिऐं :–

1. स्थान का नाम।
2. इसकी स्थिति ।
3. संपर्क स्थापित किए जाने वाले व्यक्ति अथवा दल का नाम।
4. उस स्थान के सर्वेक्षण के लिए निर्देश।
5. भेंट के लिए अत्यन्त उपयुक्त समय।
6. अध्ययन तथा उपयोग के लिए स्त्रोत तथा सामग्री।
7. नियम भेंट के लिए जाने वाले समूह के छात्रों की अनुमानित संख्या।
8. भेंट के लिए अपेक्षित समय की अवधि।
9. खर्च यदि कोई हो तो।
10. यातायात की उपलब्ध सुविधाएं।

4.10.2 सूची अथवा वर्णन सूची (Descriptive List)

यह निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत तैयार की जा सकती है –

1. ऐतिहासिक रूचि के स्थान (Hisorical Sources)

मंदिर, गुरूद्वारे, मस्जिदें तथा गिरजाघर इत्यादि।

2. भौगोलिक रूचि के स्थान (Geographical Sources)-

इनमें कारखाने, मिलें, रेलवे स्टेशन, सिनेमा, समुद्री बंदरगाहें, हवाई अड्डे, खानें, टेलीफोन एक्सचेंज, अपनी विभिन्न अवस्थाओं में कषि, निर्माण, यातायात तथा संचार केन्द्र इत्यादि स्थान सम्मिलित हैं।

3. सामाजिक तथा सांस्कतिक रूचि के स्थान (Social and Cultural Sources)

इनमें क्लब, पार्क, संग्रहालय, चिड़ियाघर, कला दीर्घाए, पुस्तकालय, सिनेमाघर, रेडियो स्टेशन, विश्वविद्यालय, फिल्म स्टूडियो, स्काऊट तथा गर्ल गाइड संगठन, परिवार, दल, संघ टीमें, स्कूल तथा कालेज इत्यादि।

4. आर्थिक रूचि के स्थान (Economic Sources)

इनमें बाजार, बैंक, ईंटों के भट्ठे, डेरियां, व्यापारिक केन्द्र इत्यादि स्थान सम्मिलित है।

5. सरकारी भवन (Government Buildings)

इनमें पंचायत घर, नगर पालिकाएं भवन, जिला बोर्ड, पुलिस स्टेशन, वाटर सप्लाई संस्थान, अस्पताल, न्यायालय, जन–कल्याण संस्थान सम्मिलित हैं।

6. परम्पराएं (Customs)

परम्पराएं रीति–रिवाज, धार्मिक रीतियां, समारोह, विश्वास तथा दष्टिकोण।

समुदाय स्कूल के आदर्श को कार्य रूप देने के लिए स्कूल की गतिविधियों तथा समुदाय की गतिविधियों का ठीक समन्वय करना वांछित ही नहीं अपितु पूर्णतः अनिवार्य भी है। यह आदर्श संगठनकर्त्ताओं से यह मांग करते हैं कि वे स्कूल तथा समुदाय के मध्य की खाई को नापें, उनमें आदान–प्रदान की व्यवस्था को तथा एक से दूसरे तक सेवाओं, साधनों व गतिविधियों के नियमित प्रवाह की मांग करें।

4.10.3 संसाधनों का उपयोग (Use of Resources)

इन साधनों का उपयोग स्कूल को समुदाय तक लाने व समुदाय को स्कूल तक ले जाने से किया जा सकता है।

1. स्कूल को समुदाय तक ले जाना (Bringing School to the Community)

जिस वातावरण में छात्र रहते हैं उसमें वास्तविक पर्यवेक्षण का कोई स्थानापन्न नहीं है। वे भूगोल को क्रियात्मक रूप में और इतिहास को निर्माणाधीन देखते हैं। वे लोगों व उनके पेशों के संबंध में जानते और उस व्यापार व उद्योग के संबंध में ज्ञान प्राप्त करते हैं जो समुदाय को बनाते हैं। वे समुदाय की गतिविधियों तथा कार्य का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह बात निम्नलिखित ढंग से संभव है –

(i) भ्रमण यात्राएं (Field Trips)

भ्रमण सीखने के आयोजित अनुभवों के रूप में होने चाहिएं। ऐसे भ्रमणों के लिए विद्यार्थी सदैव तैयार होते हैं। छात्र जब इसके बारे में क्लास में पढ़ चुके होते तो वे ऐसे अनुभव के लिए तैयार होते हैं। उस विषय अथवा समाज के संबंध में उनकी सूझ को प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण द्वारा और बढ़ाया जा सकता है। देहाती क्षेत्रों में समुदाय व प्रकति काफी घुले मिले होते हैं। ऐसे भ्रमणों से छात्र फूलों, पौधों, वक्षों, पक्षियों व ऐसी अन्य वस्तुओं को पहचानने के योग्य हो जाते हैं। वे सिंचाई सुविधाओं, सड़कों, पगडंडियों, परिवहन के साधनों, भूमि की उपज, कुटीर उद्योग, व्यापार, लोगों के आर्थिक जीवन को भी देखेंगे। इस प्रकार वे ग्राम्य जीवन के असंख्य तथ्यों से अवगत हो जाऐंगे। ग्राम्य–स्कूलों के छात्रों को कस्बों तथा नगरों में भी ले जाया जाना चाहिए। जहां वे फैक्टरियां, मिलें, वर्कशाप, बिजली घर, बैंक, दमकलें, रेलवे जंक्शन, हवाई अड्डे, सिनेमाघर, रेडियो स्टेशन, ऐतिहासिक शिलालेख, भवन, स्कूल, कालेज, संग्रहालय व अन्य कई ऐसी चीजें देख सकते हैं जो उन्हें अपने क्षेत्र में देखने को नहीं मिलती। परन्तु बाह्य भ्रमण व यात्राओं का आयोजन ध्यान से किया जाना चाहिए। सभी आवश्यक जानकारी पहले ही प्राप्त कर लेनी चाहिएं और सारे विवरण पर अच्छी प्रकार विचार कर लेना चाहिए। इसके बाद जब यात्रा खत्म हो तो बाद का कार्यक्रम बहुत आवश्यक है।यह रिपोर्ट अथवा भ्रमण किए गए स्थानों का वर्णन लिखने, स्क्रेप पुस्तकें तैयार करने लिए गए चित्रों व फोटोग्राफों को सजाने, अथवा पेनल–विचार विमर्श के रूप में हो सकता है।

(ii) सामुदायिक सर्वेक्षण (Community Survey)

स्कूल के वरिष्ठ छात्रों को एक विशिष्ट प्रकार का सामुदायिक सर्वेक्षण का कार्य हाथ में लेना चाहिए। इस सर्वेक्षण के अन्तर्गत वे समुदाय के अतीत के इतिहास, इसकी वर्तमान स्थिति, आर्थिक परिस्थितियों, सामाजिक संस्थाओं, परम्पराओं, रिवाजों, समारोहों, लोकगीतों, लोकनत्यों, लोक कथाओं, आदतों व तरीकों का अधिक अध्ययन करेंगे। इनमें समुदाय की समस्याएं जैसे आकार, स्वास्थ्य, सफाई, रोजगार, सुरक्षा आदि भी शामिल होंगी। ये समस्याएं इतनी आम हैं कि छात्र इन्हें देख व समझ सकते हैं। ऐसे सर्वेक्षण कठिन नहीं हैं। छात्र सामाजिक कार्य कक्षाओं, पुराने निवासियों, स्थानीय विशेषज्ञों, सरकारी अधिकारियों व आबादी के महत्वपूर्ण व्यक्तियों से मिलकर व उनसे वांछित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। वे नक्शों, रिकार्ड व दस्तावेजों की सहायता ले सकते हैं, वे विभिन्न स्थानों की यात्रा कर सकते हैं और अपने पर्यवेक्षण पर निर्भर रह सकते हैं। समुदाय की मानचित्र परियोजना भौतिक विचारों को सार्थक कर सकती है और दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाले भौतिक वातावरण को चित्रित कर सकती है।

(iii) राहत सेवाओं का संयोजन (Organizing Relief Services)

बाढ़, महामारी, अग्निकांड, भूकंपों आदि के समय स्टाफ–सदस्यों की देख–रेख में स्कूल–छात्र समुदाय के लिए राहत सेवाओं का संयोजन कर सकते हैं।

(iv) स्वस्थ दलों व सामाजिक-सेवाओं का संयोजन (Organizing Social Services)

स्कूली–छात्र, समुदाय अथवा समाज के लिए मेलों, त्यौहारों, समारोहों तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों के दौरों के समय सराहनीय सेवाएं कर सकते हैं। वे गलियों में नालियों, पीने के कुओं तथा आस–पास की सफाई का कार्यक्रम भी अपना सकते हैं। वे अपने इर्द–गिर्द के स्थान में पौधे तथा फूल लगाकर तथा रास्ता बनाकर उसे सुंदर बनाने में समुदाय की सहायता कर सकते हैं। वे अस्पताल में उन रोगियों के लिए पत्र लिख कर जो स्वयं लिखना नहीं जानते सेवा कर सकते हैं। वे निराश तथा उदास मन को कहानी बना कर अथवा पत्रिकाओं, पुस्तकों से कहानियां सुना कर या दूसरी वस्तुओं के चित्र दिखा कर प्रसन्न एवं प्रफुल्लित कर सकते हैं। बड़े–बुढ़ों को पढाने का कार्यक्रम करना भी लाभदायक है। ''कैंप फायर'' तथा अन्य मनोरंजक गतिविधियां भी विभिन्न समारोहों पर लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

2. समुदाय को स्कूल में लाना (Bringing Community to School)

यह कार्य निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है :–

(क) अभिभावक-शिक्षक एसोसियेशन (Parent-Teacher Association)

प्रत्येक स्कूल में इस प्रकार की एसोसियेशन अवश्य होनी चाहिए। अभिभावक जो स्थानीय समुदाय के सदस्य हैं, अध्यापकों द्वारा अपने बच्चों की योग्यता, रूचि तथा चरित्र के गुणों के विषय में जान जाऐंगे। अध्यापकों तथा अभिभावकों के बीच यह आपसी सहयोग दोनों के लिए लाभदायक रहेगा। इससे अध्यापकों को समुदाय की आम आवश्यकताओं का पता चल जाएगा और अभिभावकों को भी इस बात का अवसर मिलेगा कि वे स्कूल में हो रहे कार्य को पहचान सकें अथवा उसे मान्यता दे सकें। इस बात का ज्ञान कि उसके कार्य की अभिभावकों द्वारा प्रशंसा की गई है, अध्यापकों को शांति तथा प्रसन्नता प्रदान करता है और इसे बेहतर तथा बड़े प्रयत्नों की ओर उत्साहित करता है।

(ख) प्रसिद्ध व्यक्तियों को स्कूल में निमंत्रित करना (Inviting Famous People in School)

समुदाय के विभिन्न व्यवसायों तथा कार्यों में रूचि लेने वाले व्यक्तियों को समय–समय पर स्कूल में आमंत्रित किया जाना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों की सूची में साहूकार, डाक्टर, किसान, सरपंच अथवा नगरपालिका–प्रधान, इंजीनियर, संपादक, व्यापारी तथा कलाकार इत्यादि शामिल हैं। ये व्यक्ति छात्रों को समुदाय में अपनी भूमिका तथा अपने द्वारा समुदाय की विभिन्न दिशाओं में की गई सेवाओं के बारे में बताते हैं। इसी प्रकार दूसरे नगरों, राज्यों तथा देशों से उस स्थान पर आने वाले प्रसिद्ध व्यक्तियों को अपने शहर, राज्य अथवा देश के लोगों के जीवन तथा व्यवसायों के विषयों में संक्षिप्त परिचय देने के लिए आमंत्रित करना चाहिए।

(ग) सामाजिक सेवा गतिविधियां (Social Service Activities)

स्कूलों में स्कूल के समय के पश्चात् व्यस्कों के लाभ के लिए कक्षाएं प्रारम्भ करनी चाहिए। ज्ञान–अभियान भी प्रारम्भ किया जा सकता है। बुलेटिन बोर्ड स्थापित किए जा सकते हैं जिनके द्वारा स्थानीय समुदाय के बारे में विशेष रूप से गह, प्रान्त और देश के बारे में दैनिक समाचार तथा लाभदायक सूचना सामान्य रूप से दी जाएं। स्कूल के पुस्तकालय का भी व्यस्कों द्वारा उपयोग किया जा सकता है। व्यस्क समुदाय की शिक्षा तथा मनोरंजन के उद्देश्य से साज–सम्मान, कमरे, आंगन, खेल के मैदान, स्कूल के बड़े कमरे, स्कूल के अखाड़े तथा दश्य–श्रव्य साध नों को भी स्वतंत्रतापूर्वक दिया जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त समुदाय की सेवा के लिए प्रथम दर्जे की डाक का प्रबंध भी स्कूल में दिया जा सकता है।

(घ) त्यौहारों का मनाना (Celebrating Festivals)

महत्वपूर्ण त्यौहार जैसे दिवाली, दशहरा, वैसाखी तथा लोहड़ी, राष्ट्रीय दिवस जैसे स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, अन्तर्राष्ट्रीय दिवस जैसे यू०एन०ओ० दिवस, मानव अधिकार दिवस तथा महान पुरूषों के जन्मदिवस इत्यादि का संयोजन स्कूल के आंगन में किया जाना चाहिए। उस स्थान के निवासियों को भी इन समारोहों अथवा त्यौहारों में भाग लेने के लिए सादर आमंत्रित किया जाना चाहिए। समुदाय के लाभार्थ प्रदर्शनियों का आयोजन भी किया जाना चाहिए। समुदाय के लिए रैडक्रास सप्ताह भी मनाए जा सकते हैं। पुरस्कार वितरण, अभिभावक दिवस, वार्षिक खेल, नाटक का प्रदर्शन, कवि सम्मेलन अथवा गोष्ठी इत्यादि के अवसरों पर आबादी के निवासियों को अवश्य ही निमंत्रित किया जाना चाहिए।

(ड़) राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर वार्ताओं का आयोजन (Organizing Talks on National and International Problems)

ऐसी वार्ताएँ इस स्थान के निवासियों के लाभ के लिए कभी भी आयोजित की जा सकती हैं।

अतः स्कूल को घर से संबंधित करना, अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करना, समुदाय के विभिन्न वर्गों के नेताओं से संपर्क स्थापित करना, स्कूल की गतिविधियों का क्षेत्र बढ़ाना, स्कूल में प्राथमिक सहायता केन्द्र बनाना, प्रदर्शिनियों तथा त्यौहारों एवं राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, रैडक्रास दिवसों का आयोजन करना, छात्रों को समुदाय तथा इसकी समस्याओं के निकट संपर्क में लाकर, समुदाय के विशेषज्ञों को स्कूल में निमंत्रित करना और समुदाय के स्त्रोतों का सर्वोतम उपयोग शिक्षा को महत्वपूर्ण तथा जीवन केन्द्रित बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण पग हैं। ये सभी पग अथवा उपाय चलते रहें तो अच्छे तो हैं किन्तु पर्याप्त नहीं। इस दिशा में सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान समुदाय के कल्याण के लिए कुछ समस्याओं का चुनाव करना चाहिए और छात्रों तथा समुदाय के सदस्यों के सम्मिलित प्रयासों द्वारा समुदाय के जीवन में सुधार करने के लिए कुछ क्रियात्मक प्रयत्न करना चाहिए। योजना नालियों के विषय में भी हो सकती है अथवा सफाई, वाटर सप्लाई तथा सम्पर्क सड़कों के निर्माण की भी। इसकी पूर्णता से स्कूल के छात्रों तथा समुदाय पर समान रूप से यह प्रभाव होगा कि अपनी सेवा करने का सर्वोत्तम उपाय समाज सेवा ही है। उन्हें यह आभास होगा कि समुदाय तभी अच्छा हो सकता है जब इसके बच्चे तथा युवक इसे ऐसा बनाएं। इन पुनरूत्थान से स्कूल वास्तविक अर्थो में समुदाय स्कूल, समुदाय का स्कूल, समुदाय द्वारा संगठित स्कूल और समुदाय के लिए संगठित स्कूल बन जाएगा।

4.10.4 सामाजिक अध्ययन में समुदाय स्त्रोतों के उपयोग के लाभ (Advantages of using community sources in Social Studies)

सामाजिक अध्ययन की शिक्षा में उन साधनों का प्रयोग करने के लाभ निम्न हैं :–

1. स्व-शिक्षा की ओर (Towards Self Education)

समुदाय का अध्ययन स्व–शिक्षा की प्राप्ति के लिए अत्युत्तम क्षेत्र है। यह अन्वेषण ज्ञात से अज्ञात और नजदीक से दूर की ओर चलता है। अतः यह विशेषतः युवक छात्रों के लिए उपयुक्त संबंध स्थापित करने की प्राकतिक प्रक्रिया में सहायक है।

2. नई रूचियों अथवा हितों के लिए अवसर (Opportunities for New Interests)

समुदाय की जांच और इसकी समस्याओं का अध्ययन नई रूचियों की वद्धि के लिए विभिन्न अवसर उपलब्ध कराता है। ये रूचियां प्राकतिक तथा निर्माणात्मक होती हैं जो बाहर से ठूंसी नहीं जाती बल्कि भीतर से विकसित होती हैं।

3. व्यवसाय के चुनाव के लिए अवसर (Opportunities for selection of occupation)

समुदाय का अध्ययन स्कूल के बच्चों के व्यवसाय के चुनाव के लिए विस्तत क्षेत्र प्रदान करता है। वह समुदाय में लोगों के समूहों को समुदाय की भलाई के लिए विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में व्यस्त देखते हैं। यह निरीक्षण छात्रों के दिल में उनके व्यस्क होने पर उद्योग, यातायात, संचार, व्यापार, कारोबार और कषि की खोज की रूचि उत्पन्न कर देता है। कुछ लड़कियां होम–नर्सिंग, भोजन की तैयारी तथा किरण अध्ययन अथवा धर्म में सुझाव अनुभव कर सकती हैं। अतः व्यस्क जीवन के लिए व्यवसाय का चुनाव सीधा प्राईमरी अथवा सैकेंडरी स्कूल अवस्था से किया जा सकता है।

4. अवकाश का सही उपयोग (Proper Use of Leisure time)

एक बार स्कूल से बाहर समुदाय के जीवन में रूचि लेने पर छात्र इसके विशेष भाग के अध्ययन में कुछ समय व्यतीत करना पसंद करेगा। वह इस रूचि को स्कूल छोड़ने के बाद भी जारी रख सकता है। इस प्रकार वह अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करना सीख जाएगा।

अपनी प्रगति जांचिए-2

(i) सामुदायिक स्त्रोतों के प्रयोग पर एक लेख लिखों।

4.12 सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला का निर्माण (Designing of Social Studies Laboratory)

सामाजिक अध्ययन समाज के विषय में जानकारी देता है। ऐसा माना जाता था कि इस विषय को पढ़ाने के लिये अध्यापक को पथक कक्ष की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि समाज के विषय में यह जानकारी इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र तथा अर्थशास्त्र आदि विषयों से पथक पथक रूप से प्राप्त की जा सकती है और इसके लिये प्रयोगशाला की आवश्यकता न होकर विषय कक्ष में ही पढ़ाया जा सकता है। केवल विज्ञान के विषयों को पढ़ाने के लिये पथक प्रयोगशाला की आवश्यकता महसूस की जाती थी। आज यह महसूस किया जाता है कि सामाजिक अध्ययन के विद्यार्थी नये तथ्यों और धारणाओं की खेज करते हैं उन्हें मानचित्र, रेखाचित्र, ग्लोब, मॉडल की समय समय पर जरूरत होती है इसलिये सामाजिक अध्ययन कक्ष आवश्यक है वैज्ले के अनुसार, ''जिस कक्ष में सामाजिक अध्ययन के लिए आवश्यक लिखित, दश्य तथा श्रव्य सामग्री रखी होती है वह सामाजिक अध्ययन की प्रयोगशाला कहलाती है।

एम० पी० मुफात ने कहा है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कक्षा कक्ष विद्यार्थियों के लिये अधिगम प्रयोगशाला है जिसमें विभिन्न गतिविधियों में भाग लेकर वह अधिक ज्ञानार्जन कर सकता है। सामाजिक अध्ययन कक्ष में एक सम्मेलन या विचार–विमर्श कक्ष की व्यवस्था का होना आवश्यक है।

सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला की आवश्यकता (Need of Social Studies Laboratory)

1. वैज्ञानिक दष्टिकोण (Scientific Attitude)

सामाजिक अध्ययन के लिये प्रयोगशाला का होना आवश्यक है क्योंकि प्रयोगों के कारण इसका विषय मानव की वैज्ञानिक प्रवति पर आधारित है और इसका शिक्षण भी अन्य वैज्ञानिक विषयों की भॉति किया जाता है।

2. व्यावहारिक ज्ञान (Practical Knowledge)

सामाजिक अध्ययन का विषय सैदान्तिक न होकर व्यावहारिक होता है। यहॉ विद्यार्थी अपने अनुभवों द्वारा

ही ज्ञान प्राप्त करता है। विभिन्न प्रकरणों को समझने के लिये विभिन्न प्रकार की सहायक–सामग्री की आवश्यकता होती है जैसे चार्ट, फिल्म, चित्र, नक्शे आदि जिनकी उपलब्धि प्रयोगशाला या कक्ष से ही सम्भव है।

3. वास्तविक ज्ञान (Real Knowledge)

सामाजिक अध्ययन विभिन्न विषयों इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र, अर्थ शास्त्र, दर्शन आदि का समन्वित रूप है। समय समय पर विद्यार्थियों को देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, प्राकतिक, भौगोलिक स्थिति तथा देश की वनस्पति, खनिज सम्पति, मानसून, वनस्पति आदि की जानकारी देने के लिये पाठ्य पुस्तकें ही काफी नहीं है परन्तु चित्र, मानचित्र, रेखाचित्र, ग्लोब, बिजली तथा सिंचाई के साधनों के चित्र, कल कारखानों के चित्र जैसी सहायक सामग्री को प्रयोगशाला में रखकर हम समय समय पर विद्यार्थियों को वास्तविक ज्ञान देने में सहायता कर सकते हैं।

4. करके सीखने का सिद्धान्त (Principle of Learning by doing)

सामाजिक अध्ययन का विषय 'करके सीखने के सिद्धान्त' पर आधारित है। प्रयोगशाला में प्रयोग करके ही विद्यार्थी इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं।

5. दत्तकार्य में उपयोगी (Useful in Assignment)

समय समय पर विद्यार्थियों को दत्तकार्य करने के लिए दिया जाता है जिसके लिये उन्हें विभिन्न प्रकार की पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती है। विषय–विशेष पुस्तकें प्रयोगशाला से उपलब्ध करके विद्यार्थी सरलता से अपना काम कर सकते हैं।

6. आत्म निर्भरता में सहायक (Helpful in self-dependence)

सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला द्वारा विद्यार्थियों में कला–कौशल को भी विकसित किया जाता है। यहॉ विद्यार्थी विभिन्न प्रकार की चीजें बनाकर छोटे छोटे कला कौशल का ज्ञान प्राप्त करते हैं जो कि उनके भावी जीवन में आत्म–निर्भरता के विचार को विकसित करने में सहायक होता है।

7. आत्म अनुशासन (Self discipline)

प्रयोगशाला में विद्यार्थी अपनी रूचि, क्षमता तथा इच्छा के आधार पर अपनी सूझ–बूझ का प्रयोग करके स्वयं काम करके सीखते हैं, जिससे उनमें काम करने की आदत पड़ती है और अनुशासन की भावना विकसित होती है।

8. अर्न्तनिहित शक्तियों का विकास (Development of Innate Powers)

विद्यार्थियों में सजनात्मक तथा कलात्मक शक्ति होती है वह तर्कशक्ति, विचार विश्लेषण शक्ति तथा चिन्तन मनन शक्ति का विकास स्वयं प्रयोगशाला में काम करते हुए विकसित कर सकते हैं। इससे उन्हें जीवन से सम्बन्धित वास्तविक, रोचक व स्थाई ज्ञान प्राप्त होता है।

9. सहजीवन के गुणों का विकास (Development of Group Dynamics)

प्रयोगशाला में बच्चे सीमित उपकरणों के द्वारा मिल जुल कर काम करना सीखते हैं। समय पड़ने पर एक दूसरे की मदद करते हैं। योजना को पूरा करने के लिये समूह में काम करते हैं जिससे उनमें पररस्परिक मिलकर कार्य करने की आदत पड़ती है जो भावी जीवन में आवश्यक है।

10. रचनात्मक अभिव्यक्ति में सहायक (Helpful in Creative Expression)

इस प्रयोगशाला में विद्यार्थियों को चित्र, मानचित्र, मॉडल, रेखाचित्र, ग्राफ आदि को बनाने का अवसर प्राप्त होता है जिनके द्वारा विद्यार्थियों में रचनात्मक अभिव्यक्ति विकसित होती है।

प्रभावशाली शिक्षण के लिये बच्चों में विभिन्न सामाजिक गुणों, कुश्लताओं, रूचियों, अनुशासन और आत्म–निर्भरता विकसित करने में तथा स्थायी व्यावहारिक और वास्तविक ज्ञान देने के लिये सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला का विशेष महत्व तथा आवश्यकता है।

सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला के आवश्यक उपकरण (Necessary Equipments for Social Studies Lab)

सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला में निम्नलिखित उपकरणों की व्यवस्था होनी चाहिए :–

1. चॉक बोर्ड (Chalk Board)

सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला में चॉक बोर्ड का होना आवश्यक है। चॉक बोर्ड जरूरी नहीं कि काले रंग का हो। यह किसी भी रंग का हो सकता है। आजकल हरे रंग के बोर्ड को अधिक महत्व दिया जाता है। यह अध्यापक का सहायक होता है। इसकी सहायता से अध्यापक चित्र, रेखाचित्र, चार्ट आदि बनाकर शब्द तथा वाक्य लिखकर समय समय पर बच्चों को स्पष्ट ज्ञान देता है। बोर्ड ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ से सभी विद्यार्थी देख सकें।

2. बुलेटिन बोर्ड (Bulletin Board)

सामाजिक अध्ययन एक व्यावहारिक विषय है, जिसकी विषय वस्तु समाज में होने वाली घटनाओं से सम्बन्धित है। बुलेटिन बोर्ड पर रेखाचित्र, देश–विदेश के समाचार, फ्लैश कार्ड आदि प्रदर्शित किए जा सकते हैं। जब विद्यार्थी उन चीजों को देखेंगे, उन्हें बनायेंगे, वे स्वयं बुलेटिन बोर्ड पर लगायेंगे तो उन्हें व्यावहारिक जीवन की बहुत सी बातें समझ में आ जायेंगी और वह उसमें रूचि लेंगे।

3. फर्नीचर (Furniture)

सामाजिक अध्ययन कक्ष में विद्यार्थियों के बैठने के लिए ऐसा फर्नीचर होना चाहिए जिससे यदि प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अलग–अलग स्टूल और मेज हों तो अच्छा रहेगा। अध्यापक के बैठने के लिये कुर्सी और मेज की व्यवस्था अपेक्षाकत ऊँचे स्थान पर होनी चाहिए ताकि सभी विद्यार्थी मेज पर दिखाई जा रही वस्तुओं को अच्छी प्रकार से देख सकें। इसके अतिरिक्त पुस्तकें, रजिस्टर आदि रखने के लिए अलमारियाँ होनी चाहिएं। हो सके तो एक शब्दकोष, एटलस, मेज का कैलेंडर, एक पैन, एक पैड स्याही आदि की व्यवस्था अध्यापक के लिये होनी चाहिए।

4. पुस्तकें (Books)

पुस्तकें शिक्षा ग्रहण करने के लिए आवश्यक हैं। सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला के लिये पुस्तकें आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हैं। यह पढ़ाने के लिये एक महत्वपूर्ण उपकरण है। विषय की आधारभूत सामग्री पुस्तकों से ही उपलब्ध होती है। सम्बन्धित पुस्तकें उचित समय पर उपलब्ध होने पर विद्यार्थियों में पाठ्य पुस्तकों के अतिरिकत अन्य पुस्तकों को पढ़ने की आदत पड़ जाती है। इससे उसकी मौलिकता का विकास होता है। पुस्तकों को रखने के लिये प्रयोगशाला कक्ष में खुली या बन्द अलमारी होनी चाहिए जिससे कक्ष का सौन्दर्य भी बढ़ जाता है और उपयोगिता भी।

5. दश्य-श्रव्य सामग्री (Audio Visual Aids)

प्रयोगशाला या कक्ष में उन सभी दश्य–श्रव्य साधनों की उचित व्यवस्था होनी चाहिए जिनका प्रयोग विभिन्न शिक्षण विधियों में किया जाता है जैसे नक्शे, ग्लोब, चित्र, ग्राफ, फिल्म पट्टियां, रेडियो, टेपरिकार्डर, प्रौजेक्टर आदि। इन सभी उपकरणों के प्रयोग के लिये उचित सुविधाओं तथा स्थान की भी व्यवस्था होनी चाहिए। कक्षा में काले रंग के पर्दे की भी आवश्यकता होती है। अतएव यह सुविधा भी कक्षा में अवश्य होनी चाहिए ताकि अध्यापक सुविधानुसार प्रयोगशाला की व्यवस्था कर सके।

6. अन्य उपकरण (Other Materials)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में कई प्रकार की क्रियाओं को आयोजित किया जाता है क्योंकि अधिगम की प्रयोगशाला विद्यार्थियों की क्रियाओं का आकर्षक स्थल है इसलिये इसमें कार्य करने के लिये सभी उपकरणों की व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें रंग, ब्रुश, कागज, पेन्सिल, पैन, पैन होल्डर, रबर, सुई धागा, कैंची, ड्राईंग बोर्ड, कील, पिन, गोंद इत्यादि की व्यवस्था होनी चाहिए। क्रियात्मक कार्य करते समय इन सभी वस्तुओं की अध्यापक को आवश्यकता होती है। अतएव चित्र, मॉडल, चार्ट, ग्राफ बनाने या सर्वेक्षण करने के लिये इनसे सम्बन्धित सभी उपकरणों की व्यवस्था सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला में होनी चाहिए।

7. फाइल तथा कैबिनट (Files and cabinet)

विभिन्न प्रकार की कैबिनट व फाइल होनी आवश्यक है। फाइल पर लेबल लगाकर उचित स्थान पर रखना चाहिए। बच्चों को काम खत्म होने पर सारा सामान कैबिनट में रख देना चाहिए। समय समय पर सामग्री का मूल्यांकन करते रहना चाहिए और अनावश्यक वस्तुऐं हटा देनी चाहिएं।

8. सफाई तथा व्यवस्था (Cleanliness)

प्रयोगशाला अन्धकारपूर्ण नहीं होनी चाहिए। इसमें प्रकाश की उचित व्यवस्था पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए। भारत की विशेष प्रकार की जलवायु होने के कारण प्रकाश और वायु–संचार का महत्व और भी बढ़ जाता है। पश्चिमी देशों में तो ठंड इतनी पड़ती है कि प्रकाश का बनावटी प्रबन्ध करना पड़ता है। परन्तु भारत में जलवायु ऐसी नहीं है कि कक्ष को बनाने के लिये हमेशा बन्द रखना पड़े। इसलिये इसमें उपयुक्त स्थानों पर खिड़कियां और रोशनदान होने चाहिएं। उपयुक्त विद्युत प्रकाश व्यवस्था भी होनी चाहिए। विद्युत प्रकाश को छत से सम्बन्धित करा देने से प्रकाश को आवश्यकतानुसार कम या अधिक किया जा सकता है। कक्ष के दरवाजे और खिड़कियों पर रंगीन पर्दे लगा दिए जाने चाहिएं ताकि जब आवश्यकता हो तो कमरे में पर्याप्त मात्रा में अन्धेरा किया जा सके। ऐसा शिक्षण उपकरणों जैसे फिल्मों और सलाइड़ों के प्रयोग करने के लिए आवश्यक हो गया है। इसी प्रकार कमरे में वायु संचार का भी उचित प्रबन्ध हो। पश्चिमी देशों के पास तो इतना धन है कि वे एयरकन्डिशनर लगवा सकते हैं, परन्तु भारत जैसे देश में तो खिड़की और रोशनदान से ही पर्याप्त वायु–संचार सम्भव है।

इसके अतिरिक्त कक्षा की साफ सफाई की उचित व्यवस्था होनी आवश्यक है। साफ कमरे में काम करने की इच्छा बच्चों की बढ़ जाती है।

कक्षा कक्ष की व्यवस्था (Classroom Arrangement)

सामाजिक अध्ययन की प्रयोगशाला के संगठन में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :–

1. प्रयोगशाला के लिए केवल सामग्री को इकट्ठा करना ही आवश्यक नहीं है इसे उपयुक्त स्थानों पर रखना अधिक आवश्यक है। व्यवस्था इस प्रकार की हो कि कोई भी एक सामग्री किसी दूसरे के प्रदर्शन में रूकावट न बने।
2. प्रयोगशाला की सफाई समय–समय पर होनी चाहिए।
3. प्रयोगशाला का प्रयोग अन्य विषयों के कार्य के लिये नहीं होना चाहिए।
4. प्रयोगशाला की व्यवस्था का उत्तरदायित्व विद्यार्थियों पर छोड़ देना चाहिए। प्रयोगशाला के भिन्न–भिन्न पहलुओं की देखभाल करने के लिये विद्यार्थियों की समितियां बना देनी चाहिएं।

अपनी प्रगति जांचिए-3

(i) सामाजिक अध्ययन प्रयोगशाला की क्या आवश्यकता हैं?

4.13 सारांश (Summary)

स्वयं अनुदेशन सामग्री सामाजिक अध्ययन में उद्दीपक का काम करती है। विभिन्न शिक्षण विधियों के प्रयोग के साथ ऐसी अनुदेशन सामग्री का प्रयोग शिक्षण को मनोरंजक बना देती है।

स्लाइड एवं ट्रांसपेरेसिज प्रक्षेपित दश्य – सामग्री के अन्तर्गत आती है यह प्रोजेक्टर द्वारा पर्दे पर बड़ा करके दिखाया जा सकता है। लिखित तथा चित्रात्मक दश्य सामग्री का प्रदर्शन करने के लिए बुलेटिन बोर्ड काम में लाया जाने वाला एक सुलभ साधन है जो विद्यालय की सूचना केन्द्र होता है।

मानचित्र पथ्वी के धरातल से सम्बन्धित भागों को प्रदर्शित करने के काम आता है। यह किसी भी स्थान की उचित भौगोलिक स्थिति व दूरी मापने में सहायता करता है।

चार्ट एक दश्य सामग्री है जो किसी विषयवस्तु के साथ तुलना या किसी दूसरी क्रिया की व्याख्या करने में सहायता देता है।

ग्राफ से तात्पर्य उस चित्रात्मक और ग्राफिक दश्य साधन से है जिसके द्वारा संख्यात्मक व सांख्यिकी आंकड़ों को प्रदर्शित किया जाता है।

मॉडल चित्र का स्थूल रूप है जिसके द्वारा वस्तु का प्रतिरूप लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, व मोटाई को ध्यान मे रखकर बनाया जाता है। विश्व के प्रमुख शिक्षा शास्त्री W.Schuller के अनुसार "माडल की परिभाषाा पहचान योग्य वास्तविक वस्तुओं के त्रिआयामी प्रतिरूप के रूप में दी जा सकती है।"

दूरदर्शन के विस्तार के कारण वीडियो का प्रचलन भी शिक्षा एवं मंनोरजंन के क्षेत्र में बंट रहा है। इसी प्रकार कम्प्यूटर एक मशीन संचालित माध्यम है। यह स्व अनुदेशात्मक प्रणाली पर आधारित है। आज समूचा विश्व कम्प्यूटर जाल या नेटवर्क से जुड़ गया हैं।

सामाजिक विज्ञान के तथ्यों एवं घटनाओं के अध्ययन से अतीत को नहीं समझा जा सकता। इसे समझने के लिए नाटकीय विधि एक मात्र साधन है। इस विधि का ज्ञानेन्द्रियों पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

सामुदायिक स्त्रोतों का शिक्षा में काफी योगदान होता है। शिक्षा शास्त्री इस बात पर अधिक बल देते हैं कि शिक्षा समाज केन्द्रित होनी चाहिये। शिक्षा समुदाय की, समुदाय के द्वारा तथा समुदाय के लिये होनी चाहिये। समुदाय को स्कूल की प्रयोगााला बना देना चाहिये। इन स्त्रोतों का प्रयोंग करने में प्रशासन, अध्यापक, स्थानीय नागरिक, अभिभावक तथा छात्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सामाजिक अध्ययन की प्रयोगशाला का अध्ययन के लिये काफी योगदान हैं क्योंकि सामाजिक अध्ययन मानव की वैज्ञानिक प्रवति पर आधारित है। प्रयोगशाला के चार्ट, फिल्म, चित्र, नक्शे आदि के प्रयोंग से छात्र वास्तविकता का अनुभव करते है तथा उसको वास्तविक ज्ञान की जानकारी होती हैं।

4.14 आदर्श उत्तर

(i) स्लाईडस के निम्न लाभ हैं :–

1. इनका प्रयोग करना आसान हैं।
2. इन पर बार–बार खर्च नहीं करना पड़ता।
3. इनकों कमरों में आसानी से लाया ले जाया जा सकता हैं।
4. पाठ के सारांश को सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता है।

(ii) इस प्रश्न के उत्तर के लिये छात्र 4.3.2 अध्याय को देखें।

(iii) इस प्रश्न के उत्तर के लिये छात्र 4.4.2 अध्याय को देखें।

(iv) चार्ट निम्न प्रकार के होते हैं :–

1. समय चार्ट
2. तालिका चार्ट
3. धारा चार्ट
4. चित्र सम्बन्धी चार्ट
5. संगठन चार्ट
6. वक्षाकति चार्ट
7. ग्राफिकल चार्ट

8. ग्राफ चार्ट

9. चित्रयुक्त चार्ट

(v) ग्राफ निम्न प्रकार के होते हैं :–

1. रेखा ग्राफ
2. कार ग्राफ
3. वताकार ग्राफ
4. वताकार ग्राफ
5. चित्रात्मक ग्राफ

(vi) इस प्रश्न के उत्तर के लिये छात्र 4.8.1.3 अध्याय देखें।

(vii) कत्रिम प्रस्थितियों में भावों या विचारों का मंचन करना अभिनय कहलाता हैं।

2. (i) छात्र इस के लिये 4.10 भाग को देखें।

3. (i) छात्र इस उत्तर के लिये 4.11.1 भाग को देखें।

4.15 मुख्य शब्द

अनुदेशात्मक सामग्री – शिक्षण प्रक्रिया को सरल, सजीव तथा प्रभावी बनाने के लिए प्रयोग की जाने वाली सामग्री।

मॉडल – चीज का स्थूल रुप, जिसमें वस्तु का प्रतिरुप लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई व मोटाई को ध्यान में रख कर बनाया जाता है।

4.16 सन्दर्भ पुस्तकें

सामाजिक अध्ययन शिक्षण–शैदा एवं शैदा, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण, भाटिया व नारंग, टण्डन पब्लिकेशन, लुधियाना।

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण, त्यागी गुरसरनदास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

शिक्षण अधिगम की तकनीकी, पाण्डेय के०पी०,पंजाब किताब घर, जालन्धर।

यूनिट-IV

भाग-I शिक्षण विधियां

कथात्मक विधि (Story-Telling Method)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि :–

– कथात्मक विधि का अर्थ एवं स्वरूप बता सकें।
– कहानियों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकें।
– कथात्मक विधि की सावधानियों की सूची बना सकें।
– कथात्मक विधि के लाभ बता सकें।
– कथात्मक विधि की सीमाएं बता सकें।

संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 कथात्मक विधि–अर्थ एवं स्वरूप
1.3 कहानियों के प्रकार
1.4 कथात्मक विधि में सावधानियां
1.5 कथात्मक विधि के लाभ
1.6 कथात्मक विधि की सीमाएं
1.7 सारांश
1.8 आदर्श उत्तर
1.9 मुख्य शब्द
1.10 सन्दर्भ पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

पद्धति जिसे विधि भी कहा जाता है एक ऐसा ढंग है जिसे अध्यापक कक्षा में पाठ को सरल तथा प्रभावशाली बनाने के लिये प्रयोग करता है। पाठ्यक्रम कितना भी उपयोगी क्यों न हो, विद्यालय का गठन तथा उसमें प्राप्त सुविधाएँ कितनी भी सहयोगपूर्ण क्यों न हो, परन्तु यदि शिक्षक के पढ़ाने का ढंग प्रभावशाली नहीं हो तो शिक्षा के वांछित उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकते। शिक्षण को सार्थक, उद्देश्यपूर्ण उपयोगी, रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिये अध्यापक को किसी न किसी शिक्षण–विधि का प्रयोग अवश्य करना पड़ता हैं। अच्छी शिक्षण पद्ति निकष्ट पाठ्यक्रम से भी कुछ न कुछ प्राप्त करने में सफल हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि कार्य की सफलता या असफलता शिक्षण विधियों पर निर्भर करती है। शिक्षण विधियों का उल्लेख करते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कहा हैं, "शिक्षण विधि भले ही वह अच्छी हो या बुरी अध्यापक तथा विद्यार्थियों में परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया द्वारा अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करती है। मनोवैज्ञानिक दष्टिकोण से ठोस शिक्षण–विधियाँ विद्यार्थियों के जीवन को उभ्यता की ओर ले जाती है और बुरी शिक्षण–विधियाँ उनके जीवन को अवनति की ओर ले जाती हैं।''

सामाजिक अध्ययन शिक्षण की विभिन्न विधियां हैं जैसे समस्या विधि, योजना विधि, कहानी कथन विधि, भाषण विधि, पाठ्यपुस्तक विधि, इकाई विधि आदि। ये विधियाँ बच्चों में योग्यता तथा अभिवत्तियों के विकास के लिये उपयोगी होती हैं।

1.2 कथात्मक विधि-अर्थ एवं स्वरूप ('Story Telling Method'-Meaning and Nature)

इतिहास मानव–विकास की कहानी है जिसमें आदिकाल से घटनाएं जुड़ती चली आ रही है। इस कहानी को कहानी विधि से पढ़ाना स्वाभाविक भी है और प्रभावशाली भी क्योंकि यह वर्णनात्मक विधि है। छोटे बच्चों के लिए तो यह विधि अत्यन्त उपयोगी है। प्लेटो ने भी छोटे बच्चों के लिए इसे उत्तम बतलाया था। बच्चे स्वभाव से ही कहानी प्रेमी होते हैं कहानी उनकी जिज्ञासा और उनके कौतूहल को शान्त करती है कहानी उसे कल्पना के पंखो पर उड़ा कर ले जाती है; कहानी उन्हें आनन्द प्रदान करती है। बड़े–बड़े विद्वानों ने कहानी पद्धति के द्वारा ही बच्चों को पढ़ाने का सुझाव दिया हैं। रास ने प्रारम्भिक स्तर पर इतिहास शिक्षण के लिए इसी विधि को अपनाने का सुझाव दिया है। एफ०आर० वर्डस के विचारानुसार, " 13 वर्ष की अवस्था तक के बच्चों को इतिहास पढ़ाने का मुख्य साधन कहानी होनी चाहिए।"

कहानी कहना भी कला हैं। छोटे बच्चे स्वाभाविक रुप में इन्हें याद भी कर लेते हैं। बालक नायक पूजक होता है। वीर गाथायें कुतहल जाग्रत करती हैं, संवेगों को गतिशील बना देती हैं और बालक को सक्रिय कर देती है। साधारणतः छोटे बालक पढ़ने में रुचि नही लेते हैं और पढ़ने के नाम से जी चुराते हैं। अतः पाठ्य वस्तु को कहानी के रुप में प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे शिक्षण में स्वाभाविक प्रवति को प्रोत्साहन मिलता है। रामायण, महाभारत की कहानियें को विशेष महत्त्व दिया जाए। आग की खोज की कहानी, मनुष्य की खोज कहानियाँ सुनाई जाए।

छोटे बच्चों में कहानियों को सार्थक बनाने तथा स्पष्टीकरण के लिये, चित्रों मानचित्रों और फोटो की सहायता ली जा सकती है। गौतम बुद्ध, अशोक, कौरव व पाण्डवों की कहानियों को चित्रों की सहायता से अधिक बोद्यगम्य बनाया जा सकता हैं।

1.3 कहानियों के प्रकार (Types of Stories)

कहानियाँ तीन प्रकार की होती हैं :–

1. वास्तविक कहानी
2. काल्पनिक कहानी
3. पौराणिक कथाएं

1. वास्तविक कहानी (Real Story)

संसार में घटित होने वाली घटनाओं के तथ्यों के आधार पर लिखी हुई कहानियों को वास्तविक कहा जाता हैं। इनसे हम बच्चों के चरित्र का निर्माण कर सकते है। सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में ऐसी कहानियों को ही प्रधानता देनी चाहिए।

2. काल्पनिक कहानी (Virtual Story)

इनका कोई भी वास्तविक आधार नहीं होता है। यह मन गढन्त देवताओं, देवियों, भूतों, प्रेतों, जादूगरनी या परियों से सम्बन्धित होती है। सामाजिक अध्ययन शिक्षण में इन कहानियों के द्वारा भाईचारा, प्रेम, साहस, भातभावना का विकास किया जा सकता है। इन कहानियों को इस प्रकार सुनाया जाए जिससे बच्चे अच्छी शिक्षा ग्रहण करे, उनके मन में भय की ग्रन्थियां न बने और उनका विकास कुंठित न हो।

3. पौराणिक कथाएं

पौराणिक कथायें ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित होती है जो आंशिक रुप में सत्य होती है परन्तु उसकी शुद्धता के लिये विवरण उपलब्ध नहीं हो पाता है। प्राथमिक तथा जूनियर स्तर पर इस प्रकार की कहानियों को सुनाया जा सकता हैं क्योंकि उनके लिये अधिक शुद्ध विवरण की आवश्यकता नहीं होती है। महाभारत तथा रामायण की कथाओं का प्रयोग किया जा सकता है।

1.4 कथात्मक विधि में सावधानियाँ (Precautions in Story Telling Method)

इनमें कोई सन्देह नही कि कथात्मक विधि या कहानी कथन प्रणाली आकर्षक, उपयोगी, प्रभावशाली और रोचक विधि है। परन्तु इसके गुण तभी प्राप्त हो सकते है जब इसकों अपनाते समय अग्रलिखित बातों की और ध्यान दिया जाए :–

1. कहानी का चुनाव करते समय विद्यार्थियों के मानसिक स्तर, उनकी अवस्था, योग्यता तथा रुचियों की ओर ध्यान देना चाहिए।
2. कहानी सुनाने से पहले अध्यापक को स्वयं उस कहानी में रुचि लेनी चाहिए। उसे कहानी के सभी पक्षों का पहले से पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। कहानी के जिस अंश या पक्ष पर अधिक बल देना हैं, इसका भी निर्णय कर लेना चाहिए।
3. कहानी पुस्तक से नहीं पढ़ाई जानी चाहिए बल्कि अध्यापक द्वारा सुनाई जानी चाहिए।
4. कहानी सत्य घटनाओं या तथ्यों से सम्बन्धित होनी चाहिए।
5. कहानी कहने की शैली सरल, सरस एवं रोचक होनी चाहिए।
6. कहानी में सजीवता लाने के लिए उसमें अभिनय कला का भी समावेश करना चाहिए।
7. कहानी कथन में विद्यार्थियों की रुचि को बनाए रखना भी जरुरी है। इसके लिए विद्यार्थियों से कभी प्रश्न भी पूछते रहना चाहिए। इससे यह पता लगता रहेगा कि विद्यार्थी रुचि ले रहे हैं या नही।
8. कहानी सुनाते समय आवश्यकतानुसार दश्य–श्रव्य साधनों का भी प्रयोग किया जा सकता है।
9. कहानी कहते समय अध्यापक को विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल भाषा का प्रयोग करना चाहिए। भाषा, सरल, सरस, सुन्दर तथा सुबोध होनी चाहिए।
10. कहानी के अंत में आवश्यक बिन्दुओं को श्यामपट्ट पर लिख देना भी शिक्षण की दष्टि से उपयोगी होगा। इन बिन्दुओं से विद्यार्थी स्वयं कहानी का विकास कर सकते हैं।

1.5 कहानी विधि के लाभ (Merits of Story Telling Method)

कहानी विधि के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :–

1. यह रुचि को विकसित करती हैं (It develops Interest)

अपनी रोचकता के कारण कथात्मक या कहानी कथन विधि विद्यार्थियों में इतिहास के प्रति रुचि विकसित करती है इसलिये सामाजिक अध्ययन शिक्षण में उपयोगी सिद्ध होती है। इस प्रकार मनोरंजक एवं आनन्ददायक क्रिया के रुप में शिक्षा उसके लिए बोझ नहीं लगती।

2. यह विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति को जागत करती है (It initiates student's imagination)

कहानियों के प्रति बच्चों की स्वाभाविक रुचि होती है। यह रुचि जितनी अधिक विकसित होती है उतना ही अधिक उसमें कल्पना शक्ति का विकास होता है।

3. यह विद्यार्थियों की जिज्ञासा को सन्तुष्ट करती हैं (It satisfies students curosity)

जिज्ञासा तथा उत्सुकता बच्चों में स्वाभाविक रुप से होती है। परिणामस्वरुप उनमें अपने आप अनुशासन की प्रवति जागत होती है।

4. यह विद्यार्थियों को रचनात्मक क्रियाओं को करने की प्रेरणा प्रदान करती हैं (It provides motivation for creative activities to students)

कहानी विद्यार्थी को रचनात्मक कार्य की प्रेरणा प्रदान करती है। प्राचीन काल में गुरु अपने शिष्य को कहानी सुना कर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता था। विद्यार्थी उन वस्तुओं को बनाने की रुचि दिखाते थे। कहानी में वर्णित वस्तुएं बनाना बच्चों की जिज्ञासा को शान्त करने में मदद देता है। इसके अतिरिक्त कहानी सुनने के पश्चात् उनको कहानी लिखने की भी प्रेरणा मिलती है और यदि इस प्रेरणाा को क्रियात्मक रुप देने के अवसर प्रदान किए जाए तो उनमें रचनात्मक लेखन कला का विकास हो सकता है।

5. यह विद्यार्थियों में सद्गुणों को विकसित करती हैं (It develops Good Habits in Students)

कहानी के माध्यम से विद्यार्थियों में सद्गुणों का विकास किया जा सकता है। अनुकरण के द्वारा वे उन गुणों को आत्मसात करने का प्रयास करते हैं। महापुरुषों की कहानियाँ सुनकर बच्चों में दया, सत्य–प्रियता, वीरता, सद्भावना, अहिंसा, दानशीलता आदि कई गुण उत्पन्न हो सकते है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए जाविस ने कहा, "कहानी से बालकों के आचरण में आदर्शो का निमार्ण होता है और इस प्रकार इससे उनके चरित्र और व्यक्तित्व के विकास में सहायता मिलती हैं।"

1.6 कथात्मक विधि की सीमाएं (Limitations of Story Telling Method)

1. सामाजिक अध्ययन की समस्त पाठ्य वस्तु को कहानी विधि के द्वारा प्रस्तुत नही किया जा सकता है।
2. उच्च कक्षाओं में इस विधि का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।
3. इस विधि से बालक पाठ्य वस्तु को कहानी के रुप में प्रस्तुत कर सकता है परन्तु ऐतिहासिक, सांस्कतिक तथा आर्थिक पक्षों का विश्लेषण तथा विभेदीकरण नही कर सकता है।
4. बालकों की स्मरण–शक्ति पर विशेष बल दिया जाता है अन्य पक्षों की अवहेलना होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) कथात्मक विधि के गुण एवं सीमाओं का विवेचन कीजिए।

(ii) कथाएं कितने प्रकार की होती हैं?

1.7 सारांश (Summary)

शिक्षण को सार्थक, उद्देश्यपूर्ण, उपयोगी, रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिये अध्यापक को किसी न किसी शिक्षण विधि का सहारा लेना पड़ता है। बचपन से बच्चों को कहानियाँ सुनने का शौक होता है। कहानी उसे कल्पना रूपी पंखों पर उड़ाकर ले जाती है। कहानी उन्हें आनन्द प्रदान करती है। बच्चे प्रायः काम से जी चुराते है अतः कहानी के द्वारा उनकी पढ़ने के लिये प्रेरित किया जा सकता है।

1.8 आदर्श उत्तर

1. (i) उत्तर 1.5 एवं 1.6 में देखें।

(ii) कथाएं मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं –

वास्तविक कथाएं, काल्पनिक कथाएं एवं पौराणिक कथाएं

1.9 मुख्य शब्द

कथात्मक – इसका अभिप्रायः कथन से है अर्थात कहानी कहना।

पद्धति– इसे विधि भी कहा जाता है। यह एक ऐसा ढंग है जिसे अध्यापक कक्षा में पाठ को सरल तथा प्रभावशाली बनाने के लिए प्रयोग करता है।

1.10 संदर्भ पुस्तकें

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – शैदा एवं शैदा, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण, भाटिया व नारंग, टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना (2001)

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण, त्यागी, गुरसरनदास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1993)

शिक्षण अधिगम की तकनीकी, पाण्डेय के०पी०, पंजाब किताब घर, जालन्धर।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण, रेनु गुप्ता, जगदम्बा बुक सैन्टर, दिल्ली। (2003)

यूनिट-IV

भाग-I शिक्षण विधियां

प्रोजेक्ट विधि (Project Method)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगें कि :–

– प्रोजेक्ट विधि का अर्थ एवं स्वरूप बता सके।

– प्रोजेक्ट विधि के बुनियादी सिद्धान्तों का वर्णन कर सकें।

– प्रोजेक्ट विधि के क्रियात्मक सोपानों की व्याख्या कर सकें।

– प्रोजेक्ट विधि के लाभ एवं सीमाएं बता सकें।

– सामाजिक अध्ययन में कुछ प्रोजेक्ट कार्यों की सूची बना सकें।

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रोजेक्ट विधि – अर्थ एवं स्वरूप

2.3 प्रोजेक्ट विधि के बुनियादी सिद्धान्त

2.4 प्रोजेक्ट विधि के क्रियात्मक सोपान

2.5 प्रोजेक्ट विधि के लाभ

2.6 प्रोजेटक्ट विधि की सीमाएं

2.7 सामाजिक अध्ययन में कुछ प्रोजेक्ट

2.8 सारांश

2.9 आदर्श उत्तर

2.10 मुख्य शब्द

2.11 सन्दर्भ पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण से पहले अध्यापक के सामने कुछ अनुदेशात्मक उद्देश्य होते हैं जिन्हें शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त करना होता है, इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग विद्यार्थियों के आयु स्तर, सामाजिक स्तर तथा बुद्धि से प्रभावित होता है। इस अध्याय में हम प्रोजेक्ट विधि के बारे में अध्ययन करेंगे। इस विधि के जन्मदाता डब्ल्यू०एस० क्लिपैट्रिक है। डीवी के प्रयोजनवाद के आधार पर इस विधि का निर्माण किया गया । इसका निर्माण विद्यालय के परम्परागत तथा शुष्क वातावरण को दूर करने के लिए किया गया है। इसमें छात्रों की क्रियाशीलता को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

2.2 प्रोजेक्ट विधि - अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Nature)

जिस विधि से छात्र किसी भी शैक्षणिक समस्या का हल स्वाभाविक परिस्थिति में खोजने का प्रयास करता है, तर्क द्वारा जानकारी प्राप्त करता है और उस ज्ञान के आधार पर अपने व्यवहार में परिवर्तन कर समस्याका समाधान करता है, उसे प्रोजेक्ट पद्धति कहते है। इस विधि में समस्या का हल खोजने के लिये प्रयोजन पूर्ण कार्य किये जाते है। यह विधि जॉन डीवी की विचारधारा पर आधारित है। इसको विकसित करने का श्रेय किलपैट्रिक को जाता है।'' उसके अनुसार ''प्रयोजन एक उद्देश्यपूर्ण कार्य है जिसे सामाजिक वातावरण में पूर्ण तन्मयता के साथ सम्पन्न किया जाता है। बेलार्ड ने प्रोजेक्ट को यथार्थ जीवन का एक अंश बताया जिसे स्कूल में आयात कर लिया जाता है।" स्टीवेन्सन ने कहा ''योजना एक समस्यामूलक कार्य हैं, जिसे प्राकतिक स्थिति में पूरा किया जाता है।'' जी. बॉसिग के अनुसार, "प्रोजैक्ट समस्यामूलक क्रिया की ऐसी इकाई है जो विद्यार्थियों द्वारा स्वाभाविक रीति से आयोजित एवं पूर्ण की जाती है।'' इसमें अनुभव की पूर्ति के लिए भौतिक साधनों तथा वस्तुओं का प्रयोग आवश्यक हैं।

इसमें जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का वास्तविक रुप में चयन करते है। समस्याओं के लिये योजना तैयार की जाती है। छात्र अपनी समस्या के हल ढूँढ़ने के लिये जो क्रियाएं करता है, उन क्रियाओं को भली प्रकार पूरा करने के लिये अनेक सूचनायें एकत्रित करता है। छात्र को विषय ज्ञान–अनुभवों एवं क्रियाओं द्वारा प्राप्त होता है। अध्यापक का स्थान गौण होता है। उसका कार्य निर्देशन देना होता है।

2.3 प्रोजेक्ट विधि के बुनियादी सिद्धान्त (Basic Principles of Project Method)

यह विधि निम्नलिखित बुनियादी सिद्धान्तों पर आधारित हैं :–

1. उद्देश्य का सिद्धान्त (Principle of Purpose)

किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पहले उस कार्य का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। उद्देश्यपूर्ण क्रिया ही व्यक्ति की समूची शक्तियों की उस क्रिया को सम्पन्न करने की और अग्रसर करती है। प्रोजैक्ट विधि में योजना का उद्देश्य स्पष्ट होता है। विद्यार्थियों को मालूम होता है कि वे अमुक कार्य क्यों कर रहे हैं? इसलिये वे पूरी लग्न के साथ काम करते हैं।

2. क्रियाशीलता का सिद्धान्त (Principle of Activity)

क्रिया करना बालक के स्वभाव में होता है और उसके इस स्वभाव का तकाजा है कि उसे काम करने के अवसर प्रदान किए जाएं। यह विधि विद्यार्थी को सदैव क्रियाशील बनाए रखती है। इस विधि में उन्हें स्वतन्त्र रुप से कार्य करने के कई अवसर मिलते हैं।

3. स्वतन्त्र वातावरण का सिद्धान्त (Principle of free environment)

स्वतन्त्र वातावरण में व्यक्ति अधिक काम करता है जिससे उसकी मानसिक एवं बौद्धिक प्रवतियों का विकास होता हैं जिसे वह अभिव्यक्त कर सकते है। स्वतन्त्र अभिव्यक्ति उनके व्यक्तित्व के समुचित विकास में सहायक सिद्ध होती है।

4. उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility)

ज्ञान उपयोगी और व्यावहारिक होना चाहिए तभी उसका महत्व होता है। पुस्तकों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान तब तक व्यावहारिक नहीं बन सकता जब तक उसे प्रयोग न किया जाए। परन्तु क्रिया और अपने अनुभवों से प्राप्त ज्ञान की व्यावहारिकता एवं उपयोगिता ज्ञान प्राप्ति के समय ही सिद्ध हो जाती है। योजना विधि में विद्यार्थी क्रिया और अपने अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसलिए उनका ज्ञान उन विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी होता है जिन का ज्ञान केवल पुस्तकों पर आधारित होता है।

5. अनुभवशीलता का सिद्धान्त (Principle of Experience)

मनुष्य सदैव क्रियाशील रहता है वह क्रिया द्वारा अनुभव भी प्राप्त करता है और अनुभव अन्य क्रियाओं को

करने की प्रेरणा प्रदान करता है। क्रिया से प्राप्त अनुभव बच्चे को शिक्षा प्रदान करते है। बच्चा अपने अनुभवों से जल्दी सीखता है और जिसे वह एक बार सीख लेता है उसे भूलता नही। इस प्रकार यह विधि बच्चों को अनुभव प्रदान करने में मदद करती है। वह दूसरों के साथ मिलकर काम करता है उसमें सहयोग, सहनशीलता जैसे सामाजिक गुणों का विकास होता है।

6. वास्तविकता का सिद्धान्त (Principle of Reality)

योजना पद्धति जीवन की वास्तविकता को महत्वपूर्ण स्थान देती है। यदि शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को जीवन के लिये तैयार करना है तो स्कूल में वास्तविक जीवन की परिस्थितियों को उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक हैं। योजना पद्धति इसी प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न करके विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करती हैं।

इस प्रकार यह विधि इन सिद्धान्तों के आधार पर मनोवैज्ञानिक विधि कहलाती है जिसमें रुचियों के अनुसार सीखना, काम द्वारा सीखना, व्यक्तिगत अनुभूतियों द्वारा सीखना आदि हैं।

2.4 प्रोजेक्ट पद्धति के क्रियात्मक सोपान (Functional Steps of Project Method)

इस पद्धति में किसी उद्देश्यपूर्ण क्रिया द्वारा विद्यार्थियों को उपयोगी शिक्षा प्रदान की जाती है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब योजना का चुनाव एवं क्रियान्वन उचित रुप से किया जाये। इसके लिये एक निश्चित प्रक्रिया अपनानी होती है जिसके मुख्य सोपान निम्नलिखित हैं :–

1. स्थिति प्रदान करना (Providing a situation)

उचित योजना के चुनाव के लिये सब से पहले विद्यार्थियों को ऐसी स्थिति प्रदान की जानी चाहिए जिससे उनके मन में किसी उद्देश्यपूर्ण क्रिया के लिये उत्साह जाग उठे। उनकी रुचि उत्पन्न हो जाए। अध्यापक वार्तालाप द्वारा, वाद विवाद, चित्रों के माध्यम से यात्रा, भ्रमण या विभिन्न साधनों द्वारा स्थिति उत्पन्न कर सकता है जो विद्यार्थियों में कोई उपयोगी कार्य करने की लगन पैदा कर दे। यहाँ इस बात का ध्यान रखना होगा कि अध्यापक की ओर से कुछ थोपा न जाये। विद्यार्थियों को अपने विचार प्रकट करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

2. प्रोजेक्ट का चयन (Selection of Project)

स्थिति प्रदान करने के पश्चात प्रोजेक्ट का चुनाव करना पड़ता है। योजना विद्यार्थियों द्वारा ही चुनी जाती हैं उनकी जिज्ञासा जाग जाती है जो योजना के चुनाव का आधार बनती है। विद्यार्थी उसयोजना का चुनाव करें जो उनके लिये आवश्यक तथा उपयोगी हो। इसके लिये अध्यापक को उन्हें अनुभव प्रदान कराने चाहिए। यह अनुभव उनमें योजना के प्रति अपनत्व की भावना विकसित करेगा। डा० किल्पैट्रिक के शब्दों में, "स्कूल के अधिकांश कार्य मे अध्यापक का कितना भाग है तथा विद्यार्थियों का कितना भाग है? यह इस बात पर निर्भर करता है कि लक्ष्य निर्धारित किस के द्वारा किया जाता है।"

3. प्रोजेक्ट बनाना (Project Designing)

योजना का चुनाव हो जाने के पश्चात उसके क्रियान्वन के लिये उचित योजना बनाने की आवश्यकता होती हे। योजना भी विद्यार्थियों द्वारा बनाई जानी चाहिए। स्वतन्त्रतापूर्वक परस्पर विचार–विमर्श से योजना बनाई जानी चाहिए। इसमें भी अध्यापक को एक पथ प्रदर्शक की भूमिका निभानी चाहिए। उसे प्रत्येक योजना के क्रियान्वन में आने वाली कइिनाइयों से विद्यार्थियों को अवगत करा देना चाहिए ताकि वे पहले सोच समझ लें कि वे उन कठिनाईयों को दूर करने के लिये क्या करेगें? इसके अतिरिक्त अध्यापक को यह देखना चाहिए कि योजना बनाने में केवल दो चार विद्यार्थियों का आधिपत्य न हो। उसे सभी विद्यार्थियों को अपने विचार प्रकट करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए। योजना को क्रियान्वन करने से पहले नोट बुक पर लिख लेना चाहिए।

4. योजना का क्रियान्वन (Implementation of Project)

योजना बन जाने के पश्चात उस का क्रियान्वन आरम्भ होता है। एक योजना में कई क्रियाये सम्मिलित होती

है। वे क्रियायें विद्यार्थियों में उनकी रुचियों तथा योग्यताओं के अनुसार बंट जानी चाहिए। यद्यपि यह कार्य भी मुख्यतः विद्यार्थियों द्वारा करना होता है। परन्तु इसमें भी अध्यापक का सर्तक मार्गदर्शन आवश्यक है। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सभी विद्यार्थी इसमें कुछ न कुछ काम अवश्य करे जो उनकी रुचि के अनुकूल हो। इसके अतिरिक्त अध्यापक को आवश्यक सूचनायें भी प्रदान करनी चाहिए। विद्यार्थियों को वांछित सूचना प्राप्त करने के स्त्रोत भी बताने चाहिए। यह सभी कार्य अध्यापक को मार्गदर्शक और सहायक के रुप में करने चाहिएं। मुख्य भूमिका स्वयं विद्यार्थियों को निभानी होती है।

5. मूल्यांकन (Evaluation)

योजना पूर्ति के पश्चात उसका मूल्यांकन अवश्य किया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों को यह जानकारी प्राप्त होगी कि उन्होंने योजना के अनुसार कार्य किया या नही, कार्य के क्रियान्वन में कौन सी त्रुटियाँ रह गई और कौन सी अच्छी बातें सामने आई; क्या उपलब्धियां हुई; वांछित लक्ष्य की प्राप्ति हुई या नहीं आदि। मूल्यांकन भी स्वयं विद्यार्थियों द्वारा किया जाना चाहिए अर्थात् उन्हें स्वयं अपने कार्य की आलोचना करनी चाहिए। इसमें अध्यापक मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है।

6. रिकार्ड करना (Recording)

योजना से प्राप्त उपलब्धियों को स्थाई बनाने, योजना में आने वाली कठिनाइयों के प्रति भविष्य में सावधान करने तथा योजना के कार्यान्वन के दौरान गलतियों से भविष्य में सचेत रहने के लिये योजना के चयन से लेकर उसके मूल्यांकन तक पूर्ण विवरण लिख लेना चाहिए। इसके लिये प्रत्येक विद्यार्थी को एक योजना विवरण लिखने के लिये कहा जाना चाहिए।

2.5 प्रोजेक्ट पद्धति के लाभ (Merits of Project Method)

1. यह मनोवैज्ञानिक विधि हैं (Psychological Method)

यह विधि शिक्षा मनोविज्ञान के नियमों पर आधारित है। शिक्षा मनोविज्ञान इस बात पर बल देता है कि सिखाने से पहले विद्यार्थियों को सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए, उनकी शिक्षा क्रियात्मक ढंग से होनी चाहिये। योजना विधि में ये सभी बात ठीक बैठती हैं इस विधि में छात्र अपनी रुचि के अनुकूल कार्य करता हैं इससे वे खुशी–खुशी कार्य करते है तथा अपना अधिगम प्राप्त करता है। इसमें छात्र स्थिति का अनुभव करके योजना तैयार करता हैं तथा फिर वह इस तरह सीखने को प्रेरित होता हैं।

2. समय और शक्ति की बचत (Saves time and energy)

इसमें बालक अपनी रुचि के अनुसार कार्य करते हैं जिससे कार्य बड़ी तेजी से होता है। थोड़े समय में और थोड़ी शक्ति के व्यय से ही अच्छा प्रतिफल मिलता हैं।

3. विद्यार्थियों को स्वतन्त्रता (Freedom to Students)

योजना पद्धति में अध्यापक छात्रों को प्रदत स्थिति से लेकर प्रोजेक्ट को चुनने, योजना बनाने क्रियान्वित करने, मूल्यांकन करने तथा आलेखन में उनका मार्गदर्शन करता है तथा इसमें कार्य छात्र अपनी रुचियों के अनुसार करते हैं। इसमें उनको कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है। अपने आप सीखने के कारण उनके व्यक्तित्व का विकास होता है।

4. श्रम की महानता (Supremacy of labour)

इस विधि में बच्चें सारा कार्य अपने हाथों से करते हैं। इस कार्य में हस्तकलाएं भी सम्मिलित हैं। इससे वे श्रम की महानता को जानते हैं और हाथ से काम तथा उस काम को करने वालों को वे हेय नही समझते।

5. पुस्तकीय शिक्षण के दोषों से मुक्त हैं (Devoid of demerits of text book teaching)

पुस्तकीय विधि पाठ्य पुस्तक पर केन्द्रित होती है जिन्हें वे अपनी रुचियों के अनुकूल प्राप्त नहीं कर पाते। पुस्तकीय विधि नीरस, शुष्क तथा निष्क्रिय विधि है। जबकि योजना विधि रोचक व मनोरंजक क्रियाओं से युक्त होती है। इस प्रकार योजना पद्धति पुस्तकाय विधि के दोषों से मुक्त होती हैं।

6. सामाजिक समायोजन का प्रशिक्षण (Training of social Adjustment)

योजना विधि में छात्र को कार्य करते हुए विभिन्न प्रकार की स्थितियों से गुजरना पड़ता है। इसमें कार्य करते हुए दूसरों के भी सहयोग की भी जरुरत पड़ती हैं। जिससे उसका सामाजिक समायोजन अपने आप होता है जो कि सामाजिक अध्ययन शिक्षण का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है।

7. जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में शिक्षा (Education in Real-life Situations)

योजना विधि का सम्बन्ध बालकों की प्रतिदिन की आवश्यकताओ तथा अनुभवों से होता है। इसमें केवल वही अंश पढ़ाए जाते हैं जो वास्तविक जीवन से संबन्धित होते हैं। यह ज्ञान क्रियात्मक, उपयोगी तथा उचित स्वभावों का निर्माण तथा अभिरुचियों का निर्माता होता हैं।

8. छात्र शिक्षक का आपसी सम्बन्ध (Teacher-taught relationship)

यह विधि छात्र तथा शिक्षक को साथ–साथ कार्य करने का मौका देती है जिससे शिक्षक छात्र को और छात्र शिक्षक को समझते हैं। छात्र स्वतन्त्र वातावरण में कार्य करते हैं और शिक्षक उन्हें कार्य करते हुए उनका निरीक्षण करता हैं तथा जिससे वह उनकी कई योग्यताओं, अभिरुचियों, रुचियों, प्रवतियों तथा क्षमताओं को परखता है तथा उसी के अनुरुप वह उनका मार्गदर्शन करके उन्हें उचित मार्ग की ओर अग्रसर करता हैं।

9. स्व मूल्यांकन में सहायक (Helpful in Self Evaluation)

यह विधि छात्र को स्व मूल्यांकन करवाने में सहायक होती है। इससे जहां उन्हें अपनी उपलब्धियों से सन्तुष्टि होती हैं वही अपनी त्रुटियों को जानकर उनमें सुधार करता है। स्व मूल्यांकन की यह प्रवति उसके भावी जीवन के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

10. ज्ञान प्राप्ति का स्त्रोत (Source of knowledge acquisition)

योजना विधि में कई बार कार्य करते करते आकस्मिक ज्ञान भी प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार का ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा अधिक स्थाई होता हैं।

2.6 प्रोजेक्ट पद्धति की सीमाएं (Limitations of Project Method)

1. विषय सामग्री की अव्यवस्था (Unorganization of content)

इस विधि में सीखने के दौरान क्रम बिगड़ जाता है। सामाजिक अध्ययन में विषय सामग्री को व्यवस्थित करना अति आवश्यक है। कई महत्वपूर्ण बाते न होने से विद्यार्थियों को कई प्रकार की उलझनों का सामना करना पड़ता है। जिससे उसके मन में सामाजिक अध्ययन के प्रति अरुचि पैदा हो सकती हैं।

2. अधिक व्यय (More Expensive)

इस विधि में योजना को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए बहुत सी सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। कई बार ऐसा भी होता है कि कई वस्तुओं का इंतजाम बाहर से करना पड़ता है। सामान्यतः विद्यालयों के पास इतना धन नही होता कि वे इनका खर्च वहन कर सकें जिसके कारण योजना पद्धति में कमी आ जाती है और इसके परिणाम संतोषजनक नहीं आ पाते।

3. अध्यापक पर ज्यादा निर्भर (More dependence on teacher)

योजना विधि में अध्यापक को अधिक सक्रिय रहना पड़ता है जिससे अध्यापक पर अधिक बोझ पड़ता है।

इसका कारण यह है कि शिक्षक को इस विधि में एक ही अध्यापक को सभी विषयों का ज्ञान देना पड़ता है और हरेक शिक्षक हर विषय में कुशल नही होते हैं जिससे नतीजा बराबर नहीं आता है इसके अतिरिक्त उपयोगी पाठ्यपुस्तकों का भी प्रायः अभाव ही रहता है।

4. पाठ्यक्रम को समय पर पूरा करने में कठिनाई (Difficulty in completing Curriculum in time)

इस विधि में शिक्षण करते समय निश्चित समय चक्र का अनुसरण नही किया जाता। इसमें शिक्षा क्रम भी निश्चित होता। सभी विषयों का पाठ्यक्रम समय पर समाप्त नहीं किया जा सकता है जिससे विद्यालय का काम अस्त व्यस्त हो जाता है।

5. असंतुलित शिक्षण नहीं (Imbalanced Teaching)

इसमें कुशल बच्चे अपना आधिपत्य जमा लेते है वे ही सारा कार्य अपने आप करना चाहते हैं जिससे औसत बच्चा इस विधि में पिछड़ जाता है तथा सभी विद्यार्थियों का एक जैसा शिक्षण नही हो पाता। सभी विद्यार्थियों से यह आशा भी नहीं की जा सकती कि वे सभी क्रियाओं को समान गम्भीरता और उत्साह से कर सकें।

इस विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस विधि का प्रयोग यदि अन्य विधियों की पूरक विधि के रुप में किया जाए तो इसके द्वारा प्रत्यक्ष शिक्षण, क्रमबद्ध अध्ययन, प्रदर्शन और अनुभव तथा चर्चा द्वारा पाठ्यक्रम सामग्री के विकास के अवसर मिलते है। इस विधि को इस विषय की शिक्षा की एक मात्र विधि नहीं माना जा सकता है।

2.7 सामाजिक अध्ययन में कुछ प्रोजेक्ट (Few Projects in Social Studies)

(क) विद्यालय के विभिन्न चुनाव

(ख) ग्राम अथवा नगर की सफाई

(ग) सहकारी बैंक का संचालन

(घ) यातायात के साधनों का उपयोग

(ड़) सामुदायिक सर्वेक्षण

(च) विभिन्न औद्योगिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक यात्राएं

(छ) उत्सव मनाना

(ज) गोष्ठियां अथवा परिषद् की संगठन प्रणाली

(झ) विद्यालय कषि

अपनी प्रगति जांचिए

(i) प्रोजेक्ट विधि के आधारभूत सिद्धान्तों की सूची बनाइये।

(ii) प्रोजेक्ट विधि के चरणों के नाम बताइये।

(iii) प्रोजेक्ट विधि के लाभों का वर्णन कीजिए।

2.8 सारांश (Summary)

प्रोजेक्ट विधि में एक प्रोजेक्ट का चयन करके सामाजिक परिस्थितियों में पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रोजेक्ट का निश्चित उद्देश्य होता है और उद्देश्य की पूर्ति के लिए छात्र विभिन्न क्रियाएं करते हैं। इन क्रियाओं को उचित रूप से पूरा करने के लिए छात्र सूचनाएं एकत्रित करता है। सूचनाओं को एकत्र करके ओर निश्चित क्रियाएं करके छात्र विषय से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करता है। प्रोजेक्ट विधि के मुख्य सिद्धान्त – उद्देश्यपूर्णता, क्रियाशीलता, उपयोगिता, अनुभवशीलता,

वास्तविकता एवं स्वतन्त्र वातावरण पर आधारित होते हैं। प्रोजेक्ट विधि के लिए एक निश्चित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। सबसे पहले छात्र को ऐसी स्थिति प्रदान की जाती है कि वह समस्या या प्रोजेक्ट को महसूस कर सके। इसके पश्चात प्रोजेक्ट का चयन करके उसका क्रियान्वन किया जाता है। विभिन्न छात्रों को उनकी योग्यता के अनुरूप कार्य दिये जाते हैं। प्रोजेक्ट के अन्तिम चरण में उसका मूल्यांकन किया जाता है।

2.9 आदर्श उत्तर

(i) उद्देश्य का सिद्धान्त, क्रियाशीलता का सिद्धान्त, स्वतन्त्र वातावरण का सिद्धान्त, उपयोगिता का सिद्धान्त, अनुभवशीलता का सिद्धान्त, वास्तविकता का सिद्धान्त आदि।

(ii) प्रोजेक्ट विधि के मुख्य चरण निम्नलिखित हैं –

- स्थिति प्रदान करना
- प्रोजेक्ट का चयन
- प्रोजेक्ट बनाना
- प्रोजेक्ट का क्रियान्वन
- मूल्यांकन
- रिकार्ड बनाना

(iii) उत्तर भाग 2.5 में देखें।

2.10 मुख्य शब्द

प्रोजेक्ट : एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया जिसे सामाजिक परिस्थितियों में सम्पन्न किया जाता है।

2.11 संदर्भ पुस्तकें

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – शैदा एवं शैदा, आर्म बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण, भाटिया व नारंग, टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना (2001)

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण, त्यागी, गुरसरनदास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1993)

शिक्षण अधिगम की तकनीकी, पाण्डेय के०पी०, पंजाब किताब घर, जालन्धर।

यूनिट-IV

भाग-I शिक्षण विधियां

समस्या विधि (Problem Method)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य ही जांएगे कि

- समस्या विधि का अर्थ बता सकें।
- समस्या विधि के सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन कर सकें।
- समस्या चयन सम्बन्धी सावधानियों की सूची बना सकें।
- समस्या विधि के विभिन्न चरणों की व्याख्या कर सकें।
- समस्या विधि के गुण एवं सीमाएं बता सकें।

संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 समस्या विधि–अर्थ
3.3 समस्या विधि के सामान्य सिद्धान्त
3.4 समस्या चयन सबंधी सावधानियाँ
3.5 समस्या विधि के चरण
3.6 समस्या विधि के गुण
3.7 समस्या विधि की सीमाएं
3.8 सारांश
3.9 आदर्श उत्तर
3.10 मुख्य शब्द
3.11 सन्दर्भ पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव जीवन समस्याओं से भरा हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में समस्याएं सम्भावित रुप से आती है। ये समस्याएं कई प्रकार की होती है जैसे आर्थिक समस्याएं, ऐतिहासिक समस्याएं, छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े प्राणी को सदैव भोजन, आवास और सुरक्षा की भौतिक सन्तुष्टि आदि की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का लक्ष्य उपयोगी नागरिक बनाना है। इसलिए विद्यालय का जीवन बाहरी सामाजिक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये स्कूलों मे वास्तविक जीवन जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी चाहिए ताकि विद्यार्थी अपनी योग्यता व क्षमता के अनुसार इन परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता प्राप्त कर सके। इस प्रकार प्राप्त किया गया ज्ञान उद्देश्यपूर्ण तथा उपयोगी बन जाता है। इस अध्याय में हम समस्या विधि का अध्ययन करेंगें।

3.2 समस्या विधि (Problem Method)

समस्या विधि वह शिक्षण विधि हैं जिस में शिक्षण कार्य किसी समस्या के गिर्द आयोजित एवं गठित किया जाये। यह औपचारिक शिक्षण विधियों से भिन्न हैं क्योंकि इसमें विद्यार्थी का सक्रिय सहयोग तथा संलग्नता रहती है। यह ऐसी क्रिया विधि है जो विद्यार्थियों के सम्मुख कोई चुनौती पूर्ण समस्या रखकर उन्हें समाधान के खोज की तकनीक में प्रशिक्षण प्रदान करती है। इस विधि में विद्यार्थियों के सम्मुख वास्तविक जीवन की भी परिस्थितियां उत्पन्न कर दी जाती है और क्रियात्मक चिन्तन द्वारा उनमें उन परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना करने की योग्यता विकसित की जाती है। सी०वी० गुड ने समस्या विधि को परिभाषित करते हुए कहा हैं "समस्या विधि ऐसी शिक्षण विधि है जिस में चुनौती पूर्ण स्थितियों द्वारा सीखने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह ऐसी विशिष्ट प्रक्रिया है जिसमें एक प्रमुख समस्या का समाधान तत्सम्बन्धी छोटी–छोटी समस्याओं के मिश्रित समाधान से किया जाता है।"

समस्या समाधान मात्र तथ्यों का संग्रह या तर्क के अभाव में विचारों, धारणाओं आदि की स्वीकति नही हैं वरन् यह विमर्शी चिन्तन की प्रक्रिया है। डीवी के अनुसार विमर्शी चिन्तन के दो पहलू हैं। प्रथम वह संदेहात्मक स्थिति, हिचकिचाहट एवं मानसिक कठिनाई जिसमें चिन्तन का जन्म होता है। द्वितीय वह खोज कार्य जो सन्देह एवं हिचकिचाहट को दूर करेगा तथा मानसिक कठिनाई का समाधान प्रदान करेगा। जार्ज जान्सन ने लिखा हैं – "मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने का सर्वोत्तम ढंग वह हैं जिसके द्वारा मस्तिष्क के समक्ष वास्तविक समस्या उत्पन्न की जाती है और उसको उनका समाधान निकालने के लिए अवसर तथा स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है।" समस्या विधि योजना विधि से पर्याप्त समानता रखती है। इन दोनों विधियों में अन्तर इस बात का है कि योजना विधि में प्रायोगिक कार्य को महत्व प्रदान किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि योजना विधि में शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाएं होती हैं जबकि समस्या विधि में केवल मानसिक हल ही प्रदान किया जाता है। इस प्रकार समस्या विधि में किसी समस्या या प्रश्न को एक विशेष स्थिति में वैज्ञानिक ढंग से हल किया जाता है। अतः इस विधि का सबसे प्रमुख गुण मानसिक क्रिया एवं विमर्शी चिन्तन है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण में इस विधि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

3.3 समस्या समाधान विधि के सामान्य सिद्धान्त (General Principles of Problem Solving Method)

सामान्य विधि तभी उपयोगी हो सकती हैं जब समस्या समाधान के सामान्य सिद्धान्तों को समाने रखकर इस का प्रयोग किया जाए। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :–

1. मानसिक और बौद्धिक स्तर के अनुकूल समस्या (Problem according to mental and Intellected level)

समस्या विद्यार्थियों के मानसिक एवं बौद्धिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए। इससे विद्यार्थियों को समस्या के प्रति स्वतः रुचि उत्पन्न होगी और वे उसके समाधान के लिए प्रेरित होंगे।

2. सुरुचिपूर्ण और महत्वपूर्ण समस्या (Interesting and Importance Problem)

समस्या सुरुचिपूर्ण एवं महत्वपूर्ण होनी चाहिए ताकि विद्यार्थी उसे तन मन से अपना सकें। समस्या के प्रति यह अपनापन उन्हें समस्या की गहराई तक पहुंचाने और उसका समाधान ढूंढने के लिए प्रेरित करता है।

3. आसान शब्दावली (Easy Words)

समस्या प्रस्तुत करते समय अस्पष्ट एवं क्लिष्ट शब्दावलीं का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे समस्या के सभी विचारणीय पहलु स्पष्ट हो जाएं।

4. समस्या समाधान के लिए आवश्यक एवं उपयोगी सामग्री (Necessary and useful material for the problem)

सामग्री का चुनाव करते समय भी विद्यार्थियों की मानसिक एवं बौद्धिक क्षमताओं का ध्यान रखना चाहिए। ऐसी सामग्री चुननी चाहिए जिसका विद्यार्थी सुगमता से प्रयोग कर सके।

5. सुनिश्चित और स्पष्ट समाधान (Definite and clear solution)

समस्या का समाधान सुनिश्चित एवं स्पष्ट होना चाहिए। समाधान में किसी प्रकार के भ्रम का स्थान नहीं होना चाहिए।

6. समस्या का समाधान थोपना नहीं (Solution of the problem not forced on students)

समस्या का समाधान विद्यार्थियों पर थोंपना नहीं चाहिए। इसका अर्थ यह है कि समस्या के हल को सही मानने के लिये विद्यार्थियों को बाध्य नही करना चाहिए बल्कि उन्हें स्वयं अपने निष्कर्षो द्वारा उसी समाधान पर पहुंचने की स्वतन्त्रता देनी चाहिए। समाधान की पूरी आलोचना होनी चाहिए और उसका उचित मूल्यांकन होना चाहिए। विद्यार्थियों को मानसिक एवं बौद्धिक सन्तुष्टि के पश्चात समाधान को स्वीकार करने के लिए अनुप्रेरित करना चाहिए।

3.4 समस्या चयन संबंधी सावधानियाँ (Precautions for choosing Problem)

शिक्षण की 'समस्या विधि' किसी न किसी समस्या पर केन्द्रित होती हैं अतः यह स्वाभाविक है कि इसकी सफलता या असफलताा उस समस्या पर निर्भर करती हैं जिसे विद्यार्थियों के समाधान के लिये चुना जाता है। समस्या ऐसी होनी चाहिए जिसमें विद्यार्थियों की स्वाभाविक रुचि हो और जो उन्हें अधिकाधिक क्रियात्मक एवं उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो। कहने का तात्पर्य यह है कि 'समस्या' में अधिकाधिक शैक्षणिक उपयोगितायें भरी होनी चाहिए। समस्या का चयन करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिएः–

1. समस्या चुनौतिपूर्ण होनी चाहिए (Problem should be challenging)

समस्या ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थियों को सोचने के लिये चुनौती दे; जो उनके चिन्तन को प्रेरित करें और जिसके समाधान के लिये वे वांछित सामग्री तथा तथ्यों को एकत्रित एवं संगठित करने के लिये उत्सुक हो उठे।

2. समस्या विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुकूल होनी चाहिए (Problem should be according to the needs of students)

समस्या के प्रति विद्यार्थियों की स्वाभाविक रुचि जागत करने के लिये यह आवश्यक हैं कि वह उनकी मानसिक एवं बौद्धिक आवश्यकताओं तथा क्षमताओं के अनुकूल हों। ऐसी समस्या ही उन्हे उस के समाधान के लिये प्रेरित करती हैं।

3. समस्या का सम्बन्ध मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं से होना चाहिए (Problem should be relatd to the basic needs of men)

मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं के प्रति विद्यार्थियों को सचेत करना 'सामाजिक अध्ययन शिक्षण' का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जरुरी हैं कि 'समस्या विधि' में ऐसी समस्या का चुनाव किया जाये जो मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं के साथ सम्बन्धित हो।

4. समस्या का स्वरुप निश्चित होनी चाहिए (Nature of problem should be definite)

अस्पष्ट तथा अमूर्त समस्या विद्यार्थियों के लिये रोचक नहीं होती है। ऐसी समस्या का समाधान उनकी बौद्धिक एवं मानसिक परिधि के बाहर होता है। समस्या सुस्पष्ट, सुनिश्चित, एवं सुपरिभाषित होनी चाहिए। ऐसी समस्या के समाधान ढूंढ़ने के प्रयास में विद्यार्थियों को निश्चित लक्ष्य पर पहुंचने की अनुभूति बनी रहती हैं और वे पूरी लगन तथ रुचि के साथ समाधान तक पहुंचने का प्रयास करते रहते हैं। सुनिश्चित समस्या निरन्तर प्रयास को प्रेरित करती है।

5. समाधान भी निश्चित होना चाहिए (Problem should also be definite)

ऐसी समस्या का चुनाव करना चाहिए जिसका कोई निश्चित समाधान होना हो। उन्हें अनुभव होते रहना चाहिए कि वे किसी निश्चित निष्कर्ष की ओर बढ़ रहे है। विभिन्न कौशलों का वांछित प्रयोग करते हुए अपने सक्रिय चिन्तन द्वारा विद्यार्थी जब निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं तो अध्यापक को अपने शिक्षण की सफलता पर

और विद्यार्थियों को अपनी उपलब्धियों पर जिस आनन्द की अनुभूति होती है वह सतत प्ररेणा का स्रोत बन जाती है।

6. समस्या प्राप्त साधनों के अनुकूल होनी चाहिए (Problem should also be according to area table resources)

समस्या समाधान में विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की सामग्री की आवश्यकता होती है। यदि वांछित सामग्री प्राप्त न हो तो समस्या में उनकी रुचि शिथिल पड़ जाती है। यदि सामग्री सुविधापूर्वक प्राप्त हो तो समाधान ढूंढने में उनकी उत्सुकता कई गुना बढ़ जाती है। यह उत्सुकता सीखने सिखाने की प्रक्रिया को रोचक एवं प्ररेक बना देती है। अतः समस्या का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चुनी हुई समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिये आवश्यक सामग्री सुविधापूर्वक उपलब्ध हो।

7. समस्या रुचियों के विस्तार में सहायक होनी चाहिए (Problem should be helpful in the expansion of interects)

समस्या ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थियों के ज्ञान में वद्धि करने तथा उनकी रुचियों को विस्तत करने मे सहायक हो अर्थात् अपने आप में पूर्ण होने पर भी समस्या द्वारा नये ज्ञान तथा नई अनुभूतियों के द्वार खुलने चाहिए।

3.5 समस्या विधि के चरण (Steps of Problem Method)

समस्या विधि की सफलता एवं उपयोगिता के लिए केवल समस्या–समाधान के उपर्युक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखना ही पर्याप्त नहीं बल्कि उसे विधिवत् कार्यान्वित करना भी अत्यन्त आवश्यक है। इस विधि को अपनाते समय अध्यापक और विधार्थियों को एक निश्चित क्रम के अनुसार चलना चाहिए ताकि समस्या के प्रस्तुतिकरण तथा समाधान की प्राप्ति तक सम्पूर्ण विधि एक निश्चित प्रक्रिया के रुप में दिखाई दे। इस निश्चित क्रम में सामान्यतः निम्नलिखित चरण होते हैंः–

1. प्रस्तुतिकरण (Presentation)

इस विधि में सबसे पहले समस्या का प्रस्तुतिकरण किया जाता है। बच्चों को मानसिक व बौद्धिक रुप से तैयार कर लेना आवश्यक होता है। समस्या ऐसी शब्दावली से प्रस्तुत की जानी चाहिये जिससे एक ओर तो समस्या स्पष्ट हो जाए तथा दूसरी ओर विद्यार्थियों मे रुचि उत्पन्न हो जिससे हमारा शिक्षण कामयाब हो सके। अध्यापक को समस्या की पष्ठभूमि का उल्लेख करके उसे विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत करना चाहिए।

2. वांछित सामग्री का चयन और संकलन (Selection and Collection of relevant material)

आवश्यक निर्देशन के पश्चात् छात्रों को वांछित सामग्री के चयन में सहायता करनी चाहिए और सही दिशा में सामग्री का संकलन करना भी आना चाहिए।

3. निष्कर्ष (Drawing Conclusion)

तथ्यों के विश्लेषण करने के बाद उनका निष्कर्ष निकालना होता है। विद्यार्थियों को इस प्रकार से तैयार किया जाना चाहिये जिससे कि स्वयं निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिये जाऐं। आवश्यकता पड़ने पर शिक्षक को भी छात्रों की यथासंभव सहायता करनी चाहिये जिससे की समस्या समाधान में बच्चों को कोई अड़चन न आए।

4. मूल्यांकन (Evaluation)

निष्कर्ष निकालने के पश्चात उसका मूल्यांकन होना चाहिये और यदि संभव हो सके तो नियमों का सामान्यीकरण भी किया जाना चाहिये। नियमों के सामान्यीकरण करने से समस्या समाधान की जटिलता खत्म हो जाएगी।

5. लेखा तैयार करना (Recording)

अंत में जो कुछ भी छात्र द्वारा समस्या के प्रस्तुतीकरण से समाधान प्राप्ति तक का लेखा तैयार करना चाहिए ताकि यह उसके दूसरी समस्याओं के समाधान में काम आ सके।

3.6 समस्या विधि के गुण (Merits of Problem Method)

यह विधि मानव जीवन की आवश्यकताओं के अनुरुप होती है। इसलिए अधिकांश शिक्षा–विद् समस्या विधि को सबसे ज्यादा महत्व देते हैं। समस्या विधि मनुष्य को जीवन जीने व समझने के लिए तैयार करती हैं। समस्या विधि के गुण अग्रलिखित हैं :–

1. विद्यार्थी केन्द्रित (Student Centred)

आज सभी इस बात पर बल देते हैं कि शिक्षण विधि विद्यार्थी केन्द्रित हो और समस्या विधि इस आवश्यकता को उचित रूप से पूरा करती है। इस विधि मे विद्यार्थी ही केन्द्र बिन्दू होता हैं क्योंकि विद्यार्थियों की मानसिक और बौद्धिक क्षमताओं को ध्यान में रखकर ही इस विधि का प्रयोग किया जाता है और इस विधि में विद्यार्थी अपने अनुभव से ही सीखते हैं।

2. विद्यार्थियों की सक्रियता (It makes the students active)

इस विधि का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि इसमें छात्र सक्रिय रुप से भाग ले सकें चूंकि इसमें विद्यार्थियों को स्वयं निष्कर्ष निकालने होते हैं इसलिए वे समस्या के प्रारम्भ से आखिर तक उसमें अपना सक्रिय भाग अदा करते हैं। यह सक्रियता स्वतन्त्र रुप से उन पर छोड़ दी जाती है। उनकी सक्रियता में उनकी मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों का पूरा सहयोग रहता है। यह सक्रियता शिक्षण को सफल एवं उपयोगी बनाती हैं।

3. आलोचनात्मक निर्णय शक्ति का विकास (Development of Critical decision Power)

समस्या विधि से विद्यार्थियों को विभिन्न तथ्यों का विश्लेषण करने और अपने निष्कर्ष निकालने होते हैं। इस तरह उनमें आलोचनात्मक निर्णय शक्ति के बल पर वे आज के युग में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं तथा वर्तमान लोकतन्त्र के कार्यकलापों की आलोचना व उपयोगिता में हिस्सा ले सकते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह विधि बच्चों को लोकतंत्रात्मक जीवन की ओर अग्रसर करती हैं।

4. सजीवता (Liveliness)

इस विधि से विद्यार्थियों में जीवन की समस्यापूर्ण स्थितियों का सफलता पूर्वक सामना करने का प्रशिक्षण मिलता है। मनुष्य को जीवन भर समस्याओं से सामना करना पड़ता हैं परन्तु इन समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना वही मनुष्य कर पाता है जिसे समस्याओं के साथ जूझने तथा चिन्तन एवं क्रियाशक्ति से उसका समाधान ढूंढने का प्रशिक्षण एवं अभ्यास हो। इसलिए यह विधि सजीव स्थितियों के अनुरुप और जीवन के प्रति यथार्थवादी दष्टिकोण को विकसित करती है।

5. सहिष्णुता (Patience)

समस्या विधि में उपयोगी समाधान ढूंढने के लिए विद्यार्थियों को विधि विचारधाराओं को जानना और समझना पड़ता है। इससे उनमें सहिष्णुता का विकास होता है जो कि भावी जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होती हैं।

6. उदारपूर्ण दष्टिकोण (Wider out look)

इस विधि में विद्यार्थियों की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को जानने का अवसर मिलता हैं। समस्या के विभिन्न पहलुओं को विभिन्न दष्टिकोणों से देखने के कारण उनमें उदारता का विकास होता है तथा वे सबकों जानने व समझने का प्रयास करते हैं।

7 दायित्वता की भावना का विकास (Development of the feeling of responsibility)

इस विधि में छात्रों को स्वतन्त्र रुप से कार्य करने की अनुमति होती है। इस विधि मे उन पर कोई बात लादी नहीं जाती है। उन्हें चिन्तन, मनन, चयन, निर्णय, करने के लिए पर्याप्त स्वतन्त्रता दी जाती है। ऐसा करने से उनमें दायित्व व उपक्रम की भावना का विकास होता है।

8. अध्यापक तथा छात्रों में अच्छे सम्बन्ध (Good relationship between teacher and taught)

किसी भी तरह के शिक्षण के लिए छात्र अध्यापक के सम्बन्ध मधुर होने अति आवश्यक हैं। समस्या विधि में अध्यापक और विद्यार्थी एक दूसरे को अच्छी तरह समझने लगते हैं तथा उनका व्यवहार मधुर एवं सौहार्दपूर्ण होता है। वे एक दूसरे का साथ लेकर अपनी समस्या का निदान करते हैं।

अध्यापक का प्रत्येक विद्यार्थी के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। वह प्रत्येक विद्यार्थी का उसकी आवश्यकतानुसार उसका उचित मार्गदर्शन करता है। इस प्रकार अध्यापन कार्य एक सुरुचिपूर्ण कार्य बन जाता है।

3.7 समस्या विधि की सीमाएं (Limitations of Problem Method)

इतनी बहुत सी उपयोगिताओं के होते हुए भी समस्या विधि की अपनी कुछ सीमाएं हैं। यह विधि अपने आप में पूर्ण विधि नहीं है। इसमें भी बहुत से दोष हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मुख्य रूप से इसकी निम्नलिखित सीमाएं हैं :–

1. समय की अधिक खपत (Time Consuming)

इस विधि की प्रमुख कमी यह है कि यह बहुत ज्यादा समय ले लेती हैं। इस विधि में समस्या के प्रस्तुतीकरण से लेकर समाधान प्राप्ति तक विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता हैं जबकि अध्यापक के पास पाठ्यक्रम तथा समय सारणी की सीमाओं के कारण इतना समय नहीं होता हैं। लाभ प्राप्त करने के लिये समय की आवश्यकता पड़ती है।

2. औसत विद्यार्थियों के लिए कम सहायक (Less helpful for average students)

इस विधि की एक समस्या यह है कि यह औसत विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त नहीं हैं। इस विधि में देखने से तो यह लगता हैं कि इसमें सभी बच्चे सक्रिय रुप से भाग लें रहे हैं जबकि अकसर इसका उलटा होता है। प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थी इसमें अधिक भाग लेते हैं, ओर विद्यार्थी या तो मूक दर्शक बने रहते हैं या फिर वे प्रतिभा सम्पन्न बच्चों की हाँ में हाँ मिलाते रहते हैं। अकसर प्रतिभाशाली छात्रों के निष्कर्षों को ही अन्तिम मान लिया जाता है और उसमें औसत विद्यार्थियों के निष्कर्ष रह ही जाते हैं। अतः यह विधि सभी छात्रों के लिए समान रुप से उपयोगी नहीं हैं।

3. नीरसता का डर (Fear of boredom)

यह विधि अधिक समय लेती हैं इसलिए नीरसता आने का डर रहता है। इसमें कई कई दिन भी लग जाते हैं और विद्यार्थी समान रुप से इसमें भाग नहीं ले पाते। एक ही समस्या की तरफ बच्चों को बार बार प्रेरित करना थोड़ा कठिन कार्य हैं और अभिप्ररेणा का अभाव नीरसता का जनक होता हैं।

4. संदर्भ सामग्री की कमी (Lack of related materials)

इस विधि में छात्रों को समय–समय पर संदर्भ सामग्री की बहुत आवश्यकता रहती हैं। इसके बिना समस्या का प्रमाणिक समाधान प्राप्त नहीं किया जा सकता। बहुत से विद्यालयों में संदर्भ सामग्री का अभाव रहता है जिसके परिणामस्वरुप विद्यार्थी और अध्यापक इस विधि को कारगर ढंग से प्रयोग में नहीं ला सकते।

5. हमेशा अच्छे परिणाम नहीं (A1ways not lead to good results)

समस्या विधि में कई बार वे परिणाम नहीं निकल पाते जिनकी हम अपेक्षा करते हैं। संतोषजनक परिणामों के अभाव में विद्यार्थियों तथा शिक्षक का उत्साह कम हो जाता है और इससे इस विधि की विश्वसनीयता में कमी आ जाती है। छात्रों को ऐसा लगने लगता है कि जैसे उन्होंनें अपना समय व शक्ति व्यर्थ बेकार कर दी है।

6. प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता (Lack of trained teachers)

इस विधि में समस्या का चयन तथा उसके समाधान तक अध्यापकों को विशेष तकनीकी कुशलता का प्रयोग करना होता हैं परन्तु हमारे पास ऐसे बहुत कम शिक्षक होते हैं जो इस कार्य में पूर्ण रुप से दक्ष होते हैं। विशिष्ट प्रशिक्षण, अभ्यास से ही इस विधि का सफल प्रयोग सापेक्ष है अन्यथा हमारी समस्या का संतोषजनक समाधान नही

हो पाता हैं। एक कम प्रशिक्षित अध्यापक इसमें अटक कर रह जाता हैं और इससे स्थिति असंतुलित हो जाती है। यही कारण है कि स्कूलों में इस विधि का प्रयोग नाम मात्र का ही हो पाता हैं।

इतनी सीमाओं के होते हुए भी यह विधि बहुत कारगार है और इसकी इन सीमाओं को दूर भी किया जा सकता है एक कुशल शिक्षक इन कमियों को दूर करने में अपना सहयोग दे सकता है। अध्यापक अपने प्रशिक्षण काल से ही इन कमियों को दूर करने का प्रयास कर सकते हैं। समय समय पर इस प्रशिक्षण का नवीनीकरण किया जा सकता हैं। इस विधि के कार्यान्वयन के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिये। संदर्भ सामग्री की व्यवस्था करनी चाहियें तथा कुशलतापूर्वक इसका संचालन करना चाहिये ताकि सभी विद्यार्थी अपनी मानसिक एवं बौद्धिक योग्यताओं के साथ इसमें भाग ले सकें। इस विधि की उपर्युक्त उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इसका यथासंभव प्रयोग किया जाना चाहिये।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) समस्या विधि से क्या अभिप्राय हैं?

(ii) समस्या का चयन करते समय आप क्या सावधानियाँ रखेंगे ?

3.8 सारांश (Summary)

समस्या विधि का मुख्य उद्देश्य छात्र को दैनिक जीवन की समस्याओं के लिए तैयार करना हैं। समस्या विधि वह शिक्षण विधि है जिस में शिक्षण कार्य किसी समस्या के चारों ओर आयोजित किया जाता है और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों द्वारा सीखने के लिए प्रेरित किया जाता है। समस्या विधि में किसी समस्या या प्रश्न को एक विशेष स्थिति में वैज्ञानिक ढंग से हल किया जाता है। समस्या का चयन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। समस्या ऐसी हो जिसमें विद्यार्थियों की स्वाभाविक रूचि हो और उन्हें अधिक से अधिक क्रियात्मक एवं उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो। समस्या विधि के मुख्य चरण – प्रस्तुतिकरण, वांछित सामग्री का संकलन, समस्या समाधान के विभिन्न रूपों का परिचय एवं क्रियान्वन, निष्कर्ष, मूल्यांकन तथा रिकार्डिग आदि होते हैं। समस्या विधि विद्यार्थियों को सक्रिय बनाने, उनकी आलोचनात्मक निर्णय शक्ति का विकास करने, उन्हें उदार व सहिष्णु बनाने और अध्यापक छात्र संबंधों मे मधुरता लाने में सहायता करती है।

3.9 आदर्श उत्तर

(i) उत्तर 3.2 में देखें।

(ii) उत्तर 3.4 में देखें।

3.10 मुख्य शब्द

समस्या विधि : वह विधि जिसमें विद्यार्थियों के सम्मुख समस्या प्रस्तुत कर के उन्हें समस्या समाधान द्वारा सीखने के लिए प्रेरित किया जाता है।

3.11 संदर्भ पुस्तकें

शैदा एवं शैदा – सामाजिक अध्ययन शिक्षण, आर्म बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

भाटिया व नारंग – सामाजिक अध्ययन शिक्षण, टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना (2001)

त्यागी, गुरसरनदास – सामाजिक अध्ययन का शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1993)

पाण्डेय के०पी० – शिक्षण अधिगम की तकनीकी, पंजाब किताब घर, जालन्धर।

गुप्ता रेनु – सामाजिक अध्ययन शिक्षण, जगदम्बा बुक सैंटर, दिल्ली (2003)

यूनिट-IV

भाग-I शिक्षण विधियां

आगमन तथा निगमन विधि

(Inductive and Deductive Method)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें किः–

– आगमन विधि का अर्थ एवं स्वरूप बता सकें।
– आगमन विधि के गुण एवं दोषों की व्याख्या कर सकें।
– निगमन विधि का अर्थ एवं स्वरूप बता सकें।
– निगमन विधि के गुण एवं दोषों की व्याख्या कर सकें।
– आगमन एवं निगमन विधियों में अन्तर कर सकें।

संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 आगमन विधि – अर्थ एवं स्वरूप
4.3 आगमन विधि के गुण
4.4 आगमन विधि के दोष
4.5 निगमन विधि – अर्थ एवं स्वरूप
4.6 निगमन विधि के गुण
4.7 निगमन विधि के दोष
4.8 आगमन तथा निगमन विधियों में अन्तर
4.9 सारांश
4.10 आदर्श उत्तर
4.11 मुख्य शब्द
4.12 सन्दर्भ पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्यायों में आप कुछ शिक्षण विधियों – कथात्मक विधि, समस्या विधि एवं प्रोजेक्ट विधि का अध्ययन कर चुके हैं। ये सभी विधियां विशिष्ट परिस्थितियों में उपयोगी होती हैं और इनका कक्षा में प्रयोग करने के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता पड़ती है। ये विधियां पाठ्यक्रम के सभी उपविषयों के लिए प्रयोग नहीं की जा सकती। विषय से संबन्धित संप्रत्ययो, सामान्य नियमों, सिद्धान्तों, उदाहरणों आदि का ज्ञान करवाने के लिए कुछ अन्य शिक्षण विधियों का प्रयोग करना आवश्यक है। इस अध्याय में आप आगमन एवं निगमन विधियों का अध्ययन करेंगें।

4.2 आगमन विधि - अर्थ एवं स्वरूप (Inductive Method-Meaning and Nature)

आगमन विधि उस विधि को कहते हैं जिसमें विशेष तथ्यों तथा घटनाओं के निरीक्षण तथा विश्लेषण द्वारा सामान्य नियमों अथवा सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता हैं। इस विधि में ज्ञात से अज्ञात की ओर, विशिष्ट से सामान्य की ओर तथा मूर्त से अमूर्त की ओर नामक शिक्षण सूत्रों का प्रयोग किया जाता हैं। दूसरे शब्दों में, इस विधि का प्रयोग करते समय शिक्षक बालकों के सामने पहले उन्हीं के अनुभव क्षेत्र से विभिन्न उदाहरणों के सम्बन्ध में निरीक्षण, परीक्षण तथा ध्यानपूर्वक सोच विचार करके सामान्य नियम अथवा सिद्धान्त निकलवाता है। इस प्रकार आगमन विधि में विशिष्ट उदाहरणों द्वारा बालकों को सामान्यीकरण अथवा सामान्य नियमों को निकलवाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता हैं। उदाहरण के लिये व्याकरण पढ़ाते समय बालकों के सामने विभिन्न व्यक्तियों, वस्तुओं तथा स्थानों एवं गुणों के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करके विश्लेषण द्वारा यह सामान्य नियम निकलवाया जा सकता हैं कि किसी व्यक्ति, वस्तु तथा स्थान एवं गुण को संज्ञा कहते हैं। जिस प्रकार आगमन विधि का प्रयोग हिन्दी में किया जा सकता हैं, उसी प्रकार इस विधि को इतिहास, भूगोल, गणित, नागरिक शास्त्र तथा अर्थशास्त्र आदि अनेक विषयों के शिक्षण में भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। आगमन विधि में शिक्षण क्रम को निम्नलिखित सोपानों में बाँटा जाता हैं –

(i) उदाहरणों का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Examples)

इस सोपान में बालकों के सामने एक ही प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

(ii) विश्लेषण (Analysis)

इस सोपान में प्रस्तुत किये हुए उदाहरणों का बालकों से निरीक्षण कराया जाता है। तत्पश्चात् शिक्षक बालकों से विश्लेषणात्मक प्रश्न पूछता है अन्त में उन्हें उदाहरणों में से सामान्य तत्वों की खोज करके एक ही परिणाम पर पहुँचने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

(iii) सामान्यीकरण (Generalization)

इस सोपान में बालक सामान्य नियम निकालते हैं।

(iv) परीक्षण (Testing)

इस सोपान में बालको द्वारा निकाले हुये सामान्य नियमों की विभिन्न उदाहरणों द्वारा परीक्षा की जाती हैं।

4.3 आगमन विधि के गुण (Merits of Inductive Method)

आगमन विधि के निम्नलिखित गुण हैं :–

(i) आगमन विधि द्वारा बालकों को नवीन ज्ञान के खोजने का प्रशिक्षण मिलता है। यह परीक्षण उन्हें जीवन में नये–नये तथ्यों को खोज निकालने के लिये सदैव प्रेरित करता रहता है। अतः यह विधि शिक्षण की एक मनोवैज्ञानिक विधि है।

(ii) आगमन विधि में ज्ञात से अज्ञात की ओर तथा सरल से जटिल की ओर चलकर मूर्त उदाहरणों द्वारा बालकों से सामान्य नियम निकलवाये जाते है। इससे वे सक्रिय तथा प्रसन्न रहते है। ज्ञानार्जन हेतु उनकी रुचि निरन्तर बनी रहती है एवं उनमें रचनात्मक चिन्तन, आत्म विश्वास आदि अनेक गुण विकसित हो जाते हैं।

(iii) आगमन विधि में ज्ञान प्राप्त करते हुए बालक को सीखने के प्रत्येक स्तर को पार करना पड़ता है। इससे शिक्षण प्रभावशाली बन जाता है।

(iv) इस विधि में बालक उदाहरणों का विश्लेषण करते हुए सामान्य नियम स्वयं निकाल लेते हैं। इससे उनका मानसिक विकास सरलतापूर्वक हो जाता है।

(v) इस विधि द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान स्वयं बालकों का खोजा हुआ ज्ञान होता है। अतः ऐसा ज्ञान उनके मस्तिष्क का स्थायी अंग बन जाता हैं।

(vi) यह विधि व्यावहारिक जीवन के लिये अत्यन्त लाभप्रद है। अतः यह विधि एक प्राकतिक विधि हैं।

4.4 आगमन विधि के दोष (Demerits of Inductive Method)

आगमन विधि के निम्नलिखित दोष हैं :–

(i) इस विधि द्वारा सीखने में शक्ति तथा समय दोनों अधिक लगते हैं।

(ii) यह विधि छोटे बालकों के लिये उपयुक्त नहीं है। इनका प्रयोग केवल बड़े और वह भी बुद्धिमान बालक ही कर सकते हैं। सामान्य बुद्धि वाले बालक तो प्रायः प्रतिभाशाली बालकों द्वारा निकाले हुये सामान्य नियमों को आँख मीचकर स्वीकार कर लेते हैं।

(iii) आगमन विधि द्वारा सीखते हुये यदि बालक किसी अशुद्ध सामान्य नियम की ओर पहुँच जायें तो उन्हें सत्य की ओर लाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(iv) आगमन विधि द्वारा केवल सामान्य नियमों की खोज ही की जा सकती है अतः इस विधि द्वारा प्रत्येक विषय की शिक्षा नहीं दी जा सकती।

(v) यह विधि स्वयं में अपूर्ण है। इसके द्वारा खोजे हुये सत्य की परख करने के लिये निगमन विधि आवश्यक हैं।

आगमन विधि ही ऐसी विधि हैं जिसके द्वारा सामान्य नियमों अथवा सिद्धान्तों की खोज की जा सकती है। अतः इस विधि द्वारा शिक्षण करते समय यह आवश्यक है कि शिक्षक उदाहरणों तथा प्रश्नों का प्रयोग बालकों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखते हुये करे। इससे उनकी नवीन ज्ञान को सीखने में उत्सुकता निरन्तर बढ़ती रहेगी।

4.5 निगमन विधि अर्थ एवं स्वरूप (Deductive Method–Meaning and Nature)

शिक्षण की निगमन विधि उस विधि को कहते हैं जिसमें सामान्य से विशिष्ट अथवा सामान्य नियम से विशिष्ट उदाहरण की ओर बढ़ा जाता है। इस प्रकार निगमन विधि आगमन विधि के बिल्कुल विपरीत है। इस विधि का प्रयोग करते समय शिक्षक बालकों के सामने पहले किसी सामान्य नियम को प्रस्तुत करता है। तत्पश्चात उस नियम की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए विभिन्न उदाहरणों का प्रयोग करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि निगमन विधि में विभिन्न प्रयोगों तथा उदाहरणों के माध्यम से किसी सामान्य नियम की सत्यता को सिद्ध करवाया जाता है। उदाहरण के लिये, विज्ञान की शिक्षा देते समय बालकों से किसी भी सामान्य नियम को अनेक प्रयोगों द्वारा सिद्ध कराया जा सकता है। जिस प्रकार इस विधि का प्रयोग विज्ञान के शिक्षण में किया जा सकता है उसी प्रकार इसका प्रयोग सामाजिक विज्ञान, व्याकरण, अंकगणित तथा ज्यामिति आदि अन्य विषयों के शिक्षण में भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। निगमन विधि में निम्नलिखित सोपान होते हैं:–

(i) सामान्य नियमों का प्रस्तुतीकरण (Presentation of general laws)

इस सोपान में शिक्षक बालकों के सामने सामान्य नियमों को क्रमपूर्वक प्रस्तुत करता है।

(ii) सम्बन्धों की स्थापना (To establish relationship)

इस सोपान में विश्लेषण की प्रक्रिया आरम्भ होती है। दूसरे शब्दों में, शिक्षक प्रस्तुत किये हुये नियमों के अन्दर तर्कयुक्त सम्बन्धों का निरुपण करता है।

(iii) उदाहरणों द्वारा परीक्षण (Testing through examples)

इस सोपान में सामान्य नियमों की परीक्षा करने के लिये विभिन्न उदाहरणों को ढूँढ़ा जाता है। दूसरे शब्दों में, सामान्य नियमों का विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग किया जाता है जिससे सत्यता का ठीक ठीक परीक्षण हो जाये।

4.6 निगमन विधि के गुण (Merits of Inductive Method)

निगमन विधि के निम्नलिखित गुण हैं :–

(i) यह विधि प्रत्येक विषय को पढ़ाने के लिये उपयुक्त हैं।

(ii) यह विधि छोटे बालकों के लिये अत्यन्त लाभदायक हैं। इसके प्रयोग द्वारा बालक ज्ञान का प्रयोग करना सरलतापूर्वक सीख जाते हैं।

(iii) निगमन विधि द्वारा बालक शुद्ध नियमों की जानकारी प्राप्त करते हैं, उन्हें अशुद्ध नियमों को जानने का कोई अवसर नहीं मिलता।

(iv) इस विधि द्वारा कक्षा के सभी बालकों को एक ही समय में पढ़ाया जा सकता है।

(v) इस विधि के प्रयोग से समय तथा शक्ति दोनों की बचत होती है।

(vi) निगमन विधि में शिक्षक बने बनाये नियमों को बालकों के सामने प्रस्तुत करता है। अतः इस विधि में शिक्षक का कार्य अत्यन्त सरल हैं।

4.7 निगमन विधि के दोष (Demerits of Deductive Method)

निगमन विधि के निम्नलिखित दोष हैं :–

(i) निगमन विधि में बालकों को शिक्षक द्वारा बनाया हुआ नियम अथवा दिया हुआ ज्ञान हर हालात में स्वीकार करना पड़ता है।

(ii) निगमन विधि आगमन विधि से बिल्कुल उल्टी हैं। इस विधि में सामान्य से विशिष्ट की ओर, अज्ञात से ज्ञात की ओर तथा अमूर्त से मूर्त की ओर चलना पड़ता हैं। इस दष्टि से यह विधि शिक्षण की अमनोवैज्ञानिक विधि हैं।

(iii) यह विधि नियमों अथवा सिद्धान्तों को बलपूर्वक रटने कें लिये बाध्य करती है। परिणामस्वरूप बालक पाठ में कोई रूचि नही लेते ।

(iv) इस विधि से बालकों को अपने निजी प्रयासों द्वारा ज्ञान को खोजने का कोई अवसर नहीं मिलता हैं। इससे उनमें मानसिक दासता विकसित हो जाती हैं।

(v) निगमन विधि द्वारा रटा हुआ ज्ञान बालकों के मस्तिष्क का स्थायी अंग नही बनता।

(vi) बालकों में रचनात्मक प्रवति होती हैं। अतः वे वस्तुओं को बनाने, बिगाड़ने अथवा तोड़ने फोड़ने में रुचि लेते हैं। पर निगमन विधि केवल अमूर्त चिन्तन पर ही बल देती है। इससे बालकों की रचनात्मक शक्तियाँ अविकसित ही रह जाती है।

उपर्युक्त दोषों को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि निगमन विधि से आगमन विधि द्वारा खोजे हुए नियमों अथवा सिद्धान्तों का प्रयोग अभ्यास बहुत अच्छा कराया जा सकता है।

4.8 आगमन तथा निगमन विधियों में अन्तर (Defference between Inductive and Deductive Method)

	आगमन विधि		निगमन विधि
1.	आमगन विधि मनोवैज्ञानिक है।	1.	निगमन विधि अमनोवैज्ञानिक हैं।
2.	आगमन विधि छोटे बालको के लिये उपयोगी हैं।	2.	निगमन विधि बड़े बालकों के लिये उपयुक्त हैं।
3.	इस विधि में विशिष्ट तथ्यों तथा घटनाओं के निरीक्षण तथा विश्लेषण द्वारा सामान्य नियमों अथवा सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है।	3.	इस विधि में सामान्य नियम से विशिष्ट उदाहरण की ओर बढ़ा जाता है। शिक्षक पहले सामान्य नियम को बताता है। तत्पश्चात उसकी सत्यता को प्रमाणित करने के लिये विशिष्ट उदाहरणों का प्रयोग करता है।
4.	इस विधि द्वारा बालक ज्ञान को स्वयं खोजते हैं।	4.	इस विधि में खोजे ज्ञान को नई परिस्थितियों में प्रयोग करने के अवसर मिलते हैं।
5.	इस विधि में समस्त कार्य बालक स्वयं करते हैं।	5.	इस विधि में समस्त कार्य शिक्षक करता है। इससे

इससे वे पाठ में रुचि लेते हैं। जिसके परिणाम–स्वरूप अनुसन्धान को प्रोत्साहन मिलता हैं।

6. आगमन विधि में बालक अपनी मानसिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं। इससे उन्हें अपने निरीक्षण, अनुभव तथा निर्णय पर विश्वास उत्पन्न होता हैं। परिणामस्वरुप उनका मानसिक विकास निरन्तर होता रहता हैं। अतः यह विधि शिक्षण की उत्तम विधि हैं।

7. अगमन विधि द्वारा नीवन ज्ञान के खोजने में समय भी अधिक लगता है तथा शक्ति भी अधिक खर्च होती हैं।

बालक निष्क्रिय रहते हैं जिसके परिणाम स्वरूप वे केवल दूसरों के अनुकरण करना ही सीख पाते हैं।

6. निगमन विधि में बालकों को सोचने तथा तर्क करने का कोई अवसर नहीं मिलता इससे वे मानसिक दष्टि से शिक्षक के दास ही बने रहते हैं। चूँकि निगमन विधि बालक को शिक्षक पर निर्भर रहने के लिये बाध्य करती है। इसलिये इस विधि को शिक्षण की उत्तम विधि नहीं कहा जा सकता।

7. निगमन विधि में बालक शिक्षक द्वारा बताये हुए ज्ञान प्राप्त करने में बालक का समय तथा शक्ति दोनों बच जाते हैं।

आगमन और निगमन दोनों विधियों के उपर्युक्त अन्तर पर प्रकाश डालने से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों विधियाँ एक दूसरे के ठीक विपरीत है। आगमन विधि से सामान्य नियमों अथवा सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है तथा निगमन विधि से प्रतिपादित नियमों का विशिष्ट उदाहरणों द्वारा सत्यता सिद्ध कराई जाती है। उक्त दोनों विधियों में से किसी एक ही विधि के प्रयोग से शिक्षण में सफलता नहीं मिल सकती। इसका कारण यह है कि बालकों को वास्तविक ज्ञान देने के लिये जहाँ एक ओर आगमन विधि द्वारा सामान्य नियमों का प्रतिपादन कराना आवश्यक है वहाँ दूसरी ओर निगमन विधि के द्वारा प्रतिपादित नियमों की सत्यता का प्रमाणित कराना भी आवश्यक है। अतः अच्छा यही हैं कि पहले आगमन विधि द्वारा सामान्य नियमों की खोज कराई जाये तत्पश्चात निगमन विधि के द्वारा खोजे हुये नियमों की सत्यता प्रमाणित कराई जाये। इस प्रकार सफल शिक्षण के लिये दोनों ही विधियों का यथा समय उचित प्रयोग करना परम आवश्यक है। आगमन तथा निगमन दोनों विधियों में कोई विरोध नही हैं। दोनों विधियाँ एक दूसरे की पूरक है। अतः दोनों विधियों का समन्वय आवश्यक हैं। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हरबार्ट की पंच पद प्रणाली में भी हमें आगमन तथा निगमन दोनों विधियों का समन्वय स्पष्ट रुप से दिखाई पड़ता है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) आगमन और निगमन विधि क्या हैं?

(ii) आगमन और निगमन विधि में भेद बताईये?

4.9 सारांश (Summary)

आगमन विधि तथा निगमन विधि का शिक्षा में विशेष महत्व हैं। आगमन विधि में विशिष्ट उदाहरणों द्वारा बालकों को सामान्यीकरण अथवा सामान्य नियमों को निकलवाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। निगमन विधि मे विभिन्न प्रयोगों तथा उदाहरणों के माध्यम से किसी सामान्य नियम की क्षमता को सिद्ध कराया जाता है। इन दोषों विधियों की अपनी विशेषताएँ तथा दोष हैं।

4.10 आदर्श उत्तर

(i) विशेष तथ्यों तथा घटनाओं के निरीक्षण तथा विश्लेषण द्वारा सामान्यत नियमों अथवा सिद्धान्तों का निर्माण को आगमन विधि कहते है। सामान्य से विशिष्ट अथवा सामान्य नियम से विशिष्ट उदाहरण की ओर बढ़ना निगमन विधि कहलाती है।

(ii) उत्तर 4.8 पर देखें

4.11 मुख्य शब्द

आगमन – विशेष तथ्यों, घटनाओं के निरीक्षण तथा विश्लेषण द्वारा उदाहरणों की सहायता से सामान्य नियमों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन।

निगमन – प्रतिपादित नियमों की विभिन्न प्रयोगो तथा विशिष्ट उदाहरणों द्वारा सत्यता सिद्ध करना।

4.12 सन्दर्भ पुस्तकें

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – शैदा एवं शैदा, आर्म बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – भाटिया व नारंग, टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना (2001)

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण – त्यागी, गुरसरनदास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1993)

शिक्षण अधिगम की तकनीकी – पाण्डेय के०पी०, पंजाब किताब घर, जालन्धर।

Teaching Social Studies in India – Yajnik, K.S., Orient Longmans Ltd. Bombay

यूनिट-IV

भाग-II शिक्षण कौशल

प्रश्न कौशल (Skill of Questioning)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

– प्रश्न कौशल का अर्थ बता सकें।

– प्रश्न कौशल के विभिन्न घटकों का वर्णन कर सकें।

– प्रश्न कौशल सम्बन्धित निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग कर सकें।

– प्रश्न कौशल से सम्बन्धित सूक्ष्म पाठ योजना बना सकें।

संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्रश्न कौशल का अर्थ

1.3 प्रश्न कौशल के घटक

1.4 प्रश्न कौशल संबंधी निरीक्षण अनुसूची

1.5 प्रश्न कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना

1.6 सारांश

1.7 आदर्श उत्तर

1.8 मुख्य शब्द

1.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक को अनेक कार्य एक साथ करने पड़ते हैं जैसे लिखना, प्रश्न पूछना, स्पष्ट करना, प्रदर्शन करना आदि इसलिये इसे क्रियाओं का सकुल कहा जाता है। अध्यापक का कार्य विद्यार्थी को इन क्रियाओं में संलग्न करना है। यह शिक्षण कौशल काफी तकनीकी युक्त और परिश्रमपूर्ण होते हैं। इन शिक्षण कौशलों की प्रकति एक जैसी नही होती। इनमे निहित शिक्षण व्यवहारों में भी काफी अन्तर पाया जाता है और इसलिए उन सभी का अभ्यास और उन्हें विकसित करने की प्रक्रिया में अन्तर पाया जाना स्वाभाविक ही हैं।

वास्तव में शिक्षण कौशलों द्वारा शिक्षक के व्यवहार प्रदर्शित होते है। शिक्षक की सभी क्रियाएँ विद्यार्थियों के अधिगम की ओर केन्द्रित रहती हैं। शिक्षक की इन क्रियाओं में कभी व्याख्यान देना, कभी उदाहरण प्रस्तुत करना, कभी विशिष्ट शब्दों की व्याख्या करना तथा कभी कक्षा में कुछ करके दिखाना आदि सम्मिलित होता है। शिक्षण प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाली इस प्रकार की सभी क्रियाएँ ही शिक्षण कौशल कहलाती हैं।

यही विभिन्न शिक्षण क्रियाओं की सफलता ही शिक्षण कला बन जाती हैं। संक्षेप में शिक्षण कौशल शिक्षक के व्यवहारों

का एक समूह होता है जो विद्यार्थियों के अधिगम में किसी न किसी रुप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप में सहायता करता है। श्री बी० के० पासी ने शिक्षण कौशल शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया हैं :–

"शिक्षण कौशल उन परस्पर सम्बन्धित शिक्षण–क्रियाओं या व्यवहारों का समूह हैं जो विद्यार्थी के अधिगम में सहायता देते हैं।"

एन० एल० गेज के अनुसार, "शिक्षण कौशल वे अनुदेशनात्मक क्रियाएँ और विधियाँ है जिनका प्रयोग शिक्षक अपनी कक्षा में कर सकता है। ये शिक्षण के विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित होती है या शिक्षक की निरन्तर निष्पति के रुप में होती हैं।"

शैक्षिक शब्दकोष के अनुसार, "कौशल मानसिक शारीरिक क्रियाओं की क्रमबद्ध और समन्वित प्रणाली होता हैं।"

अतः शिक्षण कौशल मुख्यतया कक्षा में अन्तक्रिया जैसी परिस्थिति उत्पन्न करने में, अधिगम में, विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति में तथा शिक्षण क्रियाओं के विशिष्टीकरण में सहायक होते हैं। ये सभी शिक्षण कौशलों की विशेषताएँ है। सामाजिक अध्ययन को पढ़ाने के लिये कुछ शिक्षण कौशलों की अति अधिक आवश्यकता होती हैं। यदि प्रशिक्षण कार्यक्रम में विधिवत् सूक्ष्म शिक्षण पाठों का आयोजन किया जाए तो अध्यापक उचित अभ्यास के माध्यम से कुशल अध्यापक बनकर वांछित सफलता प्राप्त कर सकते है। आगे कुछ महत्वपूर्ण शिक्षण कौशलों और उनमें निहित विशिष्ट शिक्षण व्यवहारों की चर्चा करते हुए उनसे संबन्धित सूक्ष्म शिक्षण अभ्यास कार्य को विस्तत जानकारी लेने का प्रयत्न करेंगे।

1.2 प्रश्न कौशल का अर्थ (Meaning of Skill Questioning)

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में प्रश्न पूछने की कला बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इसकी सफलता विद्यार्थियों से वांछित उतर प्राप्त करने पर निर्भर करती हैं। प्रश्न की प्रकति, अपनी स्वयं की योग्यता और विषय वस्तु की समझ तथा अध्यापक के उनके प्रति व्यवहार को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थी पूछे जाने वाले प्रश्नों के प्रति कई प्रकार से अपनी अनुक्रिया व्यक्त कर सकता हैं, जैसे कोई उत्तर नहीं देना, अपूर्ण उत्तर देना, गलत उत्तर देना, आंशिक रुप से सही उत्तर देना अथवा सही उत्तर देना आदि।

विद्यार्थियों के प्राप्त उत्तरों को किस रुप में ग्रहण किया जाए और इनके आधार पर शिक्षण की उचित भूमिका कैसे बनाई जाए। खोजपूर्ण प्रश्न कौशल का सम्बन्ध इसी कार्य से होता है। जब कोई विद्यार्थी उत्तर नहीं देता अथवा अपूर्ण और गलत उत्तर देता है तो उसे उत्तर देने के लिए प्रेरित करने अथवा सही उत्तर की और ले जाने के लिए अध्यापक ऐसे प्रश्नो का सहारा लेता हैं जो धीरे–धीरे विद्यार्थी से पूर्वज्ञान अथवा सीखी हुई विषयवस्तु से नवीन ज्ञान तक पहुँचाने अथवा उसकी खोज करने में सहायता करते हैं। ये प्रश्न उसके अपूर्ण अथवा गलत उत्तर को खोज या अनुसंधान प्रक्रिया के माध्यम से पूर्ण और सही रुप प्रदान करते हैं। सही उत्तर प्राप्त होने की दशा में भी अध्यापक ऐसे प्रश्न पूछ सकता हैं जो विषय की अधिक गहराई में जाने में सहायता करते है। इस प्रकार के सभी प्रश्नों, प्रयत्नों या तकनीकों को जो विद्यार्थियों से प्राप्त उत्तरों को ही आगे के शिक्षण का आधार मान कर चला जाता हैं। इनके आधार पर ही ऐसे अनेक खोजपूर्ण प्रश्न पूछे जाते हैं जिन के माध्यम से छात्रों को धीरे–धीरे विषय के विस्तत ज्ञान में सहायता मिले। विद्यार्थियों के उत्तरों को उपयुक्त ढंग से सम्भालने पर अधिक जोर दिये जाने के कारण ही इस कौशल को जंगीरा और उसके सहयोगियों ने उत्तर या अनुक्रिया प्रबंध की संज्ञा दी हैं।

1.3 प्रश्न कौशल के घटक (Components of Skill of Questioning)

1. अनुबोधन (Prompting)

दर्शकों के समक्ष अपनी भूमिका निभाते हुए रंगमंच के कलाकारों को सही संवाद बोलने या अन्य व्यवहार जन्य क्रियायें करने के लिए पर्दे के पीछे से आवश्यक सहायता पहुँचाने हेतु जो तकनीक अपनाई जाती है उसे अनुबोधन का नाम दिया जाता हैं। शिक्षण–अधिगम परिस्थिति में इस तकनीक को उस संकेत या सहायता के रुप में समझा जा सकता है जो एक अध्यापक द्वारा किसी विद्यार्थी की अवाँछित अनुक्रियाओं को वाँछित रूप प्रदान करने के लिए दी जाती हैं।

इस तकनीक के अन्तर्गत अध्यापक किसी भी प्रश्न का चाहे वह स्वयं उसके द्वारा पूछा गया हो अथवा किसी विद्यार्थी के द्वारा स्वयं जबाब नही देता अथवा विद्यार्थियों के किसी उत्तर को सही नही करता बल्कि ऐसे संकेत देता हैं और प्रश्न पूछता हैं जिन के द्वारा विद्यार्थी स्वयं उत्तर दे अथवा अपने उत्तरों में अपेक्षित सुधार लायें।

अनुबोधन के लिए कई तकनीकें काम में लाई जा सकती हैं जैसे संकेत देना, सुझाव देना, पहले पूछे गये प्रश्नों की भाषा में परिवर्तन लाना, प्रश्न को तोड़ कर पूछना आदि। किसी एक परिस्थिति में इन में से कौन सी तकनीक काम मे लाई जायें, यह विद्यार्थियों के पूर्ण अनुभव, परिपक्वता स्तर, संकेतों को समझने की योग्यता, विद्यार्थियों के उत्तरों की प्रकति आदि पर निर्भर करती हैं।

2. अधिक सूचना प्राप्ति (Seeking further information)

यह तकनीक अपूर्ण अथवा आंशिक रूप में सही उत्तरों से निपटने के लिए अपनाई जाती है। ऐसे उत्तर देने वाले विद्यार्थियों से आगे यहाँ यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने दिये गये अधूरे उत्तरों को पूरा करें अथवा जो थोड़ी बहुत गलती उनमें रह गई हैं, उसे सुधारें। यह सब करने के लिए उनसे उत्तर रुप में कुछ और अधिक प्राप्त करने की आवश्यकता होती हैं। इसके लिए अध्यापक को ठीक प्रकार से तैयार किये हुए उचित प्रश्न पूछने होते हैं ताकि विद्यार्थी से कुछ और वांछित सूचना प्राप्त हो सके। अधिक सूचना प्राप्ति के लिए खोजपूर्ण प्रश्न कई रुपों में पूछे जा सकते हैं, जैसे – इस बारे में तुम और क्या कह सकते हो? क्या तुम इसे और स्पष्ट कर सकते हों? इसके लिए कोई उदाहरण, प्रमाण, तर्क दीजिए, इसे विस्तार से बताइये आदि।

3. पुनः केन्द्रण (Refocussing)

इस तकनीक का उपयोग विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त सही उत्तर को और अधिक सही, स्पष्ट और सबल रूप प्रदान करने के लिए किया जाता है। यह सब करने के लिए अध्यापक विद्यार्थी को इस प्रकार प्रेरित करता हैं कि वह अपने उत्तर को पहले पढ़े हुए किसी विषय अथवा विषयवस्तु से सम्बन्धित कर सकें अथवा अपने उत्तर को किसी अन्य कार्य और नवीन परिस्थितियों में उपयोग कर सके। जैसे शिमला भिवानी से किस रुप में भिन्न है अथवा भिवानी रोहतक से किस प्रकार समान हैं। क्या तुम अपने उत्तर की पुष्टि में कोई उदाहरण दे सकते हो? दैनिक जीवन में इसका क्या उपयोग हो सकता हैं? आदि प्रश्नों का उपयोग पुनः केन्द्रण सम्बन्धी इस तकनीक में किया जाता हैं।

4. पुनः निर्देशन (Redirection)

प्रायः इस तकनीक का उपयोग अपूर्ण उत्तर अथवा कोई उत्तर प्राप्त न होने की दशा में किया जाता हैं। उस समय पहले पूछे गये प्रश्न को वांछित उत्तर प्राप्ति हेतु या तो पुनः उसी विद्यार्थी से पूछा जाता है। वांछित उत्तर तक पहुंचने में दूसरे विद्यार्थियों से ली जाने वाली सहायता उस विद्यार्थी को सही उत्तर खोजने में काफी सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

5. समीक्षात्मक अभिज्ञान वद्धि (Increasing Critical Awareness)

जब कोई विद्यार्थी सही उत्तर देता हैं तो उस समय उसके समीक्षात्मक अभिज्ञान मे वद्धि के लिए इस तकनीक का उपयोग किया जाता हे। घटना घटती हैं अथवा क्रिया होती हैं विद्यार्थी यह जानता हैं। परन्तु यह कैसे और क्यों होती हैं, इसके बारे में खोज करने अथवा बताये जाने से ही उसके समीक्षात्मक अभिज्ञान में वद्धि हो सकती है। इसलिये एक अध्यापक सही उत्तर देने वाले विद्यार्थी से आगे खोजपूर्ण प्रश्न पूछने का प्रयत्न करता है जैसे तुम इसे कैसे उचित ठहरा सकते हो, तुम ऐसा क्यों मानते हों, यह ऐसा क्यों होता हैं, इसके पीछे क्या कारण हो सकता है आदि। इन प्रश्नों की सहायता से एक विद्यार्थी को अपने दिए हुए उत्तर की समीक्षात्मक दष्टिकोण से जांच करने का अवसर मिलता है। वह उसकी उपयुक्तता की गहराई में जाता है और इस तरह से विषयवस्तु को ओर अच्छी तरह से समझने एवं उसे उपयोग में लाने में सहायता मिलती हैं।

1.4 प्रश्न कौशल संबंधी निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule for Skill of Questioning)

प्रश्न कौशल के विकास के लिए जो सूक्ष्म शिक्षण अभ्यास कराया जाता हैं, उसके पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन हेतु काम

लाये जाने वाले प्रपत्र का निम्नलिखित प्रारुप हो सकता हैं –

1. अनुक्रमांक ..... छात्र अध्यापक का नाम .....
   कक्षा ..... उपविषय .....
   सत्र शिक्षण/पुनः शिक्षण अवधि .....
   दिनांक ..... पर्यवेक्षक.....

टैलियां	व्यवहार घटक	रेटिंग अत्यधिक निराशाजनक से सर्वोत्तम की ओर
व्यवहार घटक की	अनुबोधन–	0 1 2 3 4 5 6
आवति दिखाने के	अधिक सूचना प्राप्ति पुनः केन्द्रण	0 1 2 3 4 5 6
लिए	पुनः निर्देशन	0 1 2 3 4 5 6
	समीक्षात्मक अभिज्ञान वद्धि	0 1 2 3 4 5 6

1.5 प्रश्न कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना (Microlesson Plan based on skill of Questioning)

छात्र अध्यापक का नाम - **अनुक्रमांक .....**

विषय – सामाजिक अध्ययन उप विषय– भारतीय संविधान की विशेषताएँ

कक्षा – .....

दिनांक – ..... सत्र पर्यवेक्षक – शिक्षण/पुनः शिक्षण

	छात्र अध्यापक क्रियाएँ		छात्र अनुक्रियाएँ
1.	भारत कब स्वतन्त्र हुआ?	–	15 अगस्त 1947 को।
2.	भारत मे कैसी शासन व्यवस्था हैं?	–	प्रजातन्त्रात्मक
3.	प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में शासन कौन चलाता हैं?	–	जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि
4.	जनता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव किन नियमों के आधार पर करती हैं?	–	संविधान में लिखित नियमो के आधार पर
5.	हमारा संविधान कब तैयार किया गया?	–	26 नवम्बर 1949 को।
6.	भारतीय संविधान कब लागू हुआ?	–	उचित उत्तर न मिलने पर।
7.	हम गणतन्त्र दिवस कब मनाते हैं?	–	26 जनवरी को।
8.	हमारा संविधान कब लागू हुआ?	–	26 जनवरी 1950 को।
9.	संविधान का निर्माण किसके सभापतित्व में हुआ?	–	– – – – – – – – – –
10.	भारत के प्रथम राष्ट्रपति कौन थे?	–	डा० राजेन्द्रप्रसाद
11.	अब बताये संविधान का निर्माण किसके सभापतित्व में हुआ?	–	डा० राजेन्द्रप्रसाद
12.	भारतीय संविधान की रुपरेखा समीति के अध्यक्ष कौन थे?	–	– – – – – – – – – –
	डा० राजेन्द्र प्रसाद, या डा० बी० आर अम्बेडकर		

13.	अछूतों की भलाई के लिए किसने कार्य किए?	–	डा० भीमराव अम्बेडकर
14.	भारतीय संविधान का स्वरूप कैसा हैं?	–	लिखित व लचीला।
15.	भारतीय संविधान में किन–किन बातों का वर्णन किया गया हैं?	–	प्रस्तावना, अधिकार, कर्त्तव्य नीति निर्देशक तत्त्व।
16.	संविधान के अभाव में देश की शासन व्यवस्था कैसी होगी?	–	देश का शासन चलाना कठिन हो जाएगा।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) प्रश्न कौशल के घटकों का वर्णन करो।

(ii) प्रश्न कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना बनाइएं।

1.6 सारांश (Summary)

प्रश्न कौशल का शिक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षण अधिगम में प्रश्न पूछने की कला महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रश्न कौशल के द्वारा छात्र अपने मन की शंकाओं का समाधान कर सकता। प्रश्न कौशल के द्वारा अध्यापक अध्यापन की प्रक्रिया को प्रभावी बनाता हैं।

1.7 आदर्श उत्तर

(i) प्रश्न कौशल के घटक इस प्रकार हैं :–

1. अनुबोधन
2. अधिक सूचना प्राप्ति
3. पुनः केन्द्रण
4. पुनः निर्देशन
5. समीक्षात्मक अभिज्ञान वद्धि

(ii) उत्तर भाग 1.5 में देखें।

1.8 मुख्य शब्द

शिक्षण कौशल : सम्बन्धित शिक्षण क्रियाओं या व्यवहारों का समूह जो विद्यार्थी के अधिगम व अध्यापक के शिक्षण में सहायक होते हैं।

अनुबोधन : शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अध्यापक द्वारा विद्यार्थी की वांछित अनुक्रियाओं को वांछित रूप प्रदान करने के लिए दी गई सहायता।

1.9 सन्दर्भ पुस्तकें

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – शैदा एवं शैदा, आर्म बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – भाटिया व नारंग, टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना (2001)

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण – त्यागी, गुरसरनदास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1993)

शिक्षण अधिगम की तकनीकी – पाण्डेय के०पी०, पंजाब किताब घर, जालन्धर।

यूनिट-IV

भाग-II शिक्षण कौशल

व्याख्या कौशल (Skill of Explaining)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

– व्याख्या कौशल का अर्थ बता सकें।

– व्याख्या कौशल के घटक व्यवहारों का वर्णन कर सकें।

– व्याख्या कौशल सम्बन्धित निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग कर सकें।

– व्याख्या कौशल से सम्बन्धित सूक्ष्य पाठ योजना बना सकें।

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 व्याख्या कौशल का अर्थ

2.3 व्याख्या कौशल के घटक

2.4 व्याख्या कौशल संबंधी निरीक्षण अनुसूची

2.5 व्याख्या कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना

अपनी प्रगति जांचिए

2.6 सारांश

2.7 आदर्श उत्तर

2.8 मुख्य शब्द

2.9 सन्दर्भ पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बहुत से तथ्य संप्रत्यय नियम अथवा सिद्धान्त ऐसे होते है जिन्हें अच्छी तरह करना और बोधगम्य बनाने हेतु उनकी व्याख्या करना आवश्यक हो जाता है। इस दष्टि से व्याख्या कौशल का अर्जन एक अध्यापक के लिए काफी जरूरी है। व्याख्या करने से तात्पर्य विषय वस्तु पर आधारित उन कथनों से है जो आपस में पूरी तरह सम्बन्धित, क्रमबद्ध और सार्थक होते हैं। इस तरह व्याख्या कौशल को एक ऐसी तकनीक अथवा युक्ति के रुप में समझा जा सकता है जिसके द्वारा किसी संप्रत्यय, विचार या नियम को अच्छी तरह बोधगम्य बनाने के लिए परस्पर सम्बन्धित, क्रमबद्ध और सार्थक कथनों की भली–भाँति सहायता ली जा सके।

2.2 व्याख्या कौशल का अर्थ (Meaning of Skill Explaining)

इस कौशल के प्रयोग में सभी प्रकार से मौखिक अभिव्यक्ति का ही सहारा लेना होता है और इसके मुख्य रुप से दो भाग होते हैं :–

(i) विद्यार्थियों की आयु, परिपक्वता, पूर्वज्ञान और पढ़ाये जाने वाली विषयवस्तु या संप्रत्यय के अनुरुप उचित कथनों का चयन।

(ii) चयन किये हुए कथनों को एक दूसरे से सम्बन्धित करना और फिर उन्हें संप्रत्यय अथवा विषय विशेष को ठीक प्रकार से समझाने के लिए कुशलतापूर्वक प्रयोग में लाना। जहाँ तक व्याख्या कौशल में प्रत्यय कथनों की प्रकति का प्रश्न हैं, ये प्रायः तीन प्रकार के हो सकते हैं :–

(क) वर्णनात्मक कथन :– यह कथन दिये हुए संप्रत्यय या नियम का वर्णन करने के काम आते हैं।

(ख) अर्थात्मक कथन :– इन कथनों की सहायता से किसी संप्रत्यय या नियम का अर्थ समझने में सहायता मिलती है।

(ग) कारण बताने वाले कथन :– इनके द्वारा किसी संप्रत्यय, घटना और नियम के बारे में क्यों, कैसे और क्या जैसे प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने में आसानी होती हैं।

2.3 व्याख्या कौशल के घटक (Components of Skill of Explaining)

किसी संप्रत्यय या विचार विशेष की व्याख्या करने से सम्बन्धित कौशल में वाँछित और अवांछित दोनों प्रकार के शिक्षण व्यवहारों का समावेश होता है। अतः इस कौशल का अभ्यास कराने में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि अवांछित व्यवहारों को घटाते–घटाते बिल्कुल ही समाप्त करने का प्रयास किया जाए। इन सभी वांछित और अवांछित व्यवहारों को नीचे एक तालिका में प्रदर्शित किया जा रहा हैं –

	वांछित व्यवहार		अंवाछित व्यवहार
(1)	उपयुक्त प्रारम्भिक और निष्कर्ष कथनों का प्रयोग।	(1)	निरर्थक कथनों का प्रयोग।
(2)	व्याख्या सेतुओं का प्रयोग।	(2)	कथनों में निरन्तरता या तारतम्य का अभाव।
(3)	आवश्यक बिन्दुओं पर ध्यान देना।	(3)	प्रवाहिकता का अभाव।
(4)	बोध – परीक्षण।	(4)	अनुपयुक्त शब्दावली और अस्पष्ट शब्दों अथवा मुहावरों का प्रयोग।

2.3.1 वांछित व्यवहार (Desirable Behaviours)

1. उपयुक्त प्रारम्भिक और निष्कर्ष कथनों का प्रयोग (Use of proper introductory and concluding statements)

प्रारम्भिक कथनों के द्वारा प्रारम्भ में ही यह घोषणा की जाती है कि अध्यापक को किस विचार या संप्रत्यय विशेष की व्याख्या करनी है। इस घोषणा से विद्यार्थी व्याख्या को सुनने और समझने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाते हैं। दूसरी ओर, निष्कर्ष कथनों का प्रयोग व्याख्या के तुरन्त बाद सम्पूर्ण व्याख्या को सार रुप में प्रस्तुत करने के लिए किया जाता हैं।

2. व्याख्या सेतुओं का प्रयोग (Use of explaining Links)

किसी संप्रत्यय और नियम आदि की व्याख्या करने के लिए काम में लाये जाने विभिन्न कथनों में निरन्तरता या तारतम्य बनाये रखने हेतु इन शब्द सेतुओं का प्रयोग किया जाता है। इन शब्द सेतुओं के कुछ उदाहरण आगे दिये गये हैं। अतः, इसलिए, जैसा कि, परिणामस्वरुप, फलस्वरूप, क्योंकि, ताकि, इसके बजाय, अपेक्षाकत, दूसरी ओर ऐसा इसलिए हैं कि, जबकि, अर्थात् आदि।

3. आवश्यक बिन्दुओं पर ध्यान देना (Covering essential points)

किसी संप्रत्यय अथवा प्रनियम को समझने से संबन्धित व्याख्या अपने आप में अधिक से अधिक पूर्ण होनी

चाहिए। जो भी मुख्य और आवश्यक बातें संप्रत्यय या प्रनियम को भली–भाँति स्पष्ट करके अधिक से अधिक बोधगम्य बना सकें, उनकी ओर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिये।

4. बोध-परीक्षण (Testing the understanding)

व्याख्या के अन्त में तथा बीच–बीच में पूछे जाने वाले प्रश्न अध्यापक की इस बात को जांचने में सहायता करेंगें कि क्या वह तथ्यों की व्याख्या करने में सफल हुआ और साथ ही साथ विद्यार्थियों के बोध का परीक्षण करने में सहायता करेगें। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि बहुत ज्यादा प्रश्न न पूछे जाएं।

2.3.2 अवांछित व्यवहार (Undesirable Behaviours)

1. निरर्थक कथनों का प्रयोग (Use of irrelevant Statements)

ऐसे कथनों का प्रयोग जिनके द्वारा सम्बन्धित संप्रत्यय अथवा प्रनियम की व्याख्या करने में कोई सहायता नहीं मिलती, इस श्रेणी मे आता है। ये कथन अस्पष्टता एवं अव्यवस्था उत्पन्न कर विद्यार्थियों को लक्ष्य से दूर से ले जाते हैं।

2. कथनों में निरन्तरता का अभाव (Lack of Continuity in Statements)

इन कथनों को जोड़ने के लिए जो वाक्य अथवा शब्द होते है या तो उन्हें नदारद पाया जाता हैं अथवा कथनों में पारस्परिक सम्बद्धता और क्रम सम्बन्धी कमी नजर आती है।

3. प्रवाहिकता का अभाव (Lack of fluency)

जितने कथन किसी संप्रत्यय अथवा सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिए प्रयोग में लाए जाएं उनमें बिना किसी रुकावट के एक स्वाभाविक गति और प्रवाह देखने को मिलना चाहिए। इसका अभाव होने पर शिक्षक व्यवहार में निम्न बातें देखने को मिलती हैः–

i. वह स्पष्ट रूप से नहीं बोल पाता।
ii. वह अपूर्ण अथवा अधूरे वाक्य बोलता हैं।
iii. वह वाक्य और कथन को पूरा न कर बीच में ही उसे नये सिरे से बोलने और सुधारने का प्रयत्न करता हैं।
iv. वह अस्थिर विचारो और अनुपयुक्त, अस्पष्ट शब्दों और मुहावरों का प्रयोग करता है।

4. अनुपयुक्त शब्दावली और अस्पष्ट शब्दो अथवा मुहावरो का प्रयोग (Use of inappropriate Vocabulary and words or Phrases)

इस प्रकार के अंवाछित अध्यापक व्यवहार में निम्न बातें शामिल हो सकती हैं।

i. विद्यार्थियों के लिए सर्वथा अपरिचित अथवा उनके स्तर से अधिक कठिन शब्दावली का प्रयोग।
ii. ऐसे अस्पष्ट और निरर्थक शब्दों का प्रयोग करना जिनसे व्याख्या कार्य में बाधा पहुँचे जैसे मतलब यह है कि अर्थात, मसलन, हालांकि, वास्तव में, संभवतया, बिल्कुल, समझे कि नहीं, यह जानते ही हो आदि।
iii. गलत और बिना मौके के अनुपयुक्त मुहावरों का प्रयोग करना।

2.4 व्याख्या कौशल से सम्बन्धित निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule for skill of Explaining)

अनुक्रमांकः- **छात्र अध्यापक का नाम :**

विषय :– सामाजिक अध्ययन उपविषय :– वायुमण्डल व उसकी परतें

कक्षा :– सत्र :– शिक्षण/पुनः शिक्षण

दिनांक :– पर्यवेक्षक :–

टैलियां और विशेष निरीक्षण घटक व्यवहार गुणात्मक मूल्यांकन

	(i) वांछित व्यवहार	अत्यधिक निराशजनक से सर्वोत्तम की ओर
हां/नहीं	i. उपयुक्त प्रारम्भिक कथनों का प्रयोग	0 1 2 3 4 5 6
	ii. उपयुक्त निष्कर्ष कथनों	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	का प्रयोग	
टैलियां लगाना	iii.व्याख्याा सेतुओं का प्रयोग	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	iv.आवश्यकबिन्दूओं पर ध्यान देना।	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	v.बोध–परीक्षण	
	अवांछित व्यवहार	**बिल्कुल नहीं से अत्यधिक की ओर**
हां/नहीं	i. निरर्थक कथनों का प्रयोग	0 1 2 3 4 5 6
	ii. कथनों में निरन्तरता या	
	तारतम्य का अभाव	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	iii. प्रवाहिकता का अभाव	
हां/नहीं	iv. अनुपयुक्त शब्दावली का प्रयोग	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	v. निरर्थक एवं अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	vi.अनुपयुक्त एवं बिना अवसर मुहावरों का प्रयोग	0 1 2 3 4 5 6

2.5 व्याख्या कौशल के लिए सूक्ष्म पाठ योजना (Micro Lesson Plan for Skill of Explaining)

छात्र अध्यापक का नाम :– क्रमांक :–

विषय : भूगोल उपविषय : ब्रह्माण्ड में आकाश गंगायें

कक्षा : नवम् अवधि : 6 मिनट

अध्यापक

विद्यार्थियों को कल हम ने ब्राह्माण्ड कितना विशाल है और इसकी कुछ सीमा है या नहीं बताया था। हमारे सौर मण्डल में लाखों–करोड़ो तारे और आकाश गंगाये सभी ब्रह्माण्ड के अंग है। आज हम इन आकाश गंगाओं के बारे में अध्ययन करेंगें।

एक आकाश गंगा में असंख्य तारे होते हैं जिन के इर्द गिर्द धूल और हाईड्रोजन का बादल सा छाया रहता है। हमारा सौरमण्डल जिस में हमारी पथ्वी, सूर्य और ग्रह उपग्रहों का परिवार आता है, इस छोटी सी दूधिया मार्ग के नाम से प्रसिद्ध आकाश गंगा का सदस्य है। इस आकाश गंगा में हमारे सौर मण्डल जैसे अनगिनत सौरमण्डल है।

बहुत समय तक खगोल शास्त्री इस दूधिया मार्ग को ही आकाश गंगा का पर्याय मानते रहे। परन्तु उन्हे शीघ्र ही यह

मालूम हो गया कि हमारे ब्रह्माण्ड में दूधिया मार्ग से भी बहुत विशाल लाखों आकाश गंगाये विद्यमान है। इसमें से एक अति प्रसिद्ध आकाश गंगा जिसका नाम 'एन्ड्रामीड़ा आकाश गंगा' को तो हम यूँ ही अपनी आंखो से देख सकते है। यह हमसे बीस लाख प्रकाशवर्ष की दूरी पर है। इस विशाल दूरी का अनुमान तुम अच्छी तरह लगा सकते हो। अगर तुम्हें यह याद हो कि सूर्य से पथ्वी तक प्रकाश पहुँचने में केवल 8 मिनट और 30 सैकेण्ड लगते हैं।

इस प्रकार से हम समझ सकते है कि ब्रह्माण्ड में एक नही, असंख्य आकाश गंगायें विद्यमान है जिनमें से प्रत्येक में हमारे सौरमण्डल जैसे लाखों करोड़ो सौरमण्डल और असंख्य तारे है। अच्छा, अब मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछूंगा। तुम्हें सोच समझ कर ठीक उत्तर देने हैं।

	अध्यापक द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्न	**विद्यार्थियों के उत्तर**
1.	आकाश गंगा क्या हैं?	यह धूल, हाइड्रोजन और अपने सूर्य जैसे असंख्य तारों का एक समूह हैं।
2.	दूधिया मार्ग नामक आकाश गंगा के बारे में कुछ बताओ?	यह वह आकाश गंगा है जिसमें हमारा सौरमण्डल यानी हमारा सूर्य, पथ्वी और समस्त ग्रह परिवार शामिल हैं।
3.	क्या तुम उस प्रसिद्ध आकाश गंगा के बारे में जानते हो जिसे यूँ ही नंगी आंखो से देखा जा सकता हैं।	हां, इसका नाम एन्ड्रामीड़ा है। यह हमसे 20 लाख प्रकाश वर्ष दूर है।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) व्याख्या कौशल के घटक कौन से हैं?

(ii) व्याख्या कौशल के विकास के लिये सूक्ष्म पाठ योजना बनाइये।

(iii) कुछ अवांछित घटक व्यवहारों के नाम बताइयें।

2.6 सारांश (Summary)

व्याख्या कौशल के द्वारा किसी विशेष विषय को कुशलतापूर्वक समझाया जाता है। व्याख्या कौशल में मौखिक अभिव्यक्ति का सहारा लिया जाता है।

2.7 आदर्श उत्तर

छात्र इस के लिये 2.3 भाग को देखें।

छात्र इस के लिये 2.5 भाग को देखें।

2.8 मुख्य शब्द

व्याख्या कौशल – विषय वस्तु को सरल बनाकर प्रस्तुत करना और उसे ग्रहण करने योग्य बनाना।।

2.9 सन्दर्भ पुस्तकें

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – शैदा एवं शैदा, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – भाटिया व नारंग, टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना (2001)

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण – त्यागी गुरसरनदास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1993)

शिक्षण अधिगम की तकनीक – पाण्डेय के०पी०, पंजाब किताब घर, जालन्धर।

यूनिट-IV

भाग-II शिक्षण कौशल

दष्टांत कौशल

(Skill of Illustration with Examples)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

– दष्टांत कौशल का अर्थ बता सकें।

– दष्टांत कौशल के घटकों का वर्णन कर सकें।

– दष्टांत कौशल से सम्बन्धित निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग कर सकें।

– दष्टांत कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना बना सकें।

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 दष्टांत कौशल का अर्थ

3.3 दष्टांत कौशल के घटक

3.4 दष्टांत कौशल संबंधी निरीक्षण अनुसूची

3.5 दष्टांत कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना

3.6 सारांश

3.7 आदर्श उत्तर

3.8 मुख्य शब्द

3.9 सन्दर्भ पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

अपने शिक्षण के दौरान अध्यापक के सामने कई बार ऐसी परिस्थितियाँ आती है कि अच्छे से अच्छे ढंग से वर्णन और व्याख्या करने से वह किसी सिद्धान्त, नियम, संप्रत्यय या अमूर्त विचार अपने छात्रों को स्पष्ट नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए वह निम्न प्रकार से आगे बढ़ सकता हैं :–

(i) वह एक उदाहरण से अपना कार्य प्रारम्भ कर सकता हैं और इसे किसी अमूर्त विचार अथवा संप्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए दष्टांत रूप में प्रयोग कर सकता हैं।

(ii) इसके पश्चात् कुछ अन्य उदाहरणों को दष्टांत रुप में काम में लाया जा सकता हैं।

(iii) इन उदाहरणों की सहायता से विचार या संप्रत्यय संबंधी कुछ विशेष नियमों और सिद्धान्तों की रचना हेतु छात्रों को आवश्यक सहायता दी जा सकती हैं।

(iv) सामान्यीकत नियम अथवा सिद्धान्त से सम्बन्धित कुछ अन्य उदाहरण देने के लिए छात्रों से कहा जा सकता हैं ताकि यह पता चल सके कि उन्होंने सिद्धान्त अथवा नियम को पूरी तरह समझ लिया है या नहीं।

3.2 दष्टांत कौशल का अर्थ (Meaning of Skill Illustration)

जिस प्रक्रिया की चर्चा ऊपर की पक्तियों में की गई है उस का सम्बन्ध दष्टांत कौशल के प्रयोग से हैं। उदाहरणों से तात्पर्य उन परिस्थितियों अथवा वस्तुओं से होता हैं जिन के द्वारा किसी विचार, संप्रत्यय अथवा नियम के अस्तित्व का अथवा उसके प्रयोग का प्रमाण मिलता हैं।

उदाहरणों की सहायता से दष्टांत देने का कार्य निम्न रुपों में सम्पन्न हो सकता हैं :–

(क) शाब्दिक या मौखिक रुप जैसे तुलना करना, घटना या कहानी सुनाना।

(ख) अशाब्दिक रुप जैसे वस्तुंए, मॉडल, चित्र, चार्ट, रेखाचित्र, मानचित्र, नमूने, प्रयोग आदि का प्रदर्शन करना।

उदाहरणों के भली–भांति प्रयोग के लिए यह आवश्यक है कि एक अध्यापक इस कार्य को एक कौशल के रुप में अर्जित करे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि "दष्टान्त कौशल" किसी अमूर्त विचार, संप्रत्यय अथवा नियम को समझाने और उसका उपयोग करने के लिए एक अध्यापक द्वारा अपनाई गई वह कला अथवा तकनीक है जिसके द्वारा उसे समुचित उदाहरणों के चयन, उनके दष्टान्त रूप में प्रयोग करने और उनके द्वारा अपने विद्यार्थियों को वाँछित निष्कर्ष और सामान्यीकरण तक पहुँचाने में पूरी पूरी सहायता मिलती हैं।

3.3 दष्टांत कौशल के घटक (Components of Skill of Illustration)

दष्टांत कौशल से सम्बन्धित मुख्य व्यवहार घटक निम्न हैं :–

(i) सार्थक उदाहरणों का निर्माण (Formulating relevant examples)

किसी उदाहरण को सार्थक तभी समझा जा सकता हैं जबकि वह पढ़ाये जा रहे सप्रत्यय या नियम के लिए एक अच्छा दष्टांत सिद्ध हो सके और उसकी सहायता से उस संप्रत्यय को ठीक प्रकार समझा जा सके।

(ii) सरल उदाहरणों का निर्माण (Formulating simple examples)

सरल उदाहरणों से तात्पर्य उन उदाहरणों से हैं जो विद्यार्थी के पूर्वज्ञान पर आधारित होते हैं और उनके परिपक्वता स्तर से मेल खाते है। एक अध्यापक द्वारा प्रस्तुत उदाहरण इस प्रकार के हैं या नहीं, इसका अनुमान निम्न बातों से लगाया जा सकता हैं :–

(1) शिक्षण क्रिया में विद्यार्थियों में भाग लेने का क्या स्तर हैं?

(2) उदाहरणों के प्रस्तुत करने और उन्हें प्रयोग में लाने हेतु अध्यापक द्वारा पूछे गये प्रश्नों के जो उत्तर विद्यार्थी दे रहे हैं, वे कितने सही और सार्थक हैं।

(iii) रोचक उदाहरणों का निर्माण (Formulating interesting examples)

एक उदाहरण को रोचक तभी कहा जा सकता हैं जबकि वह किसी विचार, संप्रत्यय या नियम को ठीक प्रकार समझने के लिए विद्यार्थियों की रुचि, ज्ञान और जिज्ञासा को आकर्षित कर उसे बराबर बनाए रखने में सहायता कर सके। विद्यार्थियों के लिए किस प्रकार के उदाहरण रोचक होंगें यह उनकी आयु परिपक्वता और पूर्व अनुभवों पर निर्भर करता है। कोई अध्यापक अपने शिक्षण कार्य में रोचक उदाहरण का प्रयोग कर रहा हैं या नहीं, इसका अनुमान विद्यार्थियों द्वारा प्रदर्शित व्यवहार और कक्षा के समग्र वातावरण और अनुशासन आदि से लगाया जा सकता हैं।

(iv) उदाहरणों के लिए उचित माध्यम का प्रयोग (Use of appropriate media to illustrate)

उदाहरणों को शाब्दिक अथवा अशाब्दिक, दोनों प्रकार के विभिन्न माध्यमों जैसे कहानी, चुटकले, मुहावरे और नमूने, मॉडल, मानचित्र तथा प्रयोग प्रदर्शन आदि के रुप में विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत किया जा सकता हैं। अच्छे परिणामों के लिए यह आवश्यक होता हैं कि एक विशेष उदाहरण को उसी के अनुरुप उचित माध्यम में प्रस्तुत किया

जाए। इसका चुनाव करने के लिए निम्न बातों की ओर ध्यान देकर चलना चाहिए –

(क) पढ़ाये जाने वाले विषय अथवा उपविषय की प्रकति।

(ख) विद्यार्थियों की आयु, परिपक्वता और विकास का स्तर।

(ग) विद्यार्थियों द्वारा अर्जित पूर्व अनुभव।

(v) आगमन -निगमन उपागम का प्रयोग (Use of inductive-duductive approach)

इस कौशल के उपयोग को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता हैं :–

(क) किसी संप्रत्यय को समझना अथवा किसी नियम और सिद्धान्त आदि की स्थापना करना।

(ख) स्थापित नियम और सिद्धान्त को प्रयोग मे लाना। पहले कार्य के लिए जहाँ आगमन विधि का प्रयोग उपयुक्त रहता हैं। वहाँ दूसरे के लिए निमगन विधि ठीक रहती है। इस तरह से पूरे कार्य को करने के लिए आगमन और निगमन दोनों विधियों अथवा उपागमों का प्रयोग करना होता है। इस दष्टि से दष्टाँत कौशल का उचित विकास करने के लिए एक अध्यापक को आगमन और निगमन दोनों उपागमों का प्रयोग करना होता हैं।

3.4 दष्टांत कौशल से सम्बन्धित निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule for skill of Illustration)

क्रमांक :– छात्र अध्यापक का नाम :–

विषय :– उपविषय :–

कक्षा :– सत्र : शिक्षण / पुनः शिक्षण

दिनांक :– पर्यवेक्षक :–

टैलियां	व्यवहार घटक	अत्यधिक निराशाजनक से सर्वोत्तम की ओर
प्रत्येक व्यवहार घटक की आवति के संदर्भ में टैलियां लगाना	उदाहरणों की सार्थकता	0 1 2 3 4 5 6
	उदाहरणों की सरलता	0 1 2 3 4 5 6
	उदाहरणों की रोचकता	0 1 2 3 4 5 6
	माध्यमों की उपयुक्तता	0 1 2 3 4 5 6
	विधि अथवा उपागम की उपयुक्तता	0 1 2 3 4 5 6

3.5 दष्टांत कौशल पर आधारित एक आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना (Micro Lesson Plan based on Skill of Illustration)

छात्र अध्यापक का नाम :– क्रमांक :–

विषय :– सामाजिक अध्ययन उपविषय :– पर्यावरण व उसकी परतें

कक्षा :– सत्र :–

दिनांक :– पर्यवेक्षक :–

छात्र अध्यापक क्रियाएं	छात्र अनुक्रियाएँ
(1) मनुष्य को जीवित रहने के लिये किन चीजों की आवश्यकता होती हैं?	रोटी, कपड़ा और मकान
(2) मनुष्य के लिये इसमें से क्या अधिक आवश्यक हैं?	वायु

(3)	वायु क्या हैं?	धरती की विभिन्न परतों पर रहने वाली गैसो का मिश्रण।
(4)	वायु के विभिन्न तत्व कौन–कौन से है?	नाईट्रोजन, आक्सीजन, कार्बन–डाइआक्साइड, आरगान आदि?
(5)	शुद्ध वायु में किस गैस की मात्रा अधिक पाई जाती हैं?	नाइट्रोजन (तुलनात्मक चित्र दिखाते हुए)
(6)	यह कितने प्रतिशत पाई जाती हैं?	78.09 %
(7)	आक्सीजन की मात्रा कितनी पाई जाती हैं?	20.95%
(8)	अन्य गैस कितनी मात्रा में है?	लगभग 1%
(9)	वातावरण की कितनी परते हैं? (चित्र के आधार पर बताओं)	वातावरण की पांच परते हैं।
(10)	वर्षा, आंधी, तूफान क्यों आते हैं।	पर्यावरण की पहली परत के कारण।
(11)	ओजोन परत से हमें क्या लाभ हैं?	सूर्य की तेज गर्मी हमारे तक नहीं पहुँच पाती।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) दष्टांत कौशल से आप क्या समझते हो?

(ii) दष्टांत कौशल पर आधारित एक सूक्ष्म पाठ योजना बनाइये।

3.6 सारांश (Summary)

उदाहरणों की सहायता से दष्टांत कौशल प्रयोग द्वारा, घटना या कहानी सुनाना या आशब्दिक वस्तुएँ, मॉडल, चित्र, चार्ट, रेखाचित्र, नमूने आदि से विषम वस्तु के बारे में पूरी जानकारी दी जा सकती है।

3.7 आदर्श उत्तर

(i) समुचित उदाहरणों के चयन उनके दष्टान्त रूप में प्रयोग करने की कला अथवा तकनीक दष्टान्त कौशल कहलाता है।

(ii) इस का उत्तर भाग 3.5 में देखें।

3.8 मुख्य शब्द

शाब्दिक दष्टांत – ऐसे दष्टांत जिनकी व्याख्या अध्यापक शब्दों की सहायता से करता है जैसेः– तुलना करना, घटना या कहानी सुनाना।

अशब्दिक दष्टांत–ऐसे दष्टांत जो स्वयं शब्दों की सहायता से व्याख्या करते हुए नहीं होते बल्कि अध्यापक इनकी सहायता से व्याख्या करता है जैसेः–मॉडल, चित्र, चार्ट, रेखाचित्र, नमूना आदि।

3.9 सन्दर्भ पुस्तकें

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – शैदा एवं शैदा, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – भाटिया व नारंग, टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना (2001)

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण – त्यागी, गुरसरनदास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1993)

शिक्षण अधिगम की तकनीकी – पाण्डेय के०पी०, पंजाब किताब घर, जालन्धर।

यूनिट-IV

भाग-II शिक्षण कौशल

उद्दीपन परिवर्तन कौशल

(Skill of Stimulus Variation)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

– उद्दीपन परिवर्तन कौशल का अर्थ बता सकें।

– उद्दीपन परिवर्तन कौशल के घटकों का वर्णन कर सकें।

– उद्दीपन परिवर्तन कौशल से सम्बन्धित निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग कर सकें।

– उद्दीपन परिवर्तन कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना बना सकें।

संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्दीपन परिवर्तन कौशल का अर्थ

4.3 उद्दीपन परिवर्तन कौशल के घटक

4.4 उद्दीपन परिवर्तन कौशल संबंधी निरीक्षण अनुसूची

4.5 उद्दीपन परिवर्तन कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना

4.6 सारांश

4.7 आदर्श उत्तर

4.8 मुख्य शब्द

4.9 सन्दर्भ पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्यायों में आप ने कुछ शिक्षण कौशलों का अध्ययन किया। इस अध्याय में आप उद्दीपन परिवर्तन कौशल के संबंध में अध्ययन करेंगें। यदि अध्यापक एक ही स्थिति में पढ़ाता रहे तो विद्यार्थी विषय–वस्तु में अरुचि दर्शाने लगते है। इसे रुचिकर बनाने के लिए अध्यापक के द्वारा समय–समय पर उद्दीपन परिवर्तित किए जाते है।

4.2 उद्दीपन परिवर्तन कौशल का अर्थ (Meaning of Skill Stimulus Variation)

सामान्यतया एक शिक्षक अपने विद्यार्थियों से कोई अपेक्षित अनुक्रिया की प्राप्ति के लिए किसी विशेष उद्दीपक का प्रयोग करता है। प्रश्न पूछना, श्यामपट्ट की और इशारा करना, चित्र या वस्तु दिखाना आदि इसी प्रकार के उद्दीपन है जिनकी सहायता से वह विद्याार्थियों के ध्यान को अपनी ओर तथा विषय वस्तु की और आकर्षित ओर केन्द्रित करने का प्रयास करता

है उसका यह प्रयास उस मदारी के समान होता है जो कई प्रकार के साधन अपना कर दर्शक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करता है और फिर बराबर उनके ध्यान और रुचि को अपने कार्यो में बनाये रखता हैं। उनके इन सब कार्यो में एक बात देखने को मिलती है कि न तो वह ध्यान आकर्षित करने या रूचि बनाने वाले किसी साधन या करतब को किसी लम्बे समय तक दिखाने का प्रयास करता है और न वह हर समय एक जैसे करतब दिखाता है। अपने साधनों या करतबों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाने में ही उसकी सफलता निहित है। ठीक यही बात शिक्षक और उसके शिक्षण पर लागू होती हैं। किसी एक उद्दीपक का लम्बे समय तक उपयोग करने अथवा उसकी पुनरावति करते रहने से उसकी प्रभावशीलता समाप्त हो जाती है। अरुचि होने अथवा ध्यान हटने का भी वह कारण बन सकता है। इस अवस्था के उद्दीपनों के प्रयोग में परिवर्तन कौशल लाना अध्यापक के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। इस तरह से उद्दीपक परिवर्तन कौशल से अभिप्राय उस शिक्षण तकनीक अथवा कौशल से है जिसके द्वारा एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों का ध्यान कक्षा गतिविधियों की ओर आकर्षित एवं केन्द्रित करने हेतु उपयोग में लाये जाने वाले विभिन्न उद्दीपको के प्रयोग में अपेक्षित परिवर्तन लाने में अधिक से अधिक सफल हो सकता है।

4.3 उद्दीपन परिवर्तन कौशल के घटक (Components of Skill of Stimulus Variation)

उद्दीपक परिवर्तन कौशल में शिक्षण व्यवहार सम्बन्धी निम्न घटकों का समावेश होता हैं :–

1. अध्यापक संचालन (Teacher's Movement)

गतिशील वस्तुएं स्थिर वस्तुओं की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह से ध्यान आकर्षित करती है। इस दष्टि से कक्षा में पढ़ाते समय एक अध्यापक को कभी भी एक ही जगह एक ही स्थिति में रहकर नहीं पढ़ाना चाहिए। उसे आवश्यकतानुसार हिलडुल कर, इधर–उधर चलकर, हाथ पैर हिला कर खड़े होने की स्थिति में परिवर्तन लाकर अपने शारीरिक संचालन में पर्याप्त विविधता लाने का प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु यहाँ इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए कि अनावश्यक इधर उधर घूमने, हिलने डुलने और बहुत अधिक संचलन से बजाय लाभ के हानि की अधिक संभावना होती है। अध्यापक की ऐसी गतिविधियाँ हास्य का कारण अथवा ध्यान भंग करने का कारण बन सकती है। अतः एक अध्यापक को उपयुक्त संचालन व्यवहार में पर्याप्त कुशलता अर्जित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

2. अध्यापक के हाव-भाव (Teacher's Gestures)

अपने शिक्षण में जो बात अध्यापक अपने विद्यार्थियों से मौखिक रुप में कहना चाहता है उसमें उसके हाव भाव और मुद्रा का काफी सहयोग रहता है। इस अशाब्दिक और संकेतमयी भाषा से वह सब कुछ कह जाता है, जिसे ओर तरह से संप्रेषित करना सम्भव नहीं होता। बहुत बड़ा, बहुत छोटा, चपटा आदि वह सब बताने के लिए एक अध्यापक हाथों के संकेत से बहुत अच्छी तरह से अभिव्यक्त कर सकता है। नयन संचालन, मुख मुद्रा, हाथ पैरों तथा अन्य अंगों द्वारा किये गये संकेत एवं इशारे आदि सभी इसी श्रेणी में आते है। इनके द्वारा छात्रों के ध्यान को कक्षा शिक्षण में आकर्षित एवं केन्द्रित करने का कार्य अच्छी तरह से किया जा सकता है।

3. स्वर में परिवर्तन (Change in speech pattern)

इस कौशल घटक का सम्बन्ध उस शिक्षण व्यवहार से है जिसके अर्न्तगत एक शिक्षक अपनी आवाज में चढ़ाव उतार लाने, उसकी गति को कम या अधिक करने और अपने बोलने या उच्चारण के ढ़ग में विशेष परिवर्तन लाने से सम्बन्धित क्रियाएं करता है। वाक कला में लाये गए परिवर्तन विद्यार्थियों का ध्यान कक्षा कार्य की ओर आकर्षित एवं केन्द्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4 केन्द्रण (Focussing)

इस घटक का सम्बन्ध शिक्षण व्यवहार सम्बन्धी उन क्रियाओं से है जिनके द्वारा विद्यार्थियों का ध्यान वस्तु, शब्द, विचार, संप्रत्यय या प्रनियम आदि किसी विशेष शिक्षण बिन्दु पर केन्द्रित करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार की व्यवहार क्रियाए निम्न हो सकती हैंः–

(क) मौखिक कथनों का प्रयोग जैसे – इस मानचित्र में यहाँ देखिए, श्यामपट्ट पर लिखे वाक्य में इस शब्द का विचार कीजिए आदि।

(ख) हाव भाव का प्रयोग

(ग) मौखिक कथन और हाव भाव दोनों का प्रयोग

5. अन्तःक्रिया शैली परिवर्तन (Change in interaction style)

कक्षा में चल रही संप्रेषण प्रक्रिया अन्तः क्रिया कहलाती है। इस अन्त क्रियाके मुख्यतया तीन रूप अथवा शैलियाँ देखने को मिलती हैं :–

(क) अध्यापक–विद्यार्थी अन्तः क्रिया – इमसें अध्यापक और किसी एक विद्यार्थी के बीच संप्रेषण चलता है।

(ख) अध्यापक कक्षा अन्तः क्रिया – इसमें किसी एक विद्यार्थी के स्थान पर सम्पूर्ण कक्षा के साथ अध्यापक का सप्रेषण चलता है।

(ग) विद्यार्थी – विद्यार्थी अन्तः क्रिया :–इसमें संप्रेषण क्रिया विद्यार्थियों के बीच ही चलती है। यहाँ अध्यापक का कार्य तो ऐसी परिस्थितियां पैदा करना और इस क्रिया पर उचित नियंत्रण रखना होता है।

एक ही प्रकार की कक्षा अन्तःक्रिया शिक्षण अधिगम को नीरस और प्रभावहीन बना सकती हैं। अतः एक अध्यापक को विभिन्न अन्तक्रिया शैलियों के प्रयोग में विविधता लाने की कला में पर्याप्त कुशलता अर्जित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

6. मौन अथवा विराम (Pausing)

पढ़ाते समय अगर कोई अध्यापक अचानक ही थोड़ी देर के लिए मौन धारणा कर ले और इस प्रकार से उसके शिक्षण में कुछ देर के लिए विराम आ जाए तो इस क्रिया को मौन विराम की संज्ञा दी जाती है। ध्यान आकर्षित एवं केन्द्रित करने की यह एक उपयोगी तकनीक है। यह एक ऐसी ही बात है कि कमरे में टिक् टिक् करती हुई दीवार घड़ी अगर एक दम चुप हो जाए तो हमारा ध्यान बरबस उसकी और आकर्षित हो जाता है। इस दष्टि से एक अध्यापक को मौन या विराम युक्ति का कक्षा शिक्षण में ध्यान आकर्षित एवं केन्द्रित करने हेतु प्रयोग में लाने का अभ्यास करना चाहिए। साधारणतया इस दिशा में दो या तीन सैकेण्ड का अल्प मौन ही अधिक प्रभावशाली रहता है।

7. मौखिक-दश्य बदलाव (Change in oral-visual)

अपने कक्षा शिक्षण में प्रायः या तो अध्यापक मौखिक रुप से अपनी बात कहता है अथवा इसके लिए दश्यों साधनों का प्रयोग करता है। इन दोनों में किसी एक ही माध्यम का लगातार प्रयोग पाठ को नीरस एवं प्रभावहीन बना सकता है। अतः एक अध्यापक को अभिव्यक्ति के इन माध्यमों में यथानुकूल परिवर्तन लाते रहना चाहिए। इन परिवर्तनों के निम्न रुप हो सकते हैं :–

(i) मौखिक से दश्य

(ii) दश्य से मौखिक

(iii) मौखिक और दश्य दोनों माध्यमों का एक साथ प्रयोग।

8. विद्यार्थियों का क्रियात्मक सहयोग (Active involvement of Students)

कक्षा शिक्षण में विद्यार्थी कई तरह से अपना क्रियात्मक सहयोग प्रदान करते हैं। उनको श्यामपट्ट पर कुछ लिखने अथवा समझने के लिए बुलाया जाता हैं, प्रयोगों एवं परीक्षणों में उनकी सहायता ली जाती है, दश्य सामग्री और साधनों के प्रयोग में भी वे आवश्यक मदद पहुँचाते है और किसी शिक्षण संप्रत्यय या विचार से सम्बन्धित अभिनय रसानुभूति अथवा क्रिया पाठों में अपना सहयोग प्रदान करते हैं आदि। इस प्रकार के विभिन्न क्रियात्मक सहयोगों में यथेष्ट विविधता एवं परिवर्तन लाने से एक अध्यापक को शिक्षण वस्तु पर विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित

एवं केन्द्रित करने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। अतः शिक्षण कौशल के इस घटक का भी पूरा अभ्यास किया जाना चाहिए।

4.4 उद्दीपक परिवर्तन कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule for Skill of Stimulus Variation)

अध्यापक का नामः— क्रमांक :—

कक्षा :— सत्र शिक्षण / पुनः शिक्षण

विषय :— उपविषय :—

दिनांक :— पर्यवेक्षण :—

टैलियां	**व्यवहार घटक**	**गुणात्मक मूल्यांकन (रेटिंग)**
अलग अलग व्यवहार घटको की आवति के संदर्भ में टैलियां लगाना	1. संचलन	0 1 2 3 4 5 6
	2. हाव भाव	0 1 2 3 4 5 6
	3. वाक् सरुप परिवर्तन	0 1 2 3 4 5 6
	4. केन्द्रण	0 1 2 3 4 5 6
	5. अन्तः क्रिया शैली परिवर्तन	0 1 2 3 4 5 6
	6. मौन विराम	0 1 2 3 4 5 6
	7. मौखिक दश्य बदलाव	0 1 2 3 4 5 6
	8. विद्यार्थियों का क्रियात्मक सहयोग	0 1 2 3 4 5 6

4.5 उद्दीपन परिवर्तन कौशल पर आधारित एक सूक्ष्म पाठ योजना (Micro Lesson Plan based on Skill of Stimulus Variation)

छात्र अध्यापक का नाम — क्रमांक —

विषय— सामाजिक अध्ययन उपविषय— सार्वजनिक सम्पति

कक्षा—IV अवधि — 6 मिनट

	अध्यापक क्रियाएं	**छात्र अनुक्रियाएं**
1.	प्रतिदिन हम कौन सी सार्वजनिक सम्पति का प्रयोग करते हैं?	स्कूल, बस, पुस्तकालय आदि। (संचलन)
2.	ऐतिहासिक सम्पति से क्या तात्पर्य है?	जो इतिहास से सम्बन्धित हो। (हाव—भाव)
3.	कुछ ऐतिहासिक सम्पतियों के नाम बताओं?	लालकिला, ताज महल, कुतुबमिनार, (वाक् स्वरुप परिवर्तन)
4.	संग्रहालय हमें किस प्रकार की सूचनाएं प्रदान करता है।	प्राचीन काल की सूचनाएं देता है। (केन्द्रण)

5.	आपके स्कूल में कौन–कौन सी सार्वजनिक सम्पतियाँ है,	चित्र के आधार पर।
6.	आप अपनी शिक्षण संस्था में कौन से स्थान को अधिक पसंद करते हैं।	अध्यापक की बात को विद्यार्थी ध्यान से सुनेगें।
7.	पुस्तकालय के प्रति हमारे क्या दायित्व हैं?	समय समय पर विद्यार्थी कापी में साथ साथ लिखते रहेगें।
8.	हमें पुस्तकों को खराब क्यों नही करना चाहिए?	
9.	पुस्तकों के कागज को नहीं फाड़ना चाहिए?	चित्र दिखाकर विद्यार्थी को समझाया जायेगा।
10.	समाचार पत्र तथा मैगजीन का सही प्रयोग करना चाहिए।	

अपनी प्रगति जांचिए

(i) उद्दीपन परिवर्तन कौशल के घटकों का वर्णन करों।

4.6 सारांश (Summary)

गतिशील वस्तुएँ स्थिर वस्तुओं की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह से ध्यान आकर्षित करती है। कक्षा की गतिविधियों को आकर्षित एवं केन्द्रित करने के लिये विभिन्न उद्दीपकों के प्रयोग से अपेक्षित परिवर्तन लाने में अधिक से अधिक हो सकता है।

4.7 आदर्श उत्तर

(i) संचालन

(ii) हाव भाव

(iii) वाक् सरूप परिवर्तन

(iv) केन्द्रण

(v) अन्तः क्रिया शैली परिवर्तन

(vi) मौन विराम

(vii) मौखिक दश्य बदलाव

(viii) विद्यार्थियों का क्रियात्मक सहयोग

4.8 मुख्य शब्द

सार्वजनिक – जो सब के लिये हो।

केन्द्रण – शिक्षण व्यवहार सम्बन्धी वह क्रिया जिसके द्वारा विद्यार्थियों का ध्यान वस्तु, शब्द, विचार, संप्रत्यय आदि किसी विशेष शिक्षण बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है।

4.9 सन्दर्भ पुस्तकें

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – शैदा एवं शैदा, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – भाटिया व नारंग, टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना (2001)

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण – त्यागी, गुरसरनदास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1993)

शिक्षण अधिगम की तकनीकी – पाण्डेय के०पी०, पंजाब किताब घर, जालन्धर।

यूनिट-IV

भाग-II शिक्षण कौशल

मानचित्र अध्ययन कौशल (Skill of Map Reading)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि :–

– मानचित्र परिवर्तन कौशल के संप्रत्यय का वर्णन कर सकें।

– मानचित्र की उपयोगिता बता सकें।

संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 मानचित्र अध्ययन कौशल–संप्रत्यय

5.3 मानचित्र की उपयोगिता

5.4 सारांश

5.5 आदर्श उत्तर

5.6 मुख्य शब्द

45.7 सन्दर्भ पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

साधारण प्रयोग में मानचित्र की परिभाषा इस प्रकार की जाती है, "यह पथ्वी या उसके किसी भाग का एक समतल पर उसी अनुपात में प्रतिदर्शन है।" इस परिभाषा से हमको ज्ञात होता है कि केवल उसी चित्र को मानचित्र कहा जाता है जो पथ्वी या उसके किसी भाग को प्रकट करता है। मानचित्र के द्वारा मुख्यतः पथ्वी या उसके किसी भाग को प्रकट किया जा सकता है, एक ही वस्तु को यदि भिन्न भिन्न स्थानों से देखा जाय तो वस्तु के रुप में अन्तर हो जाता है। इसलिए यह प्रश्न उठता है कि पथ्वी के किसी स्थान से दिखाई देने वाले रुप का मानचित्र में प्रतिदर्शन होता है। प्रस्तुत अध्याय में आप मानचित्र एवं इसके अध्ययन संबंधी कौशल का अध्ययन करेंगें।

5.2 मानचित्र अध्ययन कौशल - संप्रत्यय (Concept of Skill of Map Reading)

मानचित्र में सदैव पथ्वी के उस रुप का प्रतिदर्शन किया जाता है, जो उसको ऊपर से देखने में प्रतीत होता है। ऊपर से देखने पर प्रत्येक वस्तु चपटी अर्थात् केवल उसकी लम्बाई और चौड़ाई ही दिखाई देती है। यही कारण है कि मानचित्र में मकान पेड़ तथा पर्वत इत्यादि की केवल लम्बाई और चौड़ाई ही दिखाई जाती है। इन वस्तुओं का तीसरा नाप 'ऊचाई' मानचित्रों में प्रकट नहीं किया जाता है।

दूसरा प्रश्न यह है कि पथ्वी पर या उसके किसी एक भाग में हमे अनेकों वस्तुएं जैसे पर्वत, पठार, नदी या नगर इत्यादि दिखाई पड़ते हैं। इन सबको समतल कागज पर किस प्रकार प्रकट किया जा सकता हैं? इसको प्रकट करने के लिए मानचित्र में अनेको चिन्हों का प्रयोग किया जाता है, जो सर्वमान्य है। नदी, नगर, रेल, सड़क तथा पुल इत्यादि प्रत्येक वस्तु के लिए

कुछ परम्परागत चिन्ह है। मानचित्र में केवल इन परम्परागत चिन्हों का ही प्रयोग किया जा सकता हैं, अन्य का नही। इसलिये मानचित्र की ठीक परिभाषा इस प्रकार है "यह पथ्वी या उसके विशेष भाग के ऊपर से दिखाई देने वाले रुप का एक समतल कागज अथवा धरातल पर उसी अनुपात में वह प्रतिदर्शन है जिसमें कुछ परम्परागत चिन्हों का प्रयोग किया गया हों।"

मानचित्र के प्रतिदर्शन का वास्तविक वस्तु के क्षेत्र से एक विशेष अनुपात होता हैं या अन्य शब्दों में मानचित्र उस भाग के वास्तविक क्षेत्र का केवल एक छोटा सा भिन्न होता है। इस भिन्न या अनुपात को मापक कहते हैं। मानचित्र पर मापक का होना नितांत आवश्यक है।

मानचित्र पर मापक के होने का अर्थ है कि उस पर अक्षांश तथा देशान्तर रेखाएँ किसी विशेष प्रक्षेप के अनुसार खींची गई हैं। इसलिए कोई भी मानचित्र बिना प्रक्षेप की सहायता के नही खींचा जा सकता।

मानचित्रों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। पहली श्रेणी का मुख्य आधार किसी क्षेत्र की विशेष बातों को प्रकट करने से है। भिन्न भिन्न कार्यो के लिए भिन्न भिन्न मानचित्रों का प्रयोग किया जाता है, जिससे गलती की सम्भावना न रहे। दूसरी श्रेणी में मानचित्रों का विभाजन उनमें प्रयोग किये गये मापक के अनुसार होता है।

कल्पना कीजिए यदि विद्यार्थियों को भारत के क्षेत्र के विस्तार की जानकारी देनी हो तो उन्हें कैसे समझाया जाये। यह जानकारी केवल मानचित्र के आधार पर ही दी जा सकती है। लेकिन यह जानकारी देने के लिए मानचित्र का अध्ययन कैसे किया जाए। यह जानना भी आवश्यक है। मानचित्र को निम्नलिखित प्रकार अध्ययन किया जाता हैं –

1. दिशाओं का प्रयोग करके (Using directions)

मानचित्र दिशा का ज्ञान कराते हैं। ग्लोब को पथ्वी का मॉडल कहा जाता है। इसमें रेखाओं का जाल बना हुआ है के जिसके उत्तर तथा दक्षिण में ध्रुव है और काल्पनिक रेखाएं है। इसमें भूमध्य रेखा, कर्क तथा मकर रेखा बनी है। इस पर बने चित्र से हम पथ्वी के छोटे से छोटे प्रदेश की जानकारी प्राप्त कर सकते है। यह रेखाए समय दिशा की भी जानकारी देती है। मध्याह रेखाएं उत्तर तथा दक्षिण दिशा की जानकारी देती है। उत्तर सदैव उत्तर ध्रुव तथा दक्षिण सदैव दक्षिण ध्रुव की तरफ रहता है। इस जानकारी के आधार पर विद्यार्थी दिशाओं की जानकारी ग्लोब पर बने मानचित्र के आधार पर देते हैं।

2. दूरी की जानकारी देकर (Using Distance)

मानचित्र पर मापक का प्रयोग करके मानचित्र से सम्बन्धित जानकारी दी जा सकती है।

(i) **साधारण कथन द्वारा:**– उदाहरणार्थ एक सेंटीमीटर बराबर है दो किलोमीटर। इसका तात्पर्य यह है कि मानचित्र पर यदि दो स्थानों की दूरी एक सेंटीमीटर है तो वास्वविक क्षेत्र में उन्ही स्थानों के बीच की दूरी दो किलोमीटर होगी।

(ii) **अनुपात अथवा प्रदर्शक भिन्न :-** बहुधा मानचित्रों में मापक को प्रकट करने के लिए भिन्न का प्रयोग किया जाता है। इस भिन्न में अंश सदैव एक होता है, इसके द्वारा मानचित्र की लम्बाई प्रकट की जाती है। इस भिन्न के द्वारा वास्तविक क्षेत्र की लम्बाई प्रकट की जाती है।

इस प्रकार यदि मानचित्र पर भिन्न 1/100,000 दी हुई है जिसको कभी कभी 01:100,000 भी लिखा जाता है तो इसका तात्पर्य है कि मानचित्र पर एक सेन्टीमीटर पथ्वी पर 100,000 सेंटीमीटर अथवा 1 किलोमीटर को प्रकट करता है। इस भिन्न को प्रदर्शक भिन्न कहते हैं। इसलिए प्रदर्शक भिन्न =मानचित्र की दूरी/पथ्वी की दूरी

इस प्रकार मापक को प्रदर्शक भिन्न द्वारा प्रकट करने में एक सबसे बड़ा लाभ यह है कि उसको नाप की किसी इकाई में परिणंत किया जा सकता है।

(iii) **चित्र द्वारा :-** शीध्रता से पढ़ने के लिए उसका चित्र द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। मानचित्र के नीचे के भाग में एक साधारण सीधी रेखा खींच दी जाती है। इसको सुविधानुसार अन्य छोटे छोटे भागों में उसी अनुपात में बांट दिया जाता है जो अनुपात मानचित्र पर पथ्वी के साथ होता है।

3. रंगों के द्वारा (Using colours)

मानचित्रों पर विश्व में, देशों में विभिन्नता, जनसंख्या, खनिज पदार्थ, कषि, व्यापार के आधार पर दिखाई जा सकती है। इसके लिये मानचित्र पर रंगों का प्रयोग किया जाता है। अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रंगों का प्रयोग सही करें। इससे अध्यापक घटनाओं, तिथियों, लक्षण की जानकारी देकर विविधता ला सकता है। इससे किसी स्थान की सांस्कतिक, भौतिक, राजनैतिक, भूगौलिक स्थिति की जानकारी, धरातल की रचना, घनी आबादी वाले देश, कम आबादी वाले देश, विकसित तथा विकासशील देश का ज्ञान मानचित्र द्वारा करवा सकता हैं।

4. संकेतो द्वारा (Using Symbols)

मानचित्रों की सांकेतिक भाषा द्वारा रेल मार्गों, सड़को, शहरों, नदियों, समुन्द्रो, पठारों, घाटियों तथा समतल भूमि का ज्ञान दिया जा सकता है। पथ्वी के धरातल पर पाई जाने वाली अनगिनत आकतियों तथा वस्तुओं को प्रकट करने के लिये मानचित्रों में विशेष चिन्हों या परम्परागत चिन्हों का प्रयोग किया जाता है जो सैनिको के भी काम आता है।

5. क्षेत्रफल द्वारा (Using Area)

दो महाद्वीप अथवा दो देशों के क्षेत्र का तुलनात्मक अध्ययन करवाया जा सकता हैं। यदि वह दोनों एक ही मानचित्र पर है तथा एक ही मापक द्वारा बनाए हुए हैं तो अध्यापक उन्हें दो बिन्दुओं के बीच की प्रदर्शित दूरी उन्हीं दो स्थानों के बीच की प्रत्यक्ष दूरी के परस्पर सम्बन्ध को मापकर बता सकता हैं।

मानचित्र मुख्य रुप से तीन प्रकार के होते हैं – फ्लैट मानचित्र, राहत मानचित्र, स्कैच मानचित्र।

5.3 मानचित्रों की उपयोगिता (Uses of Maps)

मानचित्रों की सामाजिक अध्ययन शिक्षण में निम्नलिखित उपयोगिता हैं :–

1. पाठ को रुचिकर बनाने में सहायक (Helpful in making the lesson interesting)

मानचित्रों की सहायता से पाठ को रूचिकर बनाया जा सकता हैं, क्योंकि यह वास्तविक रुप दिखाने में मदद करते है। सर्वप्रथम सरल मानचित्र दिखाकर बच्चों में रुचि को पैदा किया जा सकता हैं।

2. उपयुक्त जानकारी (Relevant Information)

मानचित्र द्वारा पथ्वी के धरातल से सम्बन्धित भागों को प्रदर्शित किया जा सकता हैं। कौन सा स्थान किसी दूसरे स्थान से कितनी दूरी पर है। किसी विशेष फसल, खनिज सम्पदा आदि का विवरण देश या संसार की दष्टि से कैसा है? इस तरह की बहुत सी बातों की जानकारी प्राप्त करने की दष्टि से मानचित्र से उपयुक्त कोई साधन नहीं हैं।

3. कठिन ज्ञान को सरल बनाने में सहायक (Helpful in making the difficult knowldege easy)

विभिन्न राज्यों की सीमाओं का ज्ञान, राजधानियों की जानकारी, महत्वपूर्ण स्थानों के विवरण को मानचित्र की सहायता से सरल ढंग से दिया जा सकता हैं।

4. जलवायु तथा वनस्पति की जानकारी (Information about climate and vegetation)

किसी भी स्थान की जलवायु, वनस्पति आदि की जानकारी मानचित्र द्वारा सरलता से प्राप्त की जा सकती है।

5. ऐतिहासिक घटनाओं का उपयुक्त ज्ञान (Proper knowledge of Historical events)

मानचित्रों द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं को विद्यार्थियों के समक्ष उपयोगी ढंग से पढ़ाया जा सकता हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) मानचित्र का अध्ययन किस प्रकार से किया जाता हैं?

5.4 सारांश (Summary)

मानचित्र के द्वारा सारी पथ्वी को प्रदर्शित किया जा सकता है। हम पथ्वी के किसी भाग को भी इस के द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं। अध्ययन कराते समय मानचित्र के प्रयोग को प्रभावी बनाया जा सकता है तथा बच्चों पर इसका अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

5.5 आदर्श उत्तर

(i) मानचित्र का उपयोग निम्न प्रकार से किया जा सकता हैं :–

(1) दिशाओं का प्रयोग करके

(2) दूरी की जानकारी देकर

(3) रंगों के द्वारा

(4) संकेतों द्वारा

(5) क्षेत्रफल द्वारा

5.6 मुख्य शब्द

मानचित्र – पथ्वी या उसके विशेष भाग के ऊपर से दिखाई देने वाले रूप का समतल कागज अथवा धरातल पर उसी अनुपात में वह प्रतिदर्शन है, जिसमें कुछ परम्परागत चिन्हों का प्रयोग किया हो।

5.7 सन्दर्भ पुस्तकें

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – शैदा एवं शैदा, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, (1991)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण – भाटिया व नारंग, टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना (2001)

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण – त्यागी, गुरसरनदास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (1993)

शिक्षण अधिगम की तकनीकी – पाण्डेय के०पी०, पंजाब किताब घर, जालन्धर।

Teaching Social Studies in High School – Edgar B.W and Stanlay P.W., Boston D.C.

यूनिट-V

मूल्यांकन का अर्थ, आवश्यकता एवं उद्देश्य (Meaning, Need and Objectives of Evaluation)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जांएगे कि –

– मूल्यांकन का अर्थ बता सकें।

– मूल्यांकन की विशेषताओं की सूची बना सकें।

– मूल्यांकन की आवश्कता व उसके महत्व का वर्णन कर सकें।

– मूल्यांकन के उद्देश्यां की व्याख्या कर सकेंगें।

संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 मूल्यांकन का अर्थ

1.3 मूल्यांकन की विशेषताएँ

1.4 मूल्यांकन की आवश्यकता एवं महत्व

1.5 मूल्यांकन के उद्देश्य

1.6 सारांश

1.7 आदर्श उत्तर

1.8 मुख्य शब्द

1.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा समाज के लिये उपयोगी है तथा समय–समय पर इसका मूल्यांकन अति आवश्यक है। मूल्यांकन केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं होता अपितु जीवन की प्रत्येक क्रिया के लिये महत्त्वपूर्ण होता हैं। जिस प्रकार डॉक्टर अपनी दवा का प्रभाव रोगी में होने वाले परिवर्तनों से लेता है उसी प्रकार शिक्षक अपने बच्चों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन का मूल्यांकन विभिन्न विधियों से करता हैं। मूल्यांकन एक ऐसा माध्यम हैं जो अध्यापक द्वारा अपनाई जाने वाली विधियों एवं विधार्थी की सफलता को मापता हैं।

1.2 मूल्यांकन का अर्थ (Meaning of Evaluation)

साधारण अर्थो में कहा जा सकता हैं कि किसी वस्तु, उपलब्धि, प्रक्रिया आदि का मूल्य अंकित करना मूल्यांकन कहलाता हैं। शिक्षण सत्र के द्वारा विद्यार्थियों की जो मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक परिक्षायें ली जाती हैं उनके द्वारा वस्तुतः उनकी उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाता हैं। मूल्यांकन की वास्तविक धारणा को समझने के लिये कुछ विद्वानों के विचारो का उल्लेख करना उचित होगा।

"मूल्यांकन एक क्रमिक प्रक्रिया हैं जो सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का महत्त्वपूर्ण अंग हैं।"

मफात के अनुसार, "मूल्यांकन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह छात्रों को औपचारिक शैक्षणिक उपलब्धियों की अपेक्षा करता है।"

जे०वी० मिरवाईल के अनुसार, "मूल्यांकन एक समावेशित धारणा हैं जो इच्छित परिणामों के गुण, महत्त्व तथा प्रभावशाली का निर्णय करने के लिये समस्त प्रकार के प्रयासों व साधनों की ओर संकेत करता हैं।"

सी०सी० रास के अनुसार, "मापन से भिन्न मूल्यांकन ऐसी जाँच प्रक्रिया है जो प्रायः बच्चे के समूचे व्यक्तित्व तथा समूची शिक्षा स्थिति की जाँच के लिये प्रयुक्त होती है।"

डा० हिल का विचार हैं, "पुरानी प्रणाली में परीक्षा पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधि को निर्देशित किया करती थी जबकि नई प्रणाली में परीक्षा एवं शिक्षण दोनों विशिष्ट शिक्षण उद्देश्यों द्वारा निर्धारित किये जायेगे। अतः इन्हीं पर समूची शिक्षा एवं मूल्यांकन निर्धारित होने चाहिए।"

इस प्रकार इन विचारों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हैं कि मूल्यांकन ऐसी प्रक्रिया है जो विद्यार्थियों की विभिन्न उपलब्धियों, रूचियों, योग्यताओं, कुशलताओं तथा अभिवत्तियों की जांच करती हैं, भावी विकास में उनका मार्गदर्शन करती हैं तथा शिक्षण–प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न विधियों तथा विभिन्न शिक्षण साधनों की उपयोगिताओं की जांच करके उनके परिवर्तन तथा संशोधन का मार्ग प्रशस्त करती हैं। यह एक सतत प्रक्रिया है जो समूची शिक्षा पद्धति की उपयोगिताओं तथा अनुपयोगिताओं की जांच करके उसके भावी विकास को निर्देशित करती हैं।

1.3 मूल्यांकन की विशेषताएँ (Characteristics of Evaluation)

मूल्यांकन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

(1) मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया हैं।

(2) यह शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है, जो शिक्षा के उद्देश्यों से सम्बन्ध रखती हैं।

(3) मूल्यांकन में छात्रों के व्यवहार सम्बन्धित सामग्री एकत्रित की जाती हैं।

(4) मूल्यांकन केवल निर्देशन नहीं देता वरन् विधार्थी के व्यवहार को उन्नत बनाने के साधनों की भी जानकारी देता हैं।

संक्षेप में, शिक्षण द्वारा बालकों में ऐसे अनुभव उत्पन्न किए जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनमें वांछित व्यावहारिक परिवर्तन हो जाए। मूल्यांकन इस बात को स्पष्ट कर देता हैं कि शिक्षण को प्राप्त करने में विद्यार्थी किस सीमा तक सफल हुआ हैं और उसमें कितना व्यवहार परिवर्तन हुआ हैं। इस व्यवहार परिवर्तन में बालकों के तीनों मानसिक पक्ष, ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक सम्मिलित हैं। मूल्यांकन की प्रक्रिया के द्वारा यह निश्चित किया जाता हैं कि बालकों के उक्त तीनों मानसिक पक्षों में कितना परिवर्तन हुआ हैं। इस प्रकार मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालकों के व्यावहारिक परिवर्तनों के सम्बन्ध में साक्ष्यों को एकत्रित करके उनकी व्याख्या की जाती हैं।

1.4 मूल्यांकन की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Evaluation)

अधिकांश विद्वान 'मूल्यांकन' को विद्यार्थियों की उपलब्धियों तथा योग्यताओं की जांच करने और समूची शिक्षा पद्धति के गुण दोषों का विश्लेषण करने की सतत् प्रक्रिया मानते हैं। यह प्रक्रिया तब से आरम्भ हो जाती हैं जब विद्यार्थी स्कूल में दाखिल होता है क्योंकि दाखिल होते ही अध्यापकों को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार तथा शिक्षा के उद्देश्यों को सामने रखते हुए अपनी शिक्षण प्रक्रिया आरम्भ करनी होती हैं और समय समय पर देखते रहना होता हैं कि उसकी शिक्षण प्रक्रिया कितनी सफल हो रही हैं तथा विद्यार्थी में वाछिंत परिवर्तन हो रहे हैं या नहीं। समय समय पर की जाने वाली यह जांच ही

वस्तुतः मूल्यांकन का अंग है। कहने का तात्पर्य यह है कि सतत् रूप से चलने वाली 'मूल्यांकन प्रक्रिया' विद्यार्थियों, अध्यापकों प्रबन्धकों, शिक्षा अधिकारियों, नीति–निर्माताओं तथा शिक्षा शास्त्रियों के लिये उपयोगी हैं।

1. विद्यार्थियों की प्रगति का सूचक (Knowledge about the progess of student)

मूल्यांकन विद्यार्थियों की प्रगति का सूचक है। निश्चित अवधि में विद्यार्थी ने कितनी प्रगति की, इसकी सूचना परीक्षा तथा मूल्यांकन से होती हैं।

2. विद्यार्थियों के लिये प्रेरक (Motivation for the Students)

परीक्षाऐं विद्यार्थियों के लिये प्रेरक का काम करती हैं। सामान्यतः विद्यार्थियों का पढ़ने की ओर ध्यान नहीं होता। परन्तु जैसे ही परीक्षा निकट आती हैं वे पढ़ने के लिये प्रेरित हो उठते हैं। यदि परीक्षा न हो तो बहुत कम विद्यार्थी शिक्षा में रूचि लेते हैं। जिन विषयों की परीक्षा नहीं होती या जिन विषयों में परीक्षा में उर्त्तीण होना जरूरी नहीं होता, उनमें विद्यार्थी विशेष रूचि नहीं दिखाते। इस प्रकार मूल्यांकन विद्यार्थियों में पढ़ने के प्रति रूचि उत्पन्न करती हैं और उन्हें प्रेरणा प्रदान करती हैं।

3. विद्यार्थियों की कमजोरी जानने में सहायक (Helpful in knowing about the weakness of students)

विद्यार्थियों का मार्ग दर्शन करना अध्यापक का कर्त्तव्य हैं। परन्तु जब तक उसे विद्यार्थियों की कमजोरियों का ज्ञान नहीं होगा तब तक वह उनका उचित मार्गदर्शन नहीं कर सकता। प्रगति की ओर बढ़ने के लिये विद्यार्थियों को भी अपनी कमजोरी का ज्ञान होना चाहिए। अधिकांश विद्यार्थियों को दैनिक कार्यक्रमों के माध्यम से अपनी कमजोरियों का ज्ञान हो जाता है वे संकोच एवं भय के कारण अध्यापक को अपनी कमजोरियाँ नहीं बताते बल्कि किसी न किसी प्रकार से उन्हें छिपाते रहते हैं। परिणामस्वरूप ये कमजोरियाँ पनपते पनपते असाध्य बन जाती हैं जो विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विकास में बाधक बन सकती हैं। मूल्यांकन विद्यार्थियों की कमजोरी की जानकारी देता हैं।

4. विद्यार्थियों की रूचियों एवं योग्यताओं की जानकारी देने में सहायक (Helpful in providing knowledge about the interests and abilities of students)

मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों की मानसिक रुचियों एवं बौद्धिक योग्यताओं का ज्ञान होता हैं। विद्यार्थियों के परीक्षण से ही इस बात का ज्ञान प्राप्त होता हैं कि विद्यार्थी किसमें रुचि रखता हैं तभी उसे संशोधित किया जा सकता हैं। व्यवसाय को चुनने का आधार भी विद्यार्थी की रूचि व योग्यता है। इस प्रकार मूल्यांकन के माध्यम से व्यावसायिक मार्गदर्शन पर अधिक बल दिया जाता है। इसके लिये बुद्धि, अभिरूचि, उपलब्धि परीक्षा आयोजित करनी आवश्यक हैं।

5. स्तर निश्चित करने में सहायक (Helpful in determining the level)

मूल्यांकन के द्वारा शिक्षा के अलग–अलग स्तर निशचित करने में सहायता मिलती हैं। कौन सा विद्यार्थी किस शिक्षा स्तर के योग्य है, इसका निर्णय मूल्यांकन द्वारा किया जाता हैं और विद्यार्थियों को उनकी उपलब्धियों के अनुरूप अगली कक्षा में उन्नत कर दिया जाता है। मूल्यांकन के बिना विभिन्न शिक्षा स्तरों को निशचित करना असम्भव हैं।

6. विद्यार्थियों के प्रति व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने में सहायक (Helpful in providing individual attention towards students)

आधुनिक शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं में विश्वास रखती हैं। यह विश्वास इस बात

की मांग करता हैं कि सभी विद्यार्थियों को एक ही लकड़ी से नही हाकॅना चाहिए। कुछ विद्यार्थी मेधावी होते हैं, कुछ औसत होते हैं और कुछ मन्दबुद्धि होते हैं। उन्हें अपनी अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार काम करने के अवसर प्रदान करने चाहिए। परन्तु कौन सा विद्यार्थी किस बौद्धिक स्तर का है इसका ज्ञान मूल्यांकन द्वारा होता है। मूल्यांकन के माध्यम से विद्यार्थियों की समस्याओं की जानकारी प्राप्त करके अध्यापक उनकी ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे सकता हैं।

7. उद्देश्य प्राप्ति में सहायक (Helpful in achieving the objective)

शिक्षा कभी भी निरूद्देश्य नहीं होती। व्यापक परिवर्तनों के द्वारा विद्यार्थी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक शिक्षण विषय के अपने कुछ विशिष्ट उद्देश्य भी होते हैं जिन्हें सामने रखकर अध्यापक शिक्षण कार्य करता है। मूल्यांकन द्वारा उसे ज्ञान होता है कि उसका शिक्षण, उद्देश्य की प्राप्ति में कहां तक सफल हुआ। इस प्रकार मूल्यांकन शिक्षा के उद्देश्यों को हमेशा अध्यापक के सामने रखता है और उसे उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करता हैं।

8. शिक्षण-विधियों के सुधार में सहायक (Helpful in improvement of Curriculum)

शिक्षण कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिये अध्यापक कई प्रकार की शिक्षण विधियों तथा शिक्षण उपकरणों का प्रयोग करता है। परन्तु कौन सी शिक्षण विधि उपयोगी हैं, उसका ज्ञान तभी होता है जब उसे परीक्षा की कसौटी पर कसा जाता है। उचित मूल्यांकन से ही ज्ञात होता है कि उसके द्वारा अपनाई गई शिक्षण विधियां कहां तक सफल हुई। इसी ज्ञान के आधार पर वह शिक्षण विधियों में वांछित परिवर्तन एवं सुधार करता है।

9. पाठ्यक्रम के सुधार में सहायक (Helpful in improvement of curriculum)

शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों तथा प्रत्येक विषय के विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये पाठ्यक्रम निश्चित किया जाता हैं। इस पाठ्यक्रम के अनुसार अध्यापक अपना शिक्षण कार्य करता हैं। मूल्यांकन द्वारा पाठ्यक्रम की त्रुटियाँ ज्ञात होती है और उसमें आवश्यक सुधार एवं परिवर्तन किये जा सकते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन पाठ्यक्रम के सुधार में भी सहायक सिद्ध होता हैं।

10. लेखा रखने में सहायक (Helpful in maintaining record)

विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिये उनका नियमित रिकार्ड रखने की आवश्कता होती हैं। मूल्यांकन के बिना यह सम्भव नही हो सकता। परीक्षाओं से प्राप्त अंकों या ग्रेडों के द्वारा ही विद्यार्थियों की उपलब्धियों तथा अध्यापक के कार्यो की जाँच होती हैं।

अतः मूल्यांकन शिक्षा का अनिवार्य अंग हैं क्योंकि इससे समूची शिक्षा पद्धति के गुण–दोषों, विद्यार्थियों की उपलब्धियों तथा अध्यापक के कार्यो की जाँच होती हैं।

सामाजिक अध्ययन शिक्षण में मूल्यांकन के निम्नलिखित विशिष्ट लक्ष्य हैं-

1. विद्यार्थियों के ज्ञान की जाँच करना (Evaluation of knowledge of students)

सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में विद्यार्थियों को मानव जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न प्रकार के वातावरणों का ज्ञान प्रदान किया जाता हैं। मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त ज्ञान की जांच की जाती हैं और उसी जांच के आधार पर उसका योग्यता स्तर निर्धारित किया जाता है।

2. विद्यार्थियों के कौशलों तथा अभिवत्तियों का मूल्यांकन (Evaluation of skills and aptitudes of students)

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण विद्यार्थियों को केवल ज्ञान ही प्रदान नहीं करता बल्कि उसमें विभिन्न

सामाजिक कौशलों तथा अभिवत्तियों को विकसित करता है। जैसे समूह में काम करने की प्रवति तर्क संगत चिंतन की प्रवति, लोकतंत्रात्मक गुणों का विकास, व्यावहारिक कौशल आदि। इन सभी कौशलों तथा अभिवत्तियों की जांच करना भी मूल्यांकन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य हैं।

3. विद्यार्थियों की कमजोरियों का मूल्यांकन (Evaluation of weaknesses of students)

सामाजिक अध्ययन इतना व्यापक विषय हैं कि कई बार अध्यापक को पता नहीं चलता कि कौन सा विद्यार्थी सामाजिक अध्ययन के किस पक्ष इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र आदि में कमजोर है। मूल्यांकन विद्यार्थियों की कमजोरियों को स्पष्ट रूप में दिखाकर विद्यार्थी और अध्यापक दोनों को उनकी ओर सचेत कर देता हैं।

4. उद्देश्य की प्राप्ति का ज्ञान देना (Knowledge about the acquisition of objective)

सामाजिक अध्ययन शिक्षण के कई सामान्य और विशिष्ट उद्देश्य है। मूल्यांकन द्वारा इन उद्देश्यों को कैसे पाया जा सकता है। इस जानकारी के आधार पर शिक्षण विधियों तथा पाठ्यक्रम में आवश्यक संशोधन किया जा सकता हैं।

5. विद्यार्थियों को उनकी रुचियों का ज्ञान देना (To provide knowledge to the students about their interests)

सामाजिक अध्ययन के व्यापक क्षेत्र में विद्यार्थियों को उनकी रुचियों के अनुसार काम करने के पर्याप्त अवसर दिये जा सकते हैं। परन्तु उनकी रूचियों का ज्ञान मूल्यांकन द्वारा ही होता हैं। सामाजिक अध्ययन शिक्षण में कई प्रकार की अध्ययनात्मक रूचियों तथा रचनात्मक रूचियों का समावेश होता है। परन्तु किस विद्यार्थी में किस क्रिया तथा किस विषय में अधिक रूचि है– इसका ज्ञान परीक्षण तथा मूल्यांकन से होता हैं। रूचियों का ज्ञान होने पर विद्यार्थियों को ठीक दिशा की ओर अग्रसर करना सुविधाजनक हो जाता हैं। इस प्रकार मूल्यांकन विद्यार्थी के मार्गदर्शन में भी सहायक सिद्ध होता हैं।

1.5 मूल्यांकन के उद्देश्य (Objectives of Evaluation)

मूल्यांकन की प्रक्रिया विद्यालय शिक्षण में सुधार लाने के लिये आवश्यक हैं। इसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी की प्रगति के सम्बन्ध में पता लगाना हैं। इस रूप में हम चार मुख्य उद्देश्यों का वर्णन कर सकते हैं :–

1. विद्यार्थियों को आत्मबोधन में सहायक (Helpful to the students in their self-realization)

मूल्यांकन का मुख्य कार्य विद्यार्थियों को अपने सम्बन्ध में अधिक अच्छी अवबोधन को प्राप्त करने में सहायता देना हैं ताकि वह अपने व्यवहार में सुधार ला सके। यह उद्देश्य परीक्षण एवं मापन की क्रिया के सीमित उद्देश्यों से अधिक विस्तत हैं। इसमें कोई संदेह नही कि जब विद्यार्थी अपनी दढ़ताओं एवं कठिनाईयों को जान लेता हैं और वह यह समझने लगता हैं कि उसे प्रगति की आवश्यकता हैं तो वह प्रगति की ओर प्रयास में लग जाता हैं।

सीखने की प्रक्रिया बहुत अधिक सीखने वालो की अपनी निजी अभिप्रेरणाओं पर निर्भर होती हैं। इसलिये ऐसी मूल्यांकन की विधियां जो आत्म परीक्षण एवं भविष्य के कार्यो मे आत्म अभिप्रेरणा को प्रोत्साहित करती है ; उन्हें शैक्षिक प्रविधियों में ऊँचा स्थान देना चाहिए। अभिभावकों को भी विद्यार्थियों की प्रगति से अवगत कराना चाहिए ताकि वे अपने बालकों को अच्छे आत्म–अवबोधन प्राप्त करने में सहायता दे सकें।

2. शिक्षकों को निर्देशन प्रदान करना (To provide direction to the teachers)

शिक्षकों को विद्यार्थी की आवश्यकता को समझकर उनकी व्यक्तिगत रूप से सहायता करनी चाहिए। यें

आवश्यकताएं न केवल विद्यार्थी के वर्तमान स्तर का मापन करके समझी जा सकती हैं बल्कि कुछ उनकी प्रगति के परिणामों के ऊपर ध्यान देकर भी समझी जा सकती हैं। शिक्षक उस समय विद्यार्थी को अच्छा अवबोधन प्रदान कर सकता है। इसके साथ साथ शिक्षक विद्यार्थी की प्रगति का मूल्यांकन तो करवाता ही है उसके स्वयं का भी मूल्याकंन होता हैं।

3. अभिभावकों को निर्देशन प्रदान करना (To provide direction to the parents)

अभिभावक अपने बालकों को अपने स्वयं का अवबोधन प्राप्त करने में तथा सुधार की योजना बनाने में सहायता प्रदान कर सकते हैं। बुद्धिमान अभिभावक अपने बालकों को सजा देने या डराने के लिए प्रयोग में नही लाते। इसलिये अभिभावकों को यह बताना आवश्यक है कि विद्यार्थी की प्रगति वांछित रूप से हो रही हैं कि नहीं।

4. भविष्य के लिए अभिलेखों को रखना (To maintain records for future)

मूल्यांकन के अभिलेखों को रखना अनिवार्य हैं, क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर विद्यार्थी, शिक्षक एवं अभिभावक इसका प्रयोग कर सकते हैं तथा निर्देशनकर्ता को भी सूचित कर सकते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

(i) मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं?

(ii) मूल्यांकन की विशेषताएँ क्या हैं?

(iii) मूल्यांकन की हमारे जीवन में क्या आवश्यकता हैं?

1.6 सारांश (Summary)

शिक्षा समाज का महत्वपूर्ण अंग हैं तथा समय समय पर इसका मूल्यांकन अति आवश्यक है। मूल्यांकन केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका अपना स्थान है। मूल्यांकन के द्वारा हम भावी जीवन की रूपरेखा बनाते हैं। मूल्यांकन से केवल निर्देशन ही प्राप्त नहीं होता अपितु विद्यार्थी के जीवन को उन्नत बनाने के लिये साधनों की भी जानकारी देता है। मूल्यांकन जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है तथा मूल्यांकन के द्वारा ही हम विषयों व व्यवावसायिक क्षेत्र का चुनाव करते हैं।

1.7 आदर्श उत्तर

1. (i) किसी वस्तु, उपलब्धि, प्रक्रिया आदि का मूल्य अंकित करना मूल्यांकन कहलाता है।

   (ii) मूल्यांकन की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :–

   1. मूल्यांकन सतत चलने वाली प्रक्रिया है।
   2. इसका सम्बन्ध शिक्षा के उद्देश्यों से हैं।
   3. छात्रों के व्यवहार से सम्बन्धित सामग्री मूल्यांकन द्वारा एकत्र की जाती हैं।
   4. मूल्यांकन के द्वारा विद्यार्थी के व्यवहार को उन्नत बनाने मं सहायता मिलती हैं।

   (iii) इस प्रशन के उत्तर के लिये छात्र इसी अध्याय का भाग 1.4 देखें।

1.8 मुख्य शब्द

मूल्यांकन – यह एक समावेशित धारणा है जो इच्छित परिणामों के गुण, महत्व तथा प्रभावशीलता का निर्धारण करने के लिए समस्त प्रकार के प्रयासों तथा साधनों की ओर संकेत करती है। यह सम्पूर्ण तथा अन्तिम अनुमान है।

अभिलेख – जिसमें जीवन से सम्बन्धित कोई भी जानकारी रखी जा सकती है।

1.9 सन्दर्भ पुस्तकें

गुप्ता, रमेश चन्द तथा भट्ट, चन्द्रशेखर, "शिक्षा में मापन और मूल्यांकन",
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा, 1968

पाण्डेय, कामता प्रसाद, "शिक्षा में मूल्याकंन" मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1968

यूनिट-V

मूल्यांकन के उपकरण (Evaluation Devices)

उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप निम्न उद्देश्य प्राप्त करने के योग्य हो जाऐगें कि :–

– मौखिक परीक्षाओं का वर्णन कर सकें।

– निबन्धात्मक परीक्षाओं का वर्णन कर सकें।

– वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की व्याख्या कर सकें।

– रूचि इन्वेन्टरी का प्रयोग कर सकें।

– रेटिंग स्केल का वर्णन कर सकें।

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 मौखिक परीक्षाएं

2.3 निम्बन्धात्मक परीक्षाएं

2.4 वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं

2.5 निदानात्मक परीक्षण एवं उपचारात्मक विधियाँ

2.6 निरीक्षण

2.7 रूची इन्वेन्टरी

2.8 रेटिंग स्केल

2.9 सारांश

2.10 आदर्श उत्तर

2.11 मुख्य शब्द

2.12 सन्दर्भ पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया हैं कि व्यक्तियों में वैयक्तिक विभिन्नता होती हैं। दूसरे शब्दों में, अमुक कार्य को एक व्यक्ति बिना किसी कठिनाई के सरलतापूर्वक कर सकता हैं परन्तु उसी कार्य को दूसरा व्यक्ति नहीं कर पाता। परीक्षण इस प्रकार की वैयक्तिक विभिन्नताओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने का एक उपयुक्त साधन हैं। मूल्यांकन से तात्पर्य बालक के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों में होने वाले परिवर्तनों से है। इन सभी परिवर्तनों की जाँच करने के लिये कई प्रकार की परीक्षण प्रविधियों का प्रयोग किया जाता हैं।

शैक्षणिक निष्पति के मापन के लिये कई प्रकार की परीक्षण विधियों अथवा निष्पति परीक्षाओं का प्रयोग किया जाता है। निम्नलिखित पंक्तियों में हम प्रमुख निष्पति परीक्षाओं पर प्रकाश डाल रहे हैं।

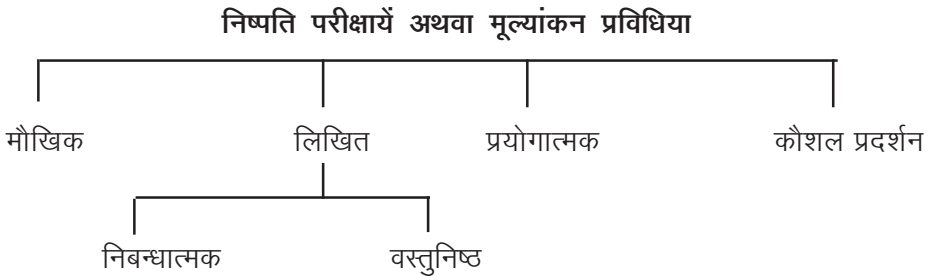

2.2 मौखिक परीक्षायें (Oral Tests)

परीक्षाओं का सबसे अधिक प्राचीन विवरण ओल्ड् टैस्टामेन्ट में मिलता हैं। ऐसा कहा जाता हैं कि मौखिक परीक्षा का प्रयोग सबसे पहले ग्लेडाइट्स ने किया था। इसके पश्चात् यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने मौखिक परीखा प्रणाली का सूत्रपात किया। आज भी सुकराती परीक्षण प्रणाली का प्रयोग किया जाता हैं। ध्यान देने की बात हैं कि मौखिक परीक्षाओं का उद्देश्य बालकों की मौखिक प्रश्नों द्वारा तुरन्त अभिव्यक्ति तथा क्रियाशीलता की जाँच करना हैं। प्रश्नों के उत्तर मिलने पर परीक्षक बालक के सम्बन्ध में अपना मत स्थिर कर लेता हैं। इन परीक्षाओं का प्रयोग पहले तो केवल छोटी कक्षाओं के बालकों के लिये ही किया था परन्तु आजकल मौखिक परीक्षाओं का प्रयोग बड़ी कक्षाओं मे प्रवेश साक्षात्कार तथा वाइवा–वोसी के लिये भी किया जाता हैं।

मौखिक परीक्षाओं के गुण (Merits of Oral Tests)

मौखिक परीक्षाओ के निम्नलिखित गुण हैं :–

(i) मौखिक परीक्षाओं का प्रयोग बालकों के पूर्वज्ञान का पता लगाने के लिये किया जाता हैं।

(ii) मौखिक परीक्षाओं का प्रयोग बालकों में तथ्यों के ज्ञान के प्रत्यास्मरण के लिये किया जाता हैं।

(iii) मौखिक परीक्षाओं द्वारा बालकों की पढ़ने तथा उच्चारण योग्यता का पता लगाया जाता हैं।

(iv) मौखिक परीक्षायें बालकों के व्यक्तिगत गुणों एवं अवगुणों की जाँच करती हैं।

(v) मौखिक परीक्षाओं का प्रयोग लिखित परीक्षाओं की पूर्ति के लिये किया जाता हैं।

मौखिक परीक्षाओं के दोष (Demerits of Oral Tests)

मौखिक परीक्षाओं के दोष निम्नलिखित हैं :–

(i) मौखिक परीक्षाओं द्वारा लज्जाशील बालक अपने ज्ञान तथा योग्यता का प्रदर्शन नहीं कर पाते।

(ii) इन परीक्षाओं के परिणामों में आत्मनिष्ठता की मात्रा अधिक होती हैं। इसका परिणाम यह होता हैं कि परीक्षक जिस बालक से रुष्ट होता हैं उसे उसके अच्छे उत्तर भी निम्न कोटि के लगते हैं। इसके विपरीत वह जिन बालकों को अच्छा समझता हैं और उनसे प्रसन्न होता है उसे उनके निम्न कोटि के उत्तर भी अच्छे लगते हैं। इससे बालकों को सही–सही अंक नही मिलते।

(iii) मौखिक परीक्षाओं का कोई लिखित प्रमाण नही होता। अतः इनका उपयोग करते समय परीक्षक मनमानी करता सकते हैं।

(iv) ये परीक्षायें प्रत्येक बालक के लिये न्याय संगत नहीं हैं।

मौखिक परीक्षाओं के उपर्युक्त गुणों तथा दोषों से स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि इन परीक्षाओं के कुछ दोष अवश्य

हैं परन्तु फिर भी इनका प्रयोग करना ही पड़ता हैं। इसका कारण यह हैं कि भाषा के उच्चारण तथा वाक्–प्रतियोगिता आदि का परीक्षण केवल मौखिक रूप से ही हो सकता हैं।

अपनी प्रगति जांचिए - 1

(i) मौखिक परीक्षाये किसे कहते हैं?

(ii) क्या मौखिक परीक्षाएँ आवश्यक हैं?

2.3 निबन्धात्मक परीक्षाएं (Essay Type Tests)

निबन्धात्मक परीक्षाओं का तात्पर्य ऐसी परीक्षण प्रणाली से है जिसके अन्तर्गत सभी बालक पाठ्यक्रम के कई प्रश्नों के उत्तर निश्चित समय के अन्दर निबन्ध के रूप में देते हैं। इन परीक्षाओं में प्रश्नों के उत्तर इतने लम्बे होते हैं कि परीक्षक बालकों के विचार, तुलना, अभिव्यंजना तर्क तथा आलोचना आदि के साथ साथ विचारों को संगठित करने की योग्यता तथा भाषा एवं शैली आदि की जाँच भली–भाँति कर सकता हैं। ज्ञान के प्रत्यास्मरणं तथा पहिचान स्तर पर बालकों की निष्पति का मापन नवीन प्रकार की परीक्षाओं के द्वारा अवश्य किया जा सकता है परन्तु निर्वाचन, प्रयोग तथा मूल्यांकन स्तर पर निबन्धात्मक परीक्षाओं का प्रयोग आवश्यक ही नहीं लाभप्रद भी हैं।

सामाजिक अध्ययन में छात्रों को कुछ विचारात्मक प्रश्न दिये जाते हैं। जिनका उतर छात्र निर्धारित समय में अपनी स्वतन्त्र भाषा में इच्छानुसार लिखते हैं। इन्हें परम्परागत परीक्षाएं भी कहते हैं क्योंकि ये काफी प्राचीन समय से चली आ रही हैं और आज भी अपने उसी रूप में शैक्षिक जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है क्योंकि इनमें व्यक्ति अपने विचारों को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करता हैं जिसमें उसके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दिखाई देती हैं। इसके माध्यम से व्यक्ति की उपलब्धि के साथ साथ उसको व्यक्त करने की शक्ति, लेखन क्षमता एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी हो सकता हैं।

निबन्धात्मक परीक्षाओं के कार्य (Functions of Essay Type Tests)

(1) यह विद्यार्थियों में पढ़ने के लिये रुचि और लग्न जगाती है जिससे उनमें अनुशासन एवं चरित्र निर्माण की भावना का विकास होता है।

(2) यह विद्याथियों की पाठ्यपुस्तक सम्बन्धी उपलब्धि का अध्ययन करती है।

(3) यह विद्यार्थियों की क्षमताओं, योग्यताओं, दक्षताओं, रुचियों, मूल्यों और अभिवत्तियों को मापती है।

(4) इससे विद्यार्थी निर्देशन प्राप्त करता है।

(5) विद्यार्थियों का वर्गीकरण करके उनके शैक्षिक समायोजन को बनाये रखने के लिये कार्य करती है।

(6) विद्यार्थियों को इन परीक्षाओं के माध्यम से भाषा शैली व लेखन शैली का ज्ञान मिलता है।

निबन्धात्मक परीक्षाओं की विशेषताएँ एवं लाभ (Characteristics and advantages of Essay Type Tests)

(1) मितव्ययी (Economical)

निबन्धात्मक परीक्षाएं मितव्ययी होती है। इनमें प्रश्न रचना व हल करने में कम समय लगता है। इसके लिये अनुभवी व प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता होती हैं। इसमें अपेक्षाकत कम विषय सामग्री का प्रयोग होता है।इस प्रकार समय, धन, व्यक्ति, सामग्री तथा परिश्रम के दष्टिकोण से ये मितव्ययी होती हैं।

(2) रचना की सुगमता (Easy to construct)

इसमें प्रश्नों की रचना सुगमता से हो जाती है। प्रश्नों के निर्माण में कम समय लगता है। एक दो पंक्ति के माध्यम के द्वारा छात्रों की योग्यता की जाँच आसानी से की जा सकती हैं।

(3) प्रशासन की सरलता (Easy to administer)

ऐसी परीक्षाओं में परीक्षार्थी के सम्मुख 8-10 प्रश्नों को एक पर्चे पर लिखकर दिए जाते हैं, जिनका उसे उत्तर देना पड़ता हैं। इस प्रकार से इनका प्रशासन प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है। प्रश्नो की सरलता के कारण इनका प्रशासन प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जा सकता हैं।

(4) विचारों की स्वतन्त्रता (Freedom of views)

इस प्रकार की परीक्षाओं में छात्र को अपने विचारों को बिना संकोच के स्वतन्त्र रुप से व्यक्त करने की पूरी स्वतन्त्रता होती हैं। विचारों की स्वतन्त्रता के कारण ही छात्र की मौलिकता का पता लगता हैं।

(5) लेखन शैली का अनुमान (Measurement of writing style)

इस प्रकार की परीक्षाओं के माध्यम से छात्र की साहित्यिक एवं लेखन योग्यता का भली–भाँति मापन किया जा सकता है। इसके द्वारा इस बात का भी पता लगता हैं कि छात्र किस प्रकार से विचारों को संगठित करके लिख सकता है। इस प्रकार की परीक्षाएँ छात्र की लेखन शैली, सरल भाषा, शब्दों का प्रयोग, मुहावरें और अच्छी भाषा का प्रयोग, व्यापकता की दक्षता और लेखन योग्यता आदि का अनुमान लगाती हैं।

(6) व्यक्तित्व का मूल्यांकन (Evaluation of personality)

ये परीक्षाएं छात्रों के व्यक्तित्व के मूल्यांकन में काफी सहायक सिद्ध होती है। विद्यार्थियों के लेख द्वारा उनकी रुचि, क्षमता, मूल्यों, अभिवत्तियों और व्यक्तित्व आदि गुणों का अनुमान लगाया जा सकता हैं।

(7) मौलिकता एवं आलोचनात्मक शक्ति का ज्ञान (Knowledge of originality and critical power)

इन परीक्षाओं द्वारा छात्रों की मौलिकता, कल्पना शक्ति, निर्णय शक्ति तथा आलोचनात्मक चिन्तन पर भी जोर दिया जाता है। सभी छात्र अपने अपने अनुभवों के आधार पर ही तथ्यों को अभिव्यक्त करते हैं तथा उसके गुण दोषों की विभिन्न प्रकार से विवेचना करते है। ये परीक्षाएं, विचारों के संगठन पर भी जोर डालती है।

(8) उच्च मानसिक योग्यताओं का अध्ययन (Study of higher mental abilities)

निबन्धात्मक परीक्षाओं से मानसिक योग्यताओं का अध्ययन संभव हैं। यह विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति क्षमता तथा बुद्धिमापन का एक साधन हैं। समालोचना एवं विश्लेषण के लिए यह परीक्षा सफलतापूर्वक प्रयोग की जा सकती हैं।

(9) सभी विद्यालय विषयों के लिए उपयुक्त (Suitable to all school subjects)

निबन्धात्मक परीक्षाओं का प्रयोग विद्यालय से सम्बन्धित सभी विषयों में सफलता तथा व्यापकतापूर्वक किया जा रहा है। कुछ ऐसे विषय होते हैं जिनमें वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का प्रयोग नहीं किया जा सकता वहाँ निबन्धात्मक परीक्षाओं का प्रयोग आसानी से किया जा सकता हैं।

(10) नकल करने की सम्भावना कम होती हैं (Less possibility of copying)

निबन्धात्मक प्रश्न भाषा शैली एवं विषय वस्तु की गहनता के कारण काफी बड़े होते हैं और इस प्रकार नकल करने की सम्भावना बहुत कम हो जाती हैं। यदि विद्यार्थी निबन्धात्मक प्रश्नों की नकल करेंगे तो निश्चित समय में प्रश्न प्रत्रों का उत्तर नहीं दे पाएगें और अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त नहीं कर पाएगें।

(11) विस्तत अध्ययन को प्रोत्साहन (Encouragement to detailed study)

इस परीक्षा के द्वारा विषय सामग्री का विद्यार्थी द्वारा गहन अध्ययन किया जाता हैं, उसकी रूपरेखा लिखी

जाती है, सारांश लिखे जाते है तथा मुख्य बातों को विद्यार्थी याद करने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार इनके द्वारा विस्तत अध्ययन को प्रोत्साहन मिलता है।

(12) उत्तर-पुस्तिका का सरल मूल्यांकन (Easy evaluation of answer books)

निबन्धात्मक परीक्षा द्वारा उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन भी सरलतापूर्वक किया जाता है तथा इस प्रकार की परीक्षा की व्यवस्था करना भी बहुत सरल है और अनेक परीक्षार्थियों की परीक्षा एक ही समय में आसानी से ली जा सकती है।

निबन्धात्मक परीक्षाओं के दोष (Demerits of Essay Type Tests)

(1) रटने पर बल (Stress on cramming)

इस प्रकार की परीक्षाएँ बच्चों को बिना सोचे समझे रटने के लिए मजबूर करती है। बच्चे केवल पुस्तक के उन्हीं भागों पर अधिक ध्यान देते हैं जो परीक्षा की दष्टि से आवश्यक हैं। रटने से बच्चों की शारीरिक और मानसिक शक्ति का ह्रास होता है। छात्रों का उद्देश्य विषय वस्तु को सीखना न होकर परीक्षा में सफल होना होता हैं जिससे छात्र वास्तविक ज्ञान प्राप्ति से वंचित रहते हैं।

(2) यह परीक्षण व्यापकता से अछूता हैं (Less Comprehensive)

इसमें पूरे पाठ्यक्रम पर बल नहीं दिया जाता। चार–पाँच प्रश्न सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व नहीं करते। कभी–कभी तो अनेक अंश छूट जाते हैं जिससे बच्चों का मूल्यांकन ठीक ढंग से नहीं हो पाता।

(3) विश्वसनीयता की कमी (Less reliable)

इन परीक्षाओं में बहुधा एक ही प्रश्न पर भिन्न भिन्न परीक्षक अंक प्रदान करते हैं, इसके अतिरिक्त एक ही विद्यार्थी की एक ही परीक्षक द्वारा भिन्न भिन्न समय पर परीक्षा लेने पर भिन्नता पाई जाती हैं इस प्रकार ये परीक्षाएँ अधिक विश्वसनीय नहीं होती हैं।

(4) निश्चित उद्देश्यों का अभाव (Lack of definite objectives)

इन परीक्षाओं की रचना करते समय अध्यापक उद्देश्यों का ध्यान न रखते हुए इस प्रकार का प्रश्न पत्र बनाता है कि कौन सा प्रश्न पत्र पिछले वर्ष आया था और कौन सा इस वर्ष पूछना है। इस प्रकार निश्चित उद्देश्यों के अभाव में छात्रों के ज्ञान में हुई वद्धि का ठीक ढ़ंग से मापन नही हो पाता।

(5) विषय सम्बन्धी कमियों का पता लगाना असंभव (Diagnosis of Subject related weakness not possible)

कुछ छात्र निबन्धात्मक प्रश्नों का उत्तर ठीक ढंग से नहीं दे पाते और वे अपने ज्ञान की कमी के कारण प्रश्नों के उत्तर केवल अनुमान के आधार पर घुमा फिराकर दे देते हैं जिससे अध्यापक को उनकी विषय सम्बन्धी, भाषा सम्बन्धी कमियों तथा कठिनाईयों का पता नहीं लग पाता और इसके परिणामस्वरूप छात्रों की योग्यता का मूल्यांकन उचित ढंग से नहीं हो पाता।

(6) वैद्यता का अभाव (Lack of Validity)

इन परीक्षाओं के निश्चित उद्देश्य न होने के कारण इनमें वैद्यता का अभाव पाया जाता हैं। इनकी रचना करते समय अध्यापक पाठ्यक्रम तथा विद्यार्थियों के स्तर को ध्यान में नहीं रखता। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा छात्रों का उचित वर्गीकरण, मार्गदर्शन एवं विद्यार्थियों की क्षमता का अध्ययन सम्बन्धी वैद्यता का भी अभाव पाया जाता हैं।

(7) अनैतिकता को प्रोत्साहन (Encouragement to immorality)

इस प्रकार की परीक्षाएं बच्चों और अध्यापकों में अनैतिकता की भावना को प्रोत्साहित करती हैं। अध्यापक पूरा पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाता और पिछले वर्षो के प्रश्न पत्रों को पढ़ाता हैं जिनके इस वर्ष आने की सम्भावना होती है। छात्रों भी केवल उन्हीं प्रश्नों को जैसे तैसे रटकर परीक्षा में सफल होना ही अपना लक्ष्य मानते हैं।

(8) लिखने की गति व स्मरणशक्ति का परीक्षण (Testing of speed of writing and memory)

लिखने की गति की परीक्षा याद करने की क्षमता की परीक्षा हैं। यदि किसी विद्यार्थी को तेज गति से लिखना आता है तो वह निश्चित समय में पूरे प्रश्न हल कर लेता है। उसे दूसरे विद्यार्थी की तुलना में अधिक अंक प्राप्त होते जो निर्धारित समय में प्रश्न पत्र पूरा नहीं कर पाते।

ये भाग्य तथा अवसर पर आधारित हैं क्योंकि यदि प्रश्न आते है तो विद्यार्थी अच्छे अंक प्राप्त कर लेता है अन्यथा नही। यह वर्ष में दो या तीन बार होती है जिससे पुराना रिकार्ड सामने नहीं आता। इस प्रकार पूरा मूल्यांकन नही हो पाता।

सुधार सम्बन्धी सुझाव (Suggestions for Improvement)

इन परीक्षाओं का उपर्युक्त दोषों के बावजूद भी शैक्षिक जगत् में विशेष महत्व हैं। वर्तमान समय में बच्चों की योग्यता की परीक्षा का इसके अतिरिक्त और कोई अच्छा तरीका भी नहीं हैं। अधिकतर पूरे भारत में इसी प्रकार की परीक्षा प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। इसलिये इस व्यवस्था को अधिक अच्छा बनाने के लिये यह आवश्यक हो जाता हैं कि इस परीक्षा प्रणाली के वर्तमान दोषों तथा कमियों को दूर किया जाए। इन्हें दूर करने के लिए सुझाव निम्नलिखित हैं :–

(1) आत्मनिष्ठ तत्त्वों के प्रभाव को कम करने के लिय वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का भी साथ–साथ प्रयोग करें।

(2) प्रश्न पूरे पाठ्यक्रम से सम्बन्धित होने चाहिए।

(3) प्रश्न सरल व स्पष्ट भाषा में हो।

(4) प्रतिभाशाली तथा मन्दबुद्धि विद्यार्थियों की योग्यता अनुकूल प्रश्नों का समावेश हों।

(5) प्रश्न पत्र की रचना से पहले उसके उद्देश्यों को निर्धारित करना चाहिए।

(6) प्रश्न पत्र का निर्माता तथा मूल्यांकन करने वाला एक हो।

(7) अंक प्रदान करने का एक निश्चित मापदण्ड एवं विधि होनी चाहिए।

(8) केवल अनुभवी व्यक्ति ही अंक प्रदान करने का कार्य करे।

अपनी प्रगति जांचिए - 2

(i) निबन्धात्मक परीक्षाएं क्या होती हैं?

(ii) निबन्धात्मक परीक्षाओं की विशेषताएँ व लाभ क्या हैं?

2.4 वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं (Objective Type Tests)

वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं नवीन शैक्षिक अनुसंधान की देन हैं। इन परीक्षाओं में छात्रों को स्वतन्त्रता नही होती। छात्र अपनी इच्छा से उत्तर नहीं दे सकते। प्रत्येक प्रश्न का एक विशिष्ट उत्तर होता है। ये प्रायः एक निश्चित एवं लघु उत्तर होता है। इन परीक्षणों में अंक लगाते समय व्यक्तिगत विचारों का कोई स्थान नहीं होता। कई बार तो उत्तर इतने संक्षिप्त होते हैं कि केवल एक शब्द या वाक्य के नीचे रेखा खीच देने से ही काम चल जाता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं के प्रकार (Types of objective Type Tests)

1. सरल प्रत्यास्मरण प्रश्न (Simple Reall Type)

इसमें केवल सीधा प्रश्न पूछा जाता है जिसका केवल एक निश्चित उत्तर होता है। कई बार तो यह उत्तर अत्यन्त संक्षिप्त साधारणतया एक या दो शब्दों में या अधिक से अधिक एक वाक्य में होता है। उदाहरण के रूप में:–

1. पानीपत का प्रथम युद्ध कब हुआ?
2. अकबर का जन्म कहाँ हुआ?
3. भारत के पहले प्रधान मन्त्री कौन थे?
4. भारतवर्ष की प्रति व्यक्ति आय कितनी हैं?

2. पहचान (Recognition type questions)

I. ठीक गलत प्रश्न अथवा सत्य-असत्य प्रश्न (True-false questions)

इसमें कुछ कथन दिये जाते हैं जिनमें से कुछ प्रश्न ठीक होते हैं तथा कुछ गलत। विद्यार्थियों से कहा जाता है कि वह ठीक स्थान पर (√) का निशान लगाए तथा गलत के स्थान पर (x) का निशान लगायें। इस प्रकार के प्रश्न सबसे अधिक मात्रा में प्रयोग किये जाते हैं। तकनीकी दष्टि से भी इस प्रकार के प्रश्न सर्वोत्तम माने जाते है।

उदाहरण –

1. पानीपत का प्रथम युद्ध 1525 ई० में हुआ। ( )
2. भारत के प्रधान मन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी है। ( )
3. भारतवर्ष में ग्रीष्म ऋतु में अधिक वर्षा होती हैं। ( )
4. 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ। ( )
5. हरियाणा में गेहूँ अधिक उगाई जाती है। ( )

II. बहु विकल्प प्रश्न (Multiple Choice Questions)

इसमें एक अपूर्ण कथन दिया जाता है और उसके साथ ही कुछ उत्तर जिनमें से केवल एक ही ठीक होता हैं, दिए जाते हैं। विद्यार्थियों से कहा जाता है कि वे सही उत्तर से कथन पूरा करें।

1. भारतवर्ष में खाद्य समस्या इसलियें हैं क्योंकि –
   - (क) भारत बहुत सा अनाज विदेशों में भेज देता हैं।
   - (ख) भारत की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही हैं।
   - (ग) अनाज के भण्डारों को चूहे खा जाते है।
   - (घ) भारतवर्ष में लोग अधिक अनाज खाते हैं।

3. तुलनात्मक प्रश्न या मिलान पद प्रश्न (Matching Type Questions)

इस प्रकार की परीक्षाओं मे दो सूचियाँ होती हैं। एक सूची में कथन होते हैं तथा दूसरी में उनके उत्तर। विद्यार्थियों से कहा जाता हैं कि वे दिये गये कथनों व उनके उत्तरों का सम्बन्ध स्थापित करे। एक समूह ज्यों का

त्यों रहने दिया जाता है जबकि दूसरा समूह अव्यवस्थित कर दिया जाता है। छात्रों से इस अव्यवस्थित समूह को व्यवस्थित करने के लिये कहा जाता हैं।

इस प्रकार के प्रश्न उस समय अत्यन्त सहायक होते है जब तक किसी विशिष्ट सूचना की परीक्षा लेना चाहते है।

उदाहरण –

	बहुमुखी योजनाओं के नाम	राज्य
1.	कोसी	उड़ीसा
2.	नागार्जुन सागर	पंजाब
3.	रिहान्ड	बिहार
4.	महानदी	आन्ध्र प्रदेश
5.	मारवाड़	उत्तर प्रदेश

4. रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्न (Fill up the blanks)

इस प्रकार के प्रश्नों के द्वारा किसी विशिष्ट नाम तिथि संख्या या स्थान का नाम कुछ प्रश्नों के द्वारा पूछा जाता है।

उदाहरण –

1. बर्मा भारत के ———————— की ओर स्थित है।
2. चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु का नाम ———————— था।
3. विश्व में सबसे अधिक अभ्रक ———————— में मिलता हैं।
4. भारत और चीन के मध्य ———————— में युद्ध हुआ।

5. सर्वोत्तम उत्तर प्रश्न (Best Answer Questions)

इस प्रकार की परीक्षाओं में कुछ प्रश्न दिये हुए होते है। इन सम्भावित उत्तरों में से एक उत्तर सर्वोत्तम होता है। छात्रों को वह सर्वोतम उत्तर बताने के लिये कहा जाता हैं।

भारत में खाद्य समस्या इसलिये हैं कि :–

(i) भारतवर्ष में खेती के पुराने ढंग है।

(ii) भारत की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही हैं।

(iii) भारत में खाद्यान्नों का अपव्यय बहुत होता है।

(iv) सरकार इस समस्या को हल करने में उदासीन है।

सर्वोत्तम उत्तर प्रश्न और बहु विकल्प प्रश्न परीक्षाओं में यह अन्तर हैं कि बहुविकल्प परीक्षाओं में केवल एक उत्तर सही है और बाकी सब गलत जबकि सर्वोत्तम उत्तर प्रश्न परीक्षाओं में सभी उत्तर ठीक होते हैं परन्तु उनमें से एक उत्तर सर्वोत्तम होता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं के गुण (Merits of Objective Type Tests)

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं के निम्नलिखित गुण होते हैं :–

1. इन परीक्षाओं में विद्यार्थियों द्वारा उत्तर देना सरल होता हैं।
2. इन परीक्षाओं में असम्बन्धित कारक जैसे लेखन लिखने की गति या परीक्षक के विचारों का कोई स्थान नहीं हैं। इसलिये यह परीक्षायें अधिक विश्वसनीय होती हैं।
3. इन परीक्षाओं में अनुमान लगाने का कोई अवसर नहीं होता क्योंकि सबके लिये निर्देशन सफल और स्पष्ट होते हैं।
4. छात्र अध्यापक को धोखा नहीं दे सकता क्योंकि वह व्यर्थ कुछ भी नहीं लिख सकते।
5. इस प्रकार की परीक्षाओं में अंक देना बहुत, सरल, तेज व विश्वसनीय होता है। इन परीक्षाओं में पक्षपात का कोई स्थान नही हैं।
6. छात्रों की भाषा सम्बन्धी त्रुटियों के उत्तर देने में बाधक नही बनती।
7. इन परीक्षाओं का क्षेत्र विशाल होता है क्योंकि सभी विषयों व उनके उपविषयों में से प्रश्न लिये जाते हैं।
8. ये परीक्षायें रटने के स्थान पर समझ को अधिक प्रोत्साहन देती हैं और विद्यार्थियों के अन्दर कुछ अच्छे गुण जैसे विचार, अवलोकन, छानबीन आदि को प्रोत्साहित करती हैं।
9. क्योंकि इन परीक्षाओं मे कम लिखना होता है इसलिये यह कम थकाने वाली होती हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं के दोष (Demerits of Objective Type Tests)

1. वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का सबसे बड़ा दोष यह हैं कि यह विद्यार्थियों में कुछ गुण जैसे विषयवस्तु का संगठन करना विचारों का सार बनाना, मौलिकता और कल्पनाशक्ति आदि का विकास नहीं करते।
2. इन परीक्षाओं के प्रश्न निर्माण में बहुत अधिक श्रम तथा समय लगता हैं।
3. इनमें अनुमान से उत्तर देने की सम्भावनायें पर्याप्त होती है।
4. वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में छात्रों को अपने भावव्यक्त करने की क्षमता का ह्रास होता है।
5. इन परीक्षाओं में नकल अक्सर होती हैं।
6. इनसे विद्यार्थियों की रचनात्मक चिन्तन की परीक्षा करना संभव नहीं है।

अपनी प्रगति जांचिए - 3

(i) वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ क्या होती हैं?

(ii) वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं के क्या गुण होते हैं?

2.5 निदानात्मक परीक्षण एवं उपचारात्मक विधियां (Diagnostic Testing and Remedial Measures)

मनोवैज्ञानिक दष्टि से कोई भी दो विद्यार्थी समान नही होते। उनमें व्यक्तिगत विभिन्नताएं होती हैं उनका पता लगाकर उन भेदों के आधार पर उनका वर्गीकरण करना और वर्ग विशेष के बच्चों के लिए विशेष शिक्षण विधियों का प्रयोग करना मनोवैज्ञानिक प्रवत्ति हैं। कभी कभी हम यह देखते हैं कि हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी विद्यार्थी उतना ग्रहण नही करते जितना उन्हें ग्रहण कर लेना चाहिए। आज के मनोवैज्ञानिक युग में यह आवश्यक समझा जाता हैं कि बच्चे जो नहीं समझ पाते उसके स्पष्ट कारण जानने चाहिए और फिर उन कारणों को दूर करते हुए, शिक्षण करना चाहिए। बच्चों की सीखने सम्बन्धी

कठिनाइयों का ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया को शैक्षणिक निदान तथा इन कठिनाइयों को दूर करते हुए शिक्षण करने को उपचारात्मक शिक्षण कहते हैं। इस प्रकार शैक्षिक निदान एवं उपचारात्मक शिक्षण एक ही क्रिया के दो पहलू हैं जो शैक्षणिक निदान एवं उपचारात्मक परीक्षण पर निर्भर करते हैं।

शैक्षणिक निदान एवं उपचारात्मक परीक्षण के उद्देश्य (Objectives of Educational Diagnosis and Remedial measures)

1. वर्गीकरण
2. चयन
3. निदान

1. वर्गीकरण (Classification)

मूल्यांकन का उद्देश्य विद्यार्थियों का वर्गीकरण करना है। परीक्षण के आधार पर विद्यार्थियों को प्रथम, द्वितीय तथा ततीय श्रेणियों मे विभाजित किया जाता है। अतः किसी भी परीक्षण में कठिन (20%) सामान्य (60%) और सरल (20%) इन तीनों स्तरों के प्रश्न होने चाहिए, जिससे श्रेष्ठ, सामान्य और कमजोर विद्यार्थियों में अन्तर किया जा सके। साधारण स्तर के प्रश्न साधारण और कमजोर विद्यार्थियों में परस्पर अन्तर कर सकेगें और कठिन स्तर के प्रश्नों में प्राप्तांको की सहायता से श्रेष्ठ, सामान्य तथा कमजोर विद्यार्थियों में अन्तर किया जा सकेगा। जो परीक्षण इस अन्तर को जितनी भली प्रकार दर्शा सकेगा वह परीक्षण वर्गीकरण की दष्टि से उतना ही उत्तम होगा।

2. चयन (Selection)

मूल्यांकन का दूसरा उद्देश्य किसी विशेष प्रयोजन के लिए विद्यार्थियों का चयन करना होता हैं। इस प्रकार के परीक्षण के प्रश्नों की दो विशेषताएँ होनी चाहिएं। एक, यह कि वे उद्देश्य के अनुकूल हो। दूसरे ऐसे प्रश्न अत्यन्त कठिन होने चाहिए क्योंकि बहुत से विद्यार्थियों में से कुछ विद्यार्थियों का चयन तभी किया जा सकेगा जब प्रश्न कठिन होगें। सजनात्मक योग्यता का पता लगाने के लिए विद्यार्थियों का चयन आवश्यक हैं।

3. निदान (Diagnosis)

मूल्यांकन का तीसरा उद्देश्य शैक्षिक संप्राप्ति में विद्यार्थियों की कमजोरी जानना हैं और उस जानकारी के आधार पर उपचारात्मक प्रश्न पत्रों का निर्माण संप्राप्ति परीक्षण द्वारा प्राप्त संकेतों के आधार पर किया जाता है। निदानात्मक प्रश्न–पत्र से यह जानकारी हो जाती है कि किस क्षेत्र में तथा किस पक्ष में विद्यार्थी की संप्राप्ति संतोषजनक नहीं है। फिर इस कमजोरी का कारण ज्ञात करके उपचारात्मक शिक्षण के लिए सामग्री तैयार की जाती हैं।

शैक्षिक निदान और उपचार : उपयोगिता (Educational Diagnosis and Remedy: Utility)

शिक्षा के क्षेत्र में निदान और उपचार कार्यक्रम प्रारम्भ से चला आ रहा है। अध्यापक सदैव अपने विद्यार्थियों की त्रुटियों की जाचँ कर उन्हें सुधारता रहा है। जहाँ अध्यापक का उद्देश्य विद्यार्थियों को नया ज्ञान देना तथा उनमें नई क्षमताएँ विकसित करना है – वहाँ उनका एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य विद्यार्थियों की संप्राप्ति का पता लगाकर उनकी कमियों का निराकरण करना भी है। विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली त्रुटियों को जानकर अध्यापक भी अध्यापन करते समय उनके सम्बन्ध में सजग रह सकते है और अपने विद्यार्थियों को भी सावधान कर सकते हैं।

निदान और उपचार मूलतः आयुर्विज्ञान की संकल्पनाएँ हैं। आजकल इसका उपयोग शिक्षा जगत में होने लगा है। आयुर्विज्ञान का डॉक्टर और रोगी क्रमशः शिक्षा जगत का अध्यापक और विद्यार्थी है। विद्यार्थी के संप्राप्ति

सम्बन्धी कठिनाइयों का पता लगाने और उनके कारणों को विविधपूर्वक जानने की प्रक्रिया शैक्षिक उपचार हैं।

निदान और उपचार शिक्षण प्रक्रिया के दो अभिन्न पहलू है। निदान के आधार पर ही उपचार किया जाता है। विद्यार्थी की संप्राप्ति की सामान्य जानकारी कक्षा में किए गए कार्य, गहकार्य तथा संप्राप्ति परीक्षण के प्रश्नों के उत्तरों का मूल्यांकन करते समय प्राप्त हो जाती है परन्तु उनकी संप्राप्ति के दोषों की स्पष्ट और निश्चित जानकारी नहीं हो पाती और न उन दोषों के कारणों की जानकारी हो पाती है। इसके लिए संप्राप्ति परीक्षण से संकेत प्राप्त कर निदानात्मक प्रश्न–पत्रों में दिए गए प्रश्नों के उत्तरों के विश्लेषण द्वारा संप्राप्ति के दोषों और उनके कारणों की जानकारी प्राप्त हो जाती है। दोषों और कारणों के आधार पर उपचारात्मक अभ्यास तैयार किए जाते है। इस प्रकार शैक्षिक निदान और उपचार के कार्यक्रम के दो अंग हो जाते हैं

(i) निदानात्मक प्रश्न पत्र

(ii) उपचारात्मक अभ्यास

शैक्षिक निदान और उपचार के सोपान (Steps of Educational diagnosis and Remedy)

शैक्षिक निदान और उपचार के निम्नलिखित नौ सोपान है। इसमें से प्रथम पाँच शैक्षिक निदान के तथा अन्तिम चार उपचारात्मक अभ्यास के सोपान हैं :–

1. विषय का चयन (Selection of Subject)

निदानात्मक प्रश्नपत्र बनाने के लिए विषय का चयन संप्राप्ति परीक्षण के आधार पर किया जाता है। विद्यार्थियों द्वारा दिए गए उत्तरों का मूल्यांकन करने से यह जानकारी प्राप्त हो जाती हैं कि किन विद्यार्थियों ने उस विषय के अन्तर्गत किस वर्ग के शिक्षण बिन्दुओं के उत्तरों में त्रुटि की है। संप्राप्ति परीक्षण मे निहित शिक्षण बिन्दुओं के उत्तर अधिक बालकों द्वारा गलत रूप में दिए जाते हैं उसी वर्ग के शैक्षिक बिन्दुओं पर निदानात्मक प्रश्न पत्र बनाया जाता है। संप्राप्ति परीक्षण के आधार पर कई निदानात्मक प्रश्न पत्रों की रचना करने की आवश्यकता हो सकती है।

2. विषयवस्तु का विश्लेषण (Analysis of content matter)

विद्यार्थियों द्वारा दी गई त्रुटि की प्रकति तथा उसका कारण जानने के लिए विषयवस्तु का विश्लेषण अत्यंत आवश्यक है। किसी विषय के अन्तर्गत विषयवस्तु के विश्लेषण से न केवल शिक्षण बिन्दुओं की जानकारी होती हैं, अपितु समानता तथा अंतर के आधार पर उन शिक्षण बिन्दुओं का परस्पर सम्बन्ध भी स्पष्ट होता हैं।

3. निदानात्मक प्रश्न पत्र की रचना (Construction of diagnostic question paper)

निदानात्मक प्रश्न–पत्र दो प्रकार के हो सकते हैं। पहले प्रकार के निदानात्मक प्रश्न पत्र में विषय वस्तु की व्याप्ति सीमित की जा सकती हैं, और उसमें ज्ञान, अर्थग्रहण तथा अभिव्यक्ति आदि एक से अधिक उद्देश्यों को लिया जा सकता है। दूसरे प्रकार के ऐसे निदानात्मक प्रश्न पत्र में विषयवस्तु की व्याप्ति सीमित की जा सकती है और उसमें ज्ञान अर्थग्रहण तथा अभिव्यक्ति आदि एक से अधिक उद्देश्यों को लिया जा सकता है। दूसरे प्रकार के ऐसे निदानात्मक प्रश्न पत्र बनाए जा सकते हैं जिनमें अपेक्षाकत विषयवस्तु अधिक हो पर केवल किसी एक उद्देश्य तक सीमित हो। इनमें से कौन सा निदानात्मक प्रश्न पत्र अधिक उपयोगी होगा यह बात विद्यार्थियों द्वारा की गई त्रुटियों की प्रकति पर निर्भर होगी। निदानात्मक प्रश्न पत्र का उद्देश्य त्रुटि और उनका कारण जानना हैं इसलिए इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुविकल्पी वस्तुनिष्ठ प्रश्न अधिक उपयोगी होते हैं। निदानात्मक प्रश्न पत्रों के सामान्य निर्देशों में यह बात स्पष्ट और निश्चित होनी चाहिए कि विद्यार्थियों को कोई प्रश्न छोड़ना नहीं है। प्रश्न का जो भी उत्तर उन्हें आता हैं उसे लिख देना चाहिए तथा प्रश्नों के उत्तर अनुमान से नही लिखने चाहिए। प्रश्नों की रचना करते समय परीक्षक को प्रत्येक प्रश्न का उत्तर भी साथ साथ तैयार कर लेना चाहिए।

4. विद्यार्थियों द्वारा निदानात्मक प्रश्न पत्रों का हल (Solution of diagnostic question papers by the students)

संप्राप्ति परीक्षा के प्रश्नों के शुद्ध एवं अशुद्ध उत्तरों के आधार पर ही विद्यार्थियों को निदानात्मक प्रश्न पत्र देने चाहिए। प्रत्येक निदानात्मक प्रश्न पत्र प्रत्येक विद्यार्थी को देने की आवश्यकता नहीं हैं। ये प्रश्न पत्र विद्यार्थियों को गहकार्य के रुप में भी दिए जा सकते है। विद्यार्थियों को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि तैयार की गई उत्तरमाला की सहायता से वे अपनी त्रुटियों को स्वयं जान सकते है और उन्हें दूर कर सकते हैं। अध्यापक केवल उनकी मदद कर सकता हैं।

5. उत्तरों की जाँच और उनकी त्रुटियों का विश्लेषण (Evaluation of Answers and analysis of their faults)

निदानात्मक प्रश्न पत्रों के प्रश्नो की जाँच अध्यापक अथवा विद्यार्थी द्वारा की जा सकती हैं। परन्तु विद्यार्थी द्वारा की गई जाँच अधिक उपयोगी होती हैं क्योंकि वह अपनी त्रुटियों को स्वयं जानकर दूर करने में रुचि लेता है।

6. उपचारात्मक अभ्यास की रचना (Construction of remedial exercise)

उपचारात्मक अभ्यास को तीन भागों में बांटा जाता हैं पहला त्रुटियों के कारणों की समीक्षा, दूसरा कारणों का दूर करने की व्याख्या प्रस्तुत करना, तीसरा अभ्यास जिसकी सहायता से विद्यार्थियों को उनके शुद्ध उत्तर का अभ्यास करवाया जा सके।

7. विद्यार्थियों द्वारा उपचारात्मक अभ्यास (Remedial practice by students)

त्रुटियों की जानकारी के आधार पर विभिन्न विद्यार्थियों को विभिन्न उपचारात्मक अभ्यास देने चाहिए। उपचारात्मक अभ्यास सामान्य अभ्यासों से इस रुप में भिन्न हैं कि इनमें विषयवस्तु के संबंध में धारणाएँ स्पष्ट की जाती हैं। त्रुटियों के कारणों को दूर करने के लिए व्याख्या की जाती हैं और तब शुद्ध रुप का अभ्यास किया जाता है। इससे न केवल उनकी विशेष त्रुटि दूर होती हैं वरन् भविष्य में भी उस प्रकार की त्रुटि होने की संभावना कम हो जाती हैं।

8. संप्राप्ति परीक्षण

विद्यार्थियों द्वारा उपचारात्मक अभ्यास करने के बाद अध्यापक को एक बार पुनः संप्राप्ति परीक्षण करना चाहिए। यह परीक्षण पहले संप्राप्ति परीक्षण से दो बातों में भिन्न होगा। एक, उनकी संप्राप्ति के परीक्षण द्वारा अध्यापक आश्वस्त हो सके कि प्रस्तुत विषय विद्यार्थियों को ठीक प्रकार से समझ में आ गया हैं। दूसरे, विभिन्न विषयवस्तु पर निर्मित विभिन्न प्रश्नपत्र उन्हीं विद्यार्थियों को दिए जाँएगे जिनकी संप्राप्ति का परीक्षण सामग्री और परीक्षणार्थी दोंनों की दष्टि से यह परीक्षण सीमित होगा।

निदान व उपचार के बाद किए गए संप्राप्ति परीक्षण से यदि यह ज्ञात होता हैं कि लाभ प्राप्त करने वाले विद्यार्थी बहुत कम हैं तो उपचारात्मक अभ्यास में आवश्यक सुधार कर पुनः परीक्षण करना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही अध्यापक को स्वयं अपनी अध्यापन पद्धति और विद्यार्थी की अध्ययन पद्धति का भी मूल्यांकन करना चाहिए।

आज यह निदान अनेक प्रकार से किया जाता है; जैसे निरीक्षण द्वारा, संचित अभिलेखों द्वारा आदि।

शैक्षिक निदान एवं उपचारात्मक परीक्षण के लाभ

1. बच्चों की कठिनाइयों का ज्ञान प्राप्त होता हैं।
2. कठिनाइयों का पता लगाकर उन्हें दूर किया जा सकता है।

3. इससे शिक्षण प्रक्रिया प्रभावशाली हो जाती है।

4. बच्चों को अपनी योग्यता व क्षमता के अनुसार उचित दिशा व लक्ष्य प्राप्त होता है।

5. व्यक्तिगत रुप से विद्यार्थियों की व्यक्तिगत कठिनाइयों को दूर किया जा सकता हैं।

6. विद्यार्थी, कुसमायोजन से बच जाते है।

7. विद्यार्थियों की शारीरिक, भावात्मक एवं सामाजिक क्षमताएं विकसित होती हैं और उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास होता हैं।

अपनी प्रगति जांचिए - 4

1. शैक्षिक निदान और उपचार के सोपान बताईयें।

2.6 निरीक्षण (Observation)

निरीक्षण एक महत्वपूर्ण मूल्यांकन तकनीक है, जिसके द्वारा अध्यापक किसी भी विद्यार्थी के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त कर सकता है। यह विद्यार्थियों के बारे में जानने के लिए, उनके विकास का मूल्यांकन करने के लिए, उनकी योग्यताओं तथा क्षमताओं की पहचान करने के लिए यह उत्तम तकनीकों में से एक तकनीक है। इसकी सहायता से अध्यापक विद्यार्थियों को रुचियों, अभिवत्तियों, दष्टिकोणों, कोशलों, ज्ञान तथा भावनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है। निरीक्षण दो प्रकार से किया जा सकता हैः–

(i) अध्यापक संभव व्यवहारों की एक सूची तैयार करता है, एक विद्यार्थी या समूह का निरीक्षण करता है और सूचीगत व्यवहारों पर विद्यार्थी के द्वारा किए गए प्रदर्शन को रिकॉर्ड करता है।

(ii) निरीक्षण के आधार पर अध्यापक घटनावत्त, चैक–लिस्ट आदि तैयार करता है। विभिन्न परिस्थितियों में विद्यार्थी के द्वारा की गई अभिव्यक्ति का निरीक्षण किया जाता है।

यह विद्यार्थी के मूल्यांकन का प्रत्यक्ष साधन है। इसकी सहायता से अध्यापक विद्यार्थी सम्बन्ध अच्छे बनते है।

निरीक्षण के लाभ (Merits of Observation)

1. यह सभी स्तरों के लिए प्रायोगिक है।

2. इसके द्वारा विद्यार्थी के व्यक्तित्व के प्रत्येक गुण को सोचा जा सकता है।

3. यह अध्यापक को अपनी अनुदेशन प्रक्रिया सुधारने में सहायक होता है।

4. यह अशाब्दिक व्यवहार का निरीक्षण करने में सहायता करता है।

5. इसके आधार पर अध्यापक विद्यार्थियों का वर्गीकरण कर सकता है।

6. इसके अन्तर्गत प्राकृतिक वातावरण में विद्यार्थी का मूल्यांकन किया जाता है।

निरीक्षण की हानियाँ तथा सीमाएँ (Demerits and Limitations of Observation)

1. इसकी कुशलता अध्यापक की कुशलता पर निर्भर करती है, परन्तु कुशल अध्यापकों की वास्तव में कमी पाई जाती है।

2. यह एक व्यक्तिनिष्ठ तकनीक है। इसमें पक्षपात की संभावना बनी रहती है।

3. केवल निरीक्षण के आधार पर किए गए निर्णय उपयुक्त नहीं होते।

4. कभी–कभी विद्यार्थी अपने वास्तविक व्यवहार का प्रदर्शन नहीं करते, जिससे उनका मूल्यांकन सही ढंग से नहीं होता।

2.7 रुचि-सूचियां (Interest Inventories)

रुचि कों 'पूर्व व्यस्तता, पसन्द और ना–पसन्द' के रुप में परिभाषित किया जाता है। किसी ने इसे मन की गतिशील प्रकति कहा है। विलियम जेम्ज ने इसे चुनी हुई चेतनता या ध्यान माना जो व्यक्ति के अनुभव–समूह की सार्थकता प्रदान करता है। रुचियों की प्रकति के विषय में बर्डी ने कहा है – रुचि ऐसा तत्त्व है जो व्यक्ति को किसी वस्तु, व्यक्ति या क्रिया की ओर आकर्षित या विकर्षित करता हैं। स्ट्रॉंग पसन्द की चीजों को रुचि के अन्तर्गत लेता है और नापसन्द चीजों को अरुचि के अन्तर्गत मानता हैं।

रुचियाँ कई प्रकार की होती हैं जैसे खेल में रुचि, अध्ययन में रुचि, स्कूल कार्य में रुचि, व्यावसायिक रुचियां रेडियों सुनने में रुचि, चलचित्र देखने में रुचि, वार्तालाप में रुचि आदि। रुचियों को प्रभावित उसका परिवार एवं सामाजिक परिवेश करता हैं। सीखने की अन्य प्रक्रियाओं के समान रुचियाँ भी सीखी जाती है या उत्पन्न की जाती हैं। इनमें कोई सन्देह नहीं कि सीखने की अच्छी प्रक्रिया अधिक रूचियों को उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करती है।

किसी बच्चे में विद्यमान रुचियां भले ही अस्पष्ट हों या उनका क्षेत्र सीमित हो, परन्तु वे नये अनुभवों के विस्तार का आधार अवश्य होती है। किसी भी क्षेत्र में अत्यधिक रुचि उस क्षेत्र में महान् उपलब्धि की द्योतक होती हैं। रुचियों के विकास के लिए स्कूल को दोहरी भूमिका निभानी होती है। एक तो स्कूल में विद्यार्थियों की विशिष्ट रुचियों के अनुकूल वांछित सूचनाएं प्रदान करनी चाहिए और दूसरे स्कूल में विद्यार्थियों के लिये नये क्षितिजों की खोज की जानी चाहिए।

रुचि - मापना (Interest Measurement)

रुचि को मापने की विधियां निम्नलिखित हैं :–

1. प्रत्यक्ष-निरीक्षण (Direct Observation)-

अध्यापक बच्चें द्वारा पूछे गये प्रश्नों से उसकी रुचियों का अनुमान लगा सकता हैं। बच्चों की बातों तथा विभिन्न विषयों की प्रशंसा एवं आलोचना से भी उनकी रुचियों का अनुमान लगाया जा सकता है। अन्य साधनों से भी बच्चे की रुचि सम्बन्धी सूचनायें प्राप्त की जा सकती हैं। इसे अप्रत्यक्ष निरीक्षण कहते है।

बच्चे की रुचियों के सम्बन्ध में कांऊसलर स्वयं बच्चे से पूछ सकता हैं। परन्तु वह विश्वसनीय साधन नही हैं क्योंकि बच्चा इतना परिपक्व नहीं होता कि वह अपनी रुचियों के सम्बन्ध में बता सके। वह तो केवल दूसरों की नकल करता हैं।

प्रत्येक बच्चे का प्रत्यक्ष निरीक्षण करना कठिन है। इसके लिए पर्याप्त अवसर ही नही मिलते। इसमें समय भी बहुत लगता हैं। अतः रुचि प्रश्नावलियों तथा सूचियों को बच्चों की रुचियां जानने का विश्वसनीय एवं प्रमाणिक साधन माना जाता हैं।

2. रुचि-सूचियां (Interest Inventories)

रूचियों के अध्ययन का दूसरा तरीका हैं – रूचि परीक्षाओं या रूचि सूचियों का प्रयोग। कई स्तरीकत–सूचियाँ प्राप्त हैं परन्तु सामान्यतः दो ही का प्रयोग किया जाता है। स्ट्रांग व्यावसायिक रुचि ब्लैंक तथा कूडर कत वरीयता रिकार्ड।

(क) स्ट्रांग कत व्यावसायिक रूचि ब्लैंक (Strongs Vocational Interest Blank)

इसके प्रवर्तक स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय, यू.एस. ए. के. ई. के. स्ट्रांग है। उनका अनुसंधान कार्य विभिन्न व्यवसायों में सफल लोगों की विशिष्ट रुचियों की खोज पर केन्द्रित था। इस ब्लैंक में 400 मद्दें है जो व्यवसाओं, स्कूल विषयों, मनोरंजन, क्रियाओं तथा लोगों से सम्बन्धित है। इसका प्रयोग उन व्यक्तियो के वहद् समूहों पर किया गया हैं जिन्होंने अपने व्यवसाय में निश्चित स्तर की सफलता प्राप्त की थी। प्राप्त परिणामों के विश्लेषण

से यह बात स्पष्ट हो गई कि किसी विशिष्ट व्यवसाय में काम कर रहे व्यक्तियों की कुछ ऐसी रुचियाँ तथा अभिरुचियाँ होती है जों उन्हें दूसरे व्यवसाय के लोगों से अलग कर देती हैं। इस सूची का प्रयोग करना तो आसान हैं परन्तु आंकन करना कठिन है। इसके अतिरिक्त व्यस्कों द्वारा दिये गये उत्तरों के आधार पर इसे तैयार किया गया है। इसलिये इसे कालेज–स्तर पर ही प्रयोग किया जा सकता हैं। इस सूची का भारतीय संस्करण अलीगढ़ विश्वविद्यालय के डा० झिंगरन द्वारा तैयार किया गया हैं।

(ख) कुडर कत वरीयता रिकार्ड (Kuders Preference Record)

सैकण्डरी स्कूल स्तर पर प्रायः इसका प्रयोग किया जाता है। इस रिकार्ड में 504 मद्दें सम्मिलित हैं जिन्हें तीन तीन के ग्रुप में सम्मिलित किया गया हैं। इन मद्दों का दस क्षेत्रों में वर्गीकरण किया गया हैं। यह क्षेत्र इस प्रकार हैं – मकैनीकल, गणनात्मक, वैज्ञानिक, प्रेरणादायक, कलात्मक, साहित्यिक, समाज सेवा, लिपिक तथा आऊट डोर आदि। इस परीक्षा का प्रयोग ग्रुप पर भी किया जा सकता है। इसलिए इसमें अपेक्षाकत कम खर्च आता है और इसमें विद्यार्थी रुचि भी लेते हैं।

कई दूसरी सूचियां जो विशिष्ट स्थितियों और उद्देश्यों के लिए है। यह दुर्भाग्यपूर्ण हैं कि इनमे से अधिकांश व्यवसायों पर आधारित है जबकि बच्चों की रुचियां व्यवसायों से भिन्न भी होती है। स्कूलों में व्यवसायों के अतिरिक्त अन्य भी क्रियायें होती हैं जिनमें बच्चे रुचि लेते है। इनमें व्यक्ति के सभी तत्व समाहित नही किये गये। प्रत्येक में केवल एक ही तत्व को आधार माना गया है। हां, यदि इनका विधिवत् प्रयोग किया जाए तो विद्यार्थियों को चुनाव करने में सहायता मिल सकती है।

रुचि सूचियों की आवश्यकतायें (Need of Interest Inventories)

रुचि–सूचियों का यदि सावधानी के साथ प्रयोग किया जाये तो उनसे बहुत लाभ उठाये जा सकते हैं। इसकी मुख्य उपयोगितायें निम्नलिखित हैं :–

1. रुचि–सूचियां व्यक्ति के शैक्षणिक एवं व्यावसायिक निर्देशन में सहायता प्रदान करती है। इनकी सहायता से बच्चे के लिए उचित पाठ्य कोर्स चुना जा सकता है।
2. रुचि–सूचि की सहायता से बच्चा अपनी रुचियों को अच्छी तरह समझ सकता है।
3. रुचि–सूचियों की सहायता से परामर्शदाता विद्यार्थियों की समस्याओं को सुलझाने में उनकी सहायता भी कर सकता हैं।
4. इनसे विद्यार्थियों को अनुप्रेरित करने में सहायता मिलती हैं।

रुचियों के प्रकार (Types of Interests)

1. **व्यक्त रुचियां**–व्यक्त रुचियां वे होती हैं जिनके सम्बन्ध में व्यक्ति बातें करता है जैसे 'मैं उपन्यासों में रुचि लेता हूं।'' यह रुचियों के सम्बन्ध में स्पष्ट अभव्यक्ति है।
2. **अव्यक्त रुचियां**–ये रुचियां अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट होती है। व्यक्ति स्वयं नहीं जानता, परन्तु दूसरों को उसकी रुचियों का पता लग जाता है जैसे–यदि एक वैज्ञानिक अपने प्रयोग कार्य में इतना व्यस्त है कि वह खाना तक भूल जाता है। तो उसकी रुचि अपने आप स्पष्ट हो जाती है।
3. विद्यार्थी को अनुप्रेरित करना चाहिए। तभी वह किसी काम में रुचि लेगा।

अपनी प्रगति जांचिए - 5

(i) रूचियां कितने प्रकार की होती हैं?

(ii) कुड़र वरीयता रिकार्ड का क्या महत्व हैं?

2.7 क्रम-निर्धारण मान (Rating Scale)

मनुष्य में व्यक्तिगत विभिन्नताएं होती है, प्रत्येक मनुष्य की रुचि, योग्यता दूसरे मनुष्य से अलग होती है। स्वभाव से भी देखें तो संसार में भिन्न–भिन्न स्वभाव के व्यक्ति है। क्रम निर्धारणमान व्यवहार को जानने का एक ढंग है। मानवीय व्यवहार का मूल्यांकन करने के लिये इसका प्रयोग बहुत समय से किया जा रहा हैं। निरीक्षण को मात्रात्मक रुप देनें के लिए क्रम निर्धारणमाान का प्रयोग किया जाता है। रेटिंग स्केल से हम यह जान सकते हैं कि अमुक व्यक्ति में कोई विशिष्ट मनोवैज्ञानिक गुण कितनी मात्रा में हैं।

क्रम-निर्धारण मान के भेद (Types of Rating Scale)

क्रम निर्धारण मानक दो प्रकार के होते हैं :–

(i) रेखा चित्रीय मान (ii) विशिष्ट वर्ग

1. सापेक्ष क्रम निर्धारण मान

I. श्रेणीक्रम मान

इस प्रकार के रेटिंग स्केल में सम्बन्धित व्यक्तियों को किसी एक दष्टिकोण या प्रश्न के आधार पर उच्च या निम्न श्रेणी में विभाजित किया जाता हैं। व्यक्तिगत स्केल की स्थिति दूसरे व्यक्तियों के सापेक्ष होती हैं।

II. कुल संख्या का प्रतिशत मान

यदि हम किसी एक व्यक्ति का श्रेणी क्रम निर्धारण करना चाहते हैं तो उस व्यक्ति के सम्बन्धित व्यक्तियों की कुल संख्या की प्रतिशत स्थिति में रखकर उसका श्रेणी क्रम निर्धारित किया जाता हैं। उस व्यक्ति को तकनीकी रूप से अंक प्रतिशत दिये जाते है जिससे ज्ञात होता हैं कि सम्बन्धित गुण में वह समूची संख्या के अन्तर्गत किस स्थिति में हैं। इस प्रकार के क्रम निर्धारण मान में सफलता तभी मिल सकती हैं जब निर्णयकर्ता को यह धारणापूर्ण रूपेण स्पष्ट हो और वह सम्बन्धित गुण को समूची संख्या में वांछित रुप से विभाजित कर सकता हो।

2. पूर्णक्रम निर्धारण मान

(i) रेखा चित्रिय मान

यदि क्रम निर्धारण बिना किसी ग्रुप संदर्भ के पूर्णरूप से करना हो तो निर्णयकर्ता को यह विधि अपनानी चाहिए। उसे सम्बन्धित गुण की सीमा से दूसरी सीमा तक खींची गई रेखा के उचित स्थान पर चैक मार्क लगाना चाहिए।

(ii) विशिष्ट वर्ग मान

इस क्रम निर्धारण मान में सुपरिभाषित वर्गो की सीमित संख्या के संदर्भ मे क्रम निर्धारण किया जाता है। एक उदाहरण के द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए की हम एक व्यक्ति की ईमानदारी का क्रम निर्धारित करना चाहते हैं। पांच प्वाइंट, स्केल में उसे हम बहुत बेईमान, बेईमान, तटस्थ, ईमानदार, बहुत ईमानदार घोषित कर सकते हैं। यदि इससे अधिक अच्छा निर्णय लेना हो तो सात प्वाईंट स्केल या नौ प्वाईंट स्केल का प्रयोग भी किया जा सकता हैं। तटस्थ बिन्दु के दोनों ओर स्वीकरात्मक एव नकारात्मक बिन्दुओं की बराबर संख्या होनी चाहिए। थरस्टोन ने तो स्केल को ग्यारह बिन्दुओं में विस्तत किया है। परन्तु प्रायः पांच या सात बिन्दुओं के स्केल को अपनाया जाता हैं।

क्रम निर्धारण मानों की हानियां (Disadvantages of Rating Scales)

क्रम निर्धारण मानों में मुख्ययत हानियां निम्नलिखित हैं:–

1. प्रभा प्रभाव

इसका अर्थ यह हैं कि व्यक्ति जिस क्षेत्र में अपनी प्रभा दिखाता है उसे उसके समूचे व्यक्तित्व का सूचक मान लिया जाता हैं। जैसे यदि एक विद्यार्थी गणित में अच्छा हैं तो हम यह मान ले कि वह फुटबाल में भी अच्छा खिलाड़ी होगा।

2. दोषपूर्ण तर्क

मान निर्धारण कर्त्ता कभी कभी ऐसे दोषपूर्ण तर्क भी दे देते हैं जैसे दो एक जैसे दिखने वाले व्यक्ति एक जैसा ही काम करते हैं इसलिये उनका मान निर्धारण भी एक जैसा होगा।

3. केन्द्रीय प्रवति की गलती

कुछ क्रम निर्धारणकर्त्ता 'औसत' की श्रेणी में रखने की प्रवति रखते है। इस प्रकार के क्रम निर्धारण से व्यक्तियों में भेद स्पष्ट नहीं होता। यह क्रम निर्धारण की बुनियादी त्रुटि हैं।

4. उदारता सम्बन्धी गलती

क्रम–निर्धारण कर्त्ता की किसी व्यक्ति के प्रति सहानुभूति उसे उसके प्रति उदार होने के लिए विवश कर देती हैं। जिसके कारण वह क्रम –निर्धारण करने में उदारता से काम लेता हैं। जिसके परिणामस्वरूप उसका मूल्यांकन अविश्वसनीय हो जाता हैं।

अपनी प्रगति जांचिए - 6

(i) रेटिंग स्केल के मुख्य प्रकार कौन–कौन से हैं?

(ii) रेटिंग स्केल में होने वाली मुख्य गलतियों के नाम बताओं।

2.8 सारांश (Summary)

बालक एवं विद्यार्थी के व्यवहार के ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक, तीनों पक्षों में होने वाले परिवर्तनों का मूल्यांकन करने के लिए कुछ विशेष प्रकार की परीक्षा प्रविधियों का प्रयोग करना आवश्यक है। ये परीक्षाएं बाह्य तथा आन्तरिक दोनों रूपों में आयोजित की जा सकती हैं। इन्हें व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से प्रयोग किया जा सकता हैं।

शैक्षिक निष्पत्तियों की परीक्षा के लिए जिन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता हैं वे इस प्रकार हैं – मौखिक, लिखित, प्रयोंगात्मक परीक्षाएं, चेकलिस्ट, रेटिंग स्केल, संचयी अभिलेख, रूचि मापनी आदि।

मौखिक परीक्षाओं का उद्देश्य बालको ंकी अभिव्यक्ति, क्रियाशीलता, उच्चारण योग्यता आदि ज्ञात करना होता है। इन परीक्षाओं का उपयोग छोटी कक्षाओं में विद्यार्थियों से ऐसे प्रश्न पूछें जाते हैं जिनके उत्तर इतने लम्बे होते हैं कि परीक्षक विद्यार्थी के विचार, तुलना, अभिव्यजंना, तर्क, आलोचना शक्ति के साथ साथ भाषा एवं शैली की जाँच कर सकता है। निबन्धात्मक परीक्षाओं मे विश्वसनीयता, वैधता, व्यापकता, विभेदकारिता एवं वस्तुनिष्ठता का अभाव होता है। ये परीक्षाएं रटने की प्रवत्ति को बढ़ावा देती है। इन परीक्षाओं के दोषों को दूर करने के लिए विभिन्न सुझाव दिये गए हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं अपेक्षाकत अधिक विश्वसनीय, व्यापक, वैद्य, विभेदकारी एवं वस्तुनिष्ठ होती हैं। वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में विभिन्न प्रकार के प्रश्न हो सकते हैं। प्रश्न साधारण प्रत्यास्मरण रूप, सत्य – असत्य रूप, बहुविक्लप रूप, तुलनात्मक रूप, रिक्त स्थान पूर्ति रूप आदि होते है। वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का मुख्य दोष यह है कि ये विद्यार्थियों की उच्च मानसिक क्षमताओं, विषय वस्तु का संगठन, मौलिकता, कल्पना शक्ति, अभिव्यक्ति आदि का मापन नहीं करती। इन परीक्षाओं द्वारा नकल करने की प्रवत्ति को भी प्रोत्साहन मिलता है। विद्यार्थियों की अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों को ज्ञात करने एवं उनका प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक निदान एवं उपचार की मुख्य विधि निरीक्षण है। अध्यापक विद्यार्थियों का निरीक्षण करके उनकी रूचियों, अभिवत्तियों, भावनाओं, क्रियात्मक क्षमताओं आदि की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

रूचि इन्वेन्टरी विद्यार्थी की रूचियों को ज्ञात करने में सहायक है। विद्यार्थी की रूचि को ज्ञात करके उनके अनुरूप अध्यापक शिक्षण – अधिगम क्रियाओं का संगठन एवं आयोजन कर सकता है। सामान्यतया दो रूचि सूचियों का प्रयोग किया जाता हैं – स्ट्रांग व्यावसायिक रूचि ब्लैंक तथा कूडर वरीयता रिकार्ड।

रेटिंग स्केल द्वारा विद्यार्थी के किसी गुण या योग्यता के विकास की मात्रा का पता लगाया जाता है। इस स्केल में कुछ मानदण्ड दिये जाते हैं जिसके आधार पर रेटिंग किया जाता है। रेटिंग के लिए एक स्केल की कल्पना की जाती है। जिसमें पांच बिन्दुओं, सात बिन्दुओं या नौ बिन्दुओं तक साक्षेप निर्णय किया जाता है। रेटिंग स्केल का सफल प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि रेटिंगकर्त्ता उन मानदण्डों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर ले जिनके आधार पर उसे रेटिंग करनी है।

2.9 आदर्श उत्तर

1. (i) मौखिक परीक्षाओं में मौखिक रूप से प्रश्न पूछे जाते हैं। इन परीक्षाओं का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी की उच्चारण योग्यता, क्रियाशीलता, ज्ञान आदि को ज्ञात करना होता है।

   (ii) मौखिक परीक्षाओं में आत्मनिष्ठता अधिक होती हैं और परीक्षक मनमानी कर सकता हैं परन्तु मौखिक परीक्षाएं आवश्यक हैं क्योंकि भाषा उच्चारण तथा वाक्क्षमता आदि का परीक्षण केवल मौखिक रूप से ही हो सकता है।

2. (i) निबन्धात्मक परीक्षाएं ऐसी परीक्षाएं होती हैं जिनमें विद्यार्थियों को प्रश्नों के विस्तारपूर्वक उत्तर लिखने होते हैं। इन परीक्षाओं का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की उच्च मानसिक क्षमताओं – मौलिकता, आलोचनात्मक शक्ति, तर्क शक्ति, निर्णय शक्ति, कल्पना शक्ति, अभिव्यक्ति आदि का विकास करना है।

   (ii) उत्तर 2.3.2 में देखें।

3. (i) वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं वे परीक्षाएं होती है जिनमें उत्तर का ढंग सरल एवं सक्षिप्त होता है। ये परीक्षाएं विश्वसनीय, व्यापक, वैध, वस्तुनिष्ठ एवं विभेदकारी होती हैं।

   (ii) उत्तर 2.4.2 में देखें।

4. (i) विषय का चयन, विषयवस्तु का विश्लेषण, निदानात्मक प्रश्न पत्र की रचना, विद्यार्थियों द्वारा निदानात्मक प्रश्नपत्रों का हल, उत्तरों की जाँच और त्रुटियों का विश्लेषण, उपचारात्मक अभ्यास की रचना, संप्राप्ति परीक्षण।

5. (i) व्यक्त एवं अव्यक्त रुचियां

   (ii) कुडरकत वरीयता रिकार्ड का प्रयोग सैकेण्डरी स्कूल स्तर पर किया जाता है। इस रिकार्ड में 504 मद्दें सम्मिलित हैं। इन मद्दों का दस क्षेत्रों – मकैनीकल, गणनात्मक, वैज्ञानिक, प्ररेणादायक, कलात्मक, साहितियिक, समाज सेवा, लिपिक परीक्षा आदि में किया जाता है।

6. (i) रेटिंग स्केल निम्न प्रकार के होते है :

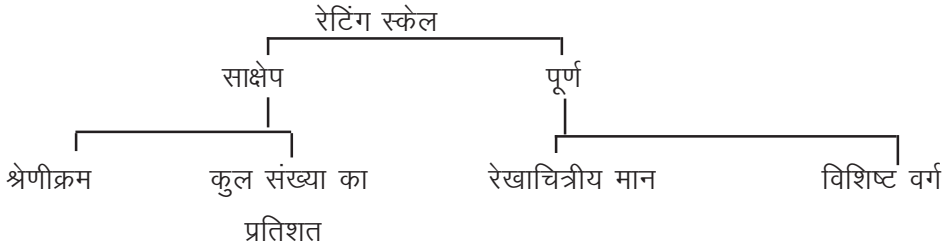

2.10 मुख्य शब्द

वस्तुनिष्ठता : – ऐसी परीक्षा जिसमें परीक्षक के व्यक्तित्व, रूचियों तथा पक्षपातों के लिए कोई स्थान न हो।

व्यापकताः मापित की जाने वाली चल राशि के अधिक से अधिक पहलुओं को सम्मिलित करना।

रेटिंग स्केल : ऐसा स्केल जिसमें कुछ मानदण्डों का निर्धारण करके उसके आधार पर निर्णय किया जाता हैं।

2.11 संदर्भ पुस्तकें

गुप्ता, रमेश चन्द तथा भट्ट, चन्द्रशेखर–"शिक्षा में मापन और मूल्यांकन", लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा, 1974

पाण्डेय, कामता प्रसाद, – "शिक्षा में मूल्याकंन" मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1968

Benjamin S.B.–"Handbook on Formative and Summative Evaluation of Student Learning", McGraw Hill Book Co.

Gupta Rainu–"Teaching of Social Studies" Jagdamba Book Centre.